

॥ श्रीसीतारामायणम् ॥

वृहद्रामायणोक्तः

* वृहच्चित्रकूट माहात्म्यम् *

भाषा टीका

991

अबोध्या

लेखक

जनस्त श्री १००८ श्रीसीतारामायण परमहंस परिव्राजकाचार्य युगलविनोद
विहारी शरण



प्रकाशक

जनस्त श्रीस्वामी पद पद्मपराग आश्रित सियावल्लभ शरण, जानकीकुण्ड
युगल विनोद कुञ्ज
चित्रकूट

श्री वैष्णव सर्वसज्जनोपकृतार्थः

पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी, के प्रबन्ध से ओंकार प्रेस,
प्रयाग में छपा ।

सन १९२४.

प्रथमवार १०००]

सर्वाधिकार संरक्षित

[मूल्य २]

भूमिका ।

श्री विष्णुकूट महात्म्य भूमिका प्रारम्भ्यते

“रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परं ।

एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्” ॥

वशिष्ट संहितायाम् ।

विदित हो कि यह “बृहद्रामायण तथा वाल्मीकीय रामायण अन्तर श्री विष्णुकूट महात्म्य” इस भारतवासी श्री सीताराम चरणोपासी, पंडित, ज्ञानि, सत्त्विक, सन्यासी, बालक वृद्ध और सम्पूर्ण नर नारि साधु महात्माओं के समीप पूजनीय व परम पूजनीय व श्रद्धा तथा विश्वास की परम प्रियतम वस्तु है इन्हें क्या मिला हो है जहां साक्षात् ब्रह्मा विष्णु शंकरजू साक्षात् अनुसुइया देवि के पुत्र होते हैं, नलराजा तथा पञ्च पांडवी समस्त अन्यन्त महाकष्ट से छूट कर सुखी हो गए, अन्यन्त दुःसाधराज को लाभ किया व महामलिन पापमय ब्राह्मण कुण्ड के जल से श्री मिथलाधिप जनकराज होते भये जिनके गृह के विषय परम शक्ति महादिनि का परम कारण श्री किशोरी जू आविर्भाव होते भये इनसे बढ़कर अन्य कोई पदार्थ साधन नहीं है जो कि स्मरण, दर्शन, श्रवन, स्पर्श मात्र से ही प्राणियों को भौतिक, दैविक, और, भौतिकादि दुख दूर होते हैं ।

धन्याऽयोध्या दशरथ नृपस्सा च माता च धन्या,

धन्यो वंशो रघुकुल सदा यत्र रामावतारः ।

धन्या वाणी कविवर मुखे रामनाम प्रपन्ना,

धन्यो लोके प्रतिदिन मसौ राम नाम शृणोति ।

हे सज्जनो ! श्री अयोध्यापुरी धन्य है व श्री चक्रवर्ती दशरथ नाम राजा धन्य है माता धन्य है जिस रघुकुल में श्रीराम जू का अवतार हुआ वह वंश धन्य है व कवियों के मुख में श्री सीताराम प्राप्त हुई वाणी धन्य है और लोक में वह प्राणी धन्य है जो कि प्रतिदिन श्री सीताराम नाम का श्रवन करते हैं “इति प्रमोद नाटके” रामस्य नाम रूपञ्च लीला धाम परात्परं । एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्”

श्री रघुनन्दन जू की, नाम, रूप तथा लीला, और धाम परात्पर अर्थात् विष्णु नारायण, महा नारायण कृष्ण देवादि परमोत्कृष्ट भगवतो कर सेवित है व चारों नित्य है और सच्चिदानन्द के स्वरूप है "इति वशिष्टसंहिता" यथानाम "यस्य नाम महयशः" जिनका महायश नाम है "अनामयं रूप युग प्रकाशक, सदैव भक्तांतर्करुषानिधिम्। स्मरामि श्री राघव नाम निर्मल प्रपूजितं देवमुनीश्वरेश्वरैः" अहो प्रिय सज्जनों! रोगरहित श्री सीताराम रूप प्रकाशक, भक्तातिनाशक, कृपा के समुद्र, देवता मुनि और ईश्वरेश्वरों से पूजनीय अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु महेश, ईश्वर तिनके ईश्वर महानारायण कृष्ण परब्रह्मा से पूजनीय व मलरहित श्रीराघव नाम को मैं सदैव स्मरण करता हूँ। "इति रहस्य नाटके" पुनः

चेतोलेः कमल द्वयं श्रुतिपुटी पीयूषपूरद्वयं,

वागीशानयनद्वयं घन तम शचयडांशु चन्द्रद्वयम्।

छान्दः सिन्धु मणि द्वयं मुनिमनः कासार हंसद्वयं,

मोक्ष श्री अवणोत्पल द्वय मिदं रामेति वर्णद्वयम्।

श्री राम ये दो भक्षर मन रूपी झरर के दो कमल है व कर्ण रूप दोनों का पूर्ण करने के लिये दो अमृत की धारा है व प्रकाश करने के लिये चाग्देव अर्थात् सरस्वती जू के दो नेत्र है व महा मोह रूप अन्धकार के नाशने के लिये दो चन्द्र सूर्य है वेद रूपी समुद्र की दो मणियां है व मुनियों के मन रूपी मान सरोवर के दो हंस है व मोक्ष रूप लक्ष्मी जू के कर्णफूल है ऐसे दोनों वर्णों को सदैव रटना चाहिये। "इति शिव रहस्य" पुनः (रु।) "नतस्य प्रतिमास्ति" उनकी प्रतिमा नहीं है अर्थात् सगुण, निर्गुण रूप से विलक्षण है ॥ अचिन्त्या व्यक्त रूपाया निर्गुणाय गुणात्मने। समस्त जगदाधार मूर्तये ब्रह्मणे नमः, अचिन्तनीय, अव्यक्त रूप, निर्गुण, गुणात्मा, और समस्त के आधार अर्थात् अन्त ब्रह्माण्ड का नायक अर्थात् परे ब्रह्म कृष्ण चन्द्र जू तिनके आधार का मूर्ति जो ब्रह्म स्वरूप परमात्मा अर्थात् रघुवंश भूषण जू उनके लिये नमस्कार है इति ईता वास्योपनिषद्, श्री कृष्ण चन्द्र जू का आधार मूर्ति का, रामस्याति प्रियं नाम रामेत्येव सनातनं। रात्रि दिव्यं गुणत्रय भाति वृन्दावनै स्थितः ॥ इति शुकसंहितायां, पुनः लोली "शृगु रामायणं विप्र वाल्मीकि मुनिना कृतम्। तच्छ्रुत्वा मुमुक्षुः पापास्त्वं रूपं पुनरेति सः" श्री ऋषि नायक गीतम जू ने द्विजवर सेमदल प्रति कथन किया है "हे विप्र जू" श्री रामायण को सुनिये जिन्हें कि श्रीमद्वाल्मीकि जू ने रचना की है उन्हें श्रवण कर प्राणी

पाप से छुट जाते हैं और पुनः, अपने यथार्थ स्वरूप को लाभ करते हैं, रामायणश्रु-
 यः कुर्यात्तन्तारमानियतेन्द्रियः । स याति परमानन्दं यत्र गत्वा न शोचति” जो
 प्राणी शन्तारमा और जितेन्द्रिय होकर श्री रामायणकथा को श्रवण करते हैं वह
 परमानन्द को प्राप्त होते हैं जहां जाकर शोचते नहीं हैं अर्थात् जन्म मरण से रहित
 हो ब्रह्मानन्द में मग्न सदा रहते हैं “पुनः नरोऽत्र भद्रया युक्तः श्लोकं श्लोकाधमेव
 च । पठते मुच्यते सद्यो क्षुपपातककोटिभिः” इस श्रीरामायणजू के एक श्लोक
 अथवा आधे श्लोक का जो प्राणी भद्रा से संयुक्त होकर पाठ करते हैं
 वे शीघ्र ही करोड़ों उत्पात से मुक्त हो जाते हैं, पुनः “चरितं रघुनाथस्य
 शत कोटि प्रविस्तरम् । एकैकमक्षरं पुसां महा पातक नाशनम्” महा
 पातक कहि एक, पाप, दूसरा महापातक कहि, गऊ, बालक, बृद्ध, स्त्री, ब्रह्मा-
 दिकों को बध करे सो पाप है कहते हैं तोयं, व्रत, दान, तप, यज्ञादिक किये ते पाप
 नाश होते हैं सो पाप कहो ॥ महापातक कहि जन्म मरण सो नहीं मिटै जो कोटिन
 कर्म करै अरु जो शत कोटि अपर अनन्त कोटि ऐसों जो श्रीरामायण जू है जो तामे
 एक अक्षर उच्चारण करै । कोई होइ जन्म मरण महापाप से नाश होके परम गति
 को प्राप्त होइ है (पुना धाम) यथा रुद्र यामले ॥

विष्णोः पादमवंतिकां गुणवतीं मध्येच कांचीपुरीं,

नाभौ द्वारवतीं तथाच हृदये मायापुरी संमुदां ।

ग्रीवा मूलमुदाहरंति मथुरां नाशाग्र वाराणसी,

मेतद् ब्रह्मपदं वदंति मुनयोऽयोध्यापुरी मस्तकं ॥

अवन्तिका अर्थात् उज्जैन विष्णु के पाद हैं, कांची अर्थात् विष्णु कांची तथा
 शिवकांची विष्णु का मध्य भाग है और द्वारिका नाभि स्थान है और पुण्यदात्री जो
 माया पुरी अर्थात् हरिद्वार विष्णु का हृदय है और मथुरा ग्रीव है और काशी पुरी
 विष्णु का नाशाग्र है ये सम्पूर्ण भ्रमण के स्थान हैं किन्तु १०६ सतस्तोत्र हैं ऐसा
 मुनि यों कहते हैं श्रीअयोध्यापुरी विष्णु का मस्तक है, मथुरायापुरी सर्वाअयोध्या
 पुर दासिका । अयोध्यामेव सेवन्ते प्रलयेऽपि च ॥ मथुरा आदि जो सम्पूर्ण
 पुरी हैं सो सम्पूर्ण अयोध्यापुरी की दासी है प्रलय काल में मथुरादिक पुरी सम्पूर्ण
 श्री अवध को सेवन करते हैं, अयोध्या वासिनः सर्वे जगन्नाथस्य मूर्त्तयः । ईश्वरेण
 पुरा प्रोक्तं पार्वतीं प्रति चेकदा ॥ श्री अवध वासी सम्पूर्ण जो है सो सब जगन्नाथ
 अर्थात् विष्णु नारायण, महा नारायणादि के स्वरूप हैं यह सिद्धान्त प्रथम पार्वती

के प्रति शंकरजी ने कहा है पुनः स्कन्ध पुराणे "अयोध्याचपरं ब्रह्म सरयुः समुणः पुमान् ॥ तत्रिवासी जगन्नाथ सत्यं सत्यं वदाम्यहं इतः स्पष्टः ॥ पुनः सत्योपाख्याने स्वर्ग द्वार समं तीर्थं नास्ति ब्रह्मांड गोलके" ब्रह्माण्ड गोल के विषय स्वर्ग द्वारके तुल्य तीर्थ कहीं नहीं है ताते श्रीअयोध्या सर्वा उत्कृष्ट धाम है पुनः बृहद्विष्णु पुराणे,, अयोध्या कायधा नित्याः सर्व मंगलरूपिणः,, तथैव मिथिलाश्चैव सर्व मंगल विग्रह,, श्री अवध त्रिस प्रकार से नित्य सम्पूर्ण मंगलमय है, तिमिप्रकारेण श्री मिथिलाहञ्ज सम्पूर्ण मंगल के स्वरूप हैं,, इत्यादि बृहद्विष्णु पुराण के वाक्य द्वार श्री युगल सरकार सानन्द कंदजू के युगल धाम तुल्यभाव कथन किया अर्थात् दोनों में किंचिन्मात्र भेद नहीं है (भेद है सो पातकी) सर्वशाम्मुखतीर्थनाम्माहान्म्यं कथ्यतेप्रया । काशी कान्ची माया ख्यात योध्या द्वारवत्यपि,, सम्पूर्ण तीर्थों के महात्म्य को हम कहते हैं काशी कान्ची हरिद्वार अयोध्या द्वाटिकादि सम्पूर्ण तीर्थों में श्रेष्ठ श्री अवध मिथिला जू है तिन्ह से भी श्रेष्ठ श्री चित्रकूट जू सर्वांपरि समस्त सज्जनो करके प्रतिष्ठित है श्री अवध मिथिला चित्रकूट के भेद रसज्ञ महात्मा जाने वास्तकि तुल्य है नाम नामों के प्राप्त भेद जानेने यथा चित्रकूट समं नास्ति तीर्थ ब्रह्माण्ड गोलके। यत्र श्री राम चन्द्रोऽसौ सीताया सहितः सधो,, विमलादिसखी युको,, दो० चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय लपण समेत । राम नाम जप जाप कहि, तुलसी अभिमति देत ॥ यथा, वा० अ० का० सं० ६५,, त्वं पौर जनवद्व्यालान योध्यामिवपर्वतम् । मय्यस्य वनिते नित्यं सरयूवदिमां नदीम् । श्री रघुनन्दन जू श्रीप्रियाजुसे कहते हैं। हे वनिते ! तुम पुरवासियों के समान यहां के सर्पों को व अयोध्या के समान श्री चित्रकूट पर्वत को व श्री सरयू के तुल्य मन्दाकिनी नदी को नित्य मानो,, उपस्पृशं प्रश्रवणं मधुमूल फलाशनः । नयोध्यायै न राजाय स्पृहये च त्वया सह,, श्री मन्दाकिनी में भिकाल स्नान मिष्ट मूलफल भोजन करते हुये तुम्हारे साथ मैं श्री अवध और राज की इच्छा नहीं करता हूं इत्यादि वाक्य के द्वारा चित्रकूट की महिमा को मैथिली से अधिक बताया,, यथा,, कि० का० अ० १,, रमते कांतया सार्धं काममुद्वीपयन्निव । मन्दाकिन्यास्तु यदिदं रूपमेतन्मनोहरम्,, अपने पक्षिणी के संग कैसे विहार करते है यह कामी पुरुषों को जानो कामोद्वीपन ही कराता है व इस पक्ष्या का मन्दाकिनी ही के समान रूप है इससे अति मनोरम है,, स्वाने जगति विख्याता गुणास्तस्या मनोरमाः । क्योंकि श्री मन्दाकिनी जू के गुण तो संसार में प्रसिद्ध है कि सबसे अधिक मनोरम है हे लपणलाल इत्यादि वाक्य के द्वारा श्रीरघुवंश भूषण जू श्री चित्रकूट जू को सर्वां से श्रेष्ठा दर्शाया है। श्रीगुप्त श्रीस्वामी तुलसीदास जू महाराज भारत भास्कर तत्वाचार्य का वचन अवत

कोजिये । यथा विनय पत्रिका:—

दो०—चित्रकूट सब दिन वसत, प्रभु सिय लपन समेत ।

राम नाम जप जाप कहि, तुलसी अभिमत देत ॥

चित्रकूट पय तीर सो सुरतरु वास । लपन राम सिय सुमिरहु तुलसीदास ।

पय नहाइ फल पायहु परिहरि आस । सिया रामपद सुमिरहु तुलसीदास ।

स्वारथ परमारथ हित एक उपाय । सिया राम पद तुलसी प्रेम बढ़ाय ।

सुमिरहु राम नाम कर सेवहु साधु । तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु ।

इस पुस्तक के पूर्वाद् में चित्रकूट तीर्थ स्थान माहात्म्य और कामद गिरि महल का ध्यान के सहित देवताओं का वर्णन है और उत्तरार्द्ध में चित्रकूट बन और पर्वतों की शोभा, अनुसुया देवी तथा श्रीजनक नन्दिनी जू से परस्पर वार्ता तथा पातिव्रत धर्म निरूपण है ।

अन्त में हम श्री रामसहाय पण्डा तथा उनके प्रिय पुत्र बसन्तलाल पण्डा के कृतज्ञ हैं कि जिनके उत्साह से इस चित्रकूट माहात्म्य की टीका रची गई ।

लेखक—

। त्रिशोकर-रत्न-सङ्ग्रह । त्रि ।

आसीतारामाभ्यां नमः । श्रीमते रामानन्दाय नमः ॥

॥ मंगलाचरणम् ॥

नमामि सीतां जनकप्रसूतां नमामि रामं रघुवंशजातम् ।

नमामि श्रीमद्भरतादिवन्धून् नमामि वातात्मजमुग्ररूपम् ॥

सीतारामसमारम्भां रामानन्दादिमध्यगाम् ।

अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥ १ ॥

सीतारामगुणग्रामपुष्पारण्यं विहारिणौ ।

वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ २ ॥

रामानन्दमहं वन्दे वेदवेदान्तपारंगं ।

राममन्त्रप्रदातारं सर्वलोकोपकारकम् ॥ ३ ॥

यस्य सान्निध्यमात्रेण ब्रह्मत्वं प्राप्यते जनैः ।

तं वन्दे सर्वदातारं मन्दाकिन्यास्तटे शुभे ॥ ४ ॥

चित्रकूटस्य माहात्म्ये प्रवृत्तो रामभक्तितः ।

(पुगल) विनोदशरणः सौम्यं तिलकं कलयाभ्यहम् ॥ ५ ॥

बृहच्चित्रकूटमहात्म्यं प्रारभ्यते ।

(श्री) रामं कामाभिरामं रघुकुलतिलकं सीतया शोभमानं ।

श्यामं भक्तार्तिनाशं स्वजनभयहरं वामदेवादिवन्द्यं ॥

कामं कामार्तिनाशं कलिकलुषहरं कामदं कामदानं ।

वन्दे लोकाभिरामं दशरथनयं रावणारिं रमेशम् ॥ १ ॥

टीका ब्रह्म-तत्व-प्रकाशिका ।

(राम) श्रीरामजू को (वन्दे) प्रणाम करता हूँ (कामाभिराम) जो कामदेव को भी खलवि से मतोहर करने वाले (रघुकुलतिलक) रघुसंज्ञा जीवों का शिरो-भूषण हो अर्थात् पति हो (सीतया शोभमानम्) श्री जनकनन्दिनीजू के साथ शोभित है (श्याम) शृङ्गारमूर्ति (भक्तार्तिनाश) स्वशरणागत जनों के मायिक आवरण विशेष मल को दूर करने वाले (स्वजनभपहर) निज भक्तों का जो दुष्ट राक्ष-सादि जन्य अथवा कामादि दोषोद्भव भय को हरन करने वाले (कामदेवादिघन्यम्) शङ्कर सनकादि प्रभृति महर्षियों से सेव्य (काम) स्वतन्त्र (कामार्तिना) जीवों के अन्तःकरण वासना रूप जो विपत्ति को दूर करने वाले (कलिकलुपहर) जीवों के काल, कर्म, गुण, स्वभाव जन्य कलुष को स्वकृपा करके नाश करने वाले (कामदानां कामदम्) ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि शक्तियों के अभीष्ट पूर्ण करने वाले (लोकाभिराम) लोक जे श्रीराशि, वैकुण्ठ, महावैकुण्ठाधिपति, श्री-मन्नारायण, विष्णु महाविष्णु, वासुदेव, भगवत्प्रधान अंगों को आनन्द देने वाले (दशरथतनय) श्री दशरथ-राज-किशोर (रावणारि) दश वदन को नाश करने वाले (रमेशम्) [रमा ईशम् इतिच्छेदः] रमा जो लक्ष्मी उन लक्ष्मी को ई अर्थात् प्रका-शक होने वाली जो श्री सीताजू है सो श्री सीताजू को शं अर्थात् आनन्द देने वाले अर्थात् संग विहार करने वाले हैं ॥१॥

व्याख्या ॥

यहां राम शब्द में श्री शब्द का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि श्रीमुख्य वाक्य है कि " श्री रघुनन्दन जू कहते हैं शंकर प्रति " है शंकर जू श्री जानकी जू हमारे आराधना करने योग्य है। व उनसे हमें आराम है आनन्द है अर्थात् बिना श्री किसोरी जू के आराधना के कोई कदापि मेरी प्रसन्नता का लाभ नहीं कर सकते, क्यों कि उनके हम अधोन है अर्थात् श्री किसोरी जू के प्रसन्नता बिना किसी जीवों को हम स्वयम् नहीं ग्रहण कर सकते श्री किसोरी जू के बिना क्षण मात्र भी हम भक्त निकट ठहर नहीं सकते है हे शंकर जू श्री जनक दुलारी जू हमारे जीवन आधार हैं ताते यह श्री मुख्य वाक्य सिद्धान्त के द्वारे जहां कि राम शब्द हो तहां सीता शब्द जहां केवल सीता शब्द वहां राम शब्द ग्रहण करना परम सिद्धान्त है। ताते प्रथम श्लोक के विषय (राम शब्द) राम श्रीराम श्रीसीताराम धिया सीतया सहितः श्रीसहितः श्री सीतारामसहित इति सम्प्रदायः ॥ श्रीशब्देन सम्प्र-

समाधेयनीयाः परमात्माभितनिमित्तजीवदोषनिर्हारी श्रीरामः सीतासहितैः रामं भगवन्तं चेतना विज्ञापनं भावयन्ती स्वगुणैरखिलं विश्वं पूरयन्ती सातोषयते ब्रह्मादिगणैः श्रियते सेव्यते इति श्रीः श्रीङ्गः सेवायाम् सुगीति भाषितरूपान् दिन-स्तोति श्री हस्तायाम् सर्वं विज्ञापनं भगवन्तं भावयति स्वयं या सुगीतीति श्रीः त्रिगुणः सम्प्रदायः ओसम्प्रदायः श्री पद्धतित्थिकः ॥ सं० और, प्र, इन दोनों के विषय उपसर्ग पूर्वक (हुदाब् दाते) इस धातुसे (घञ्) प्रत्यय के विषय "जातो यक् चिण्कृतोः" इस सूत्र से युक् भागम होनेसे सम्प्रदाय शब्द भया तिससे सम् उपसर्ग का अर्थ परम्परा गा है और उपसर्ग का अर्थ सन है इससे श्रीसीताराम जू सहित मन्त्र पूजा ध्यान जाप धर्म है सोई सत मार्ग है यही श्रुतिस्मृति संहिता की पूर्ण सम्पत्ति है यथा "श्रीरामतापनीयोपनिषद्" सीतारामों तन्मयाचव पूज्यी जातान्वाभ्यां भुवनानि द्विसप्त । स्थितानि च पदतान्येव तेषु ततो रामो मानसो माय-याधात्" यह विश्व में बीज रूप श्रीसीताराम जू पूज्य है जगत् के मातापिता है जिन सीताराम जूसे चौदह भुवन उत्पन्न भया है और श्री सीताराम जू में स्थित है श्रीसीताराम जूमें लीन होता है त... यह चौदह भुवनो में मनुष्याकार मनुष्यशि श्रीराघव जू ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, योग, शान्ति तेज, वडैश्वर्यादिक दिव्य कल्याण गुण सहित प्रवेश करके सर्व जगत् को धारण पोषण करते हैं। विचिरहित स्वरू को दर्शाते) यथा, म० गा० यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकास्तः । न स सिद्धि-मवाप्नोति न सुखं न पराकृतिम्, ॥ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ । ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहाहंसि, ॥ (भावार्थः) जो पुरुष शास्त्र प्रति-पादित विधिकी परित्याग करके स्व इच्छानुसार सतसम्प्रदाय मार्ग को त्याग कर चलते हैं यह पुरुष न तो अपने कार्य में सिद्धि को प्राप्त होने और न इस लोक सम्बन्धी सुख को प्राप्त होते हैं तथा न परलोक सम्बन्धी सुख को प्राप्त होते हैं तिस हेतु से (कर्तव्य) करने योग्य कार्य (अकर्तव्य) न करने योग्य कार्य के विषय विशेष निश्चय में शास्त्र ही प्रमाण है शास्त्र के विधान से कहे हुए कार्य को करना चाहिये, ताते श्रुति स्मृति संहिताओं के सर्वोपरि श्रीसीताराम जू उपास्य हैं। यदि कोई कहे कि जब दोनों एक हैं तो दोनों के मित्र मित्र नाम रूपको उपासना करने की आवश्यकता क्या है इस विषय को चरितार्थ कर दिखाया है यथाः—शिव सम को रघुपति अत-धारी ताते द्रमाहन के चरितार्थी अबलोकन कीजिये (यथानारद पञ्चरात्र, अगस्त्य, संहिता सत्रह अध्याय श्रीभगवत्पञ्चरात्र सुतीर्ण प्रति) चकाराराधनं तस्य मन्त्रराजेन भक्तितः । कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुर्हरेः परम्, श्रीरघुवंश भूषणः श्रीबी स्वरूप प्राप्ति की इच्छा वाले श्रीशंकर जू किसी काल के विषय श्रीरघुनन्दन जू

की भक्ति सहित मन्त्रराज जप विधिसे अराधना करते भये किसी प्रकार कितनी काल तक सोना प्रसन्न दशावते है ।

दिठ्यवर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना ।

अजाप परमं जाप्यं रहस्ये स्थितचेतसा ॥

एकान्तमें सावधान चित्तसे विधिके जानने वाले वेद के विधि से भक्तः प्रातः शुद्धि सङ्कल्प ध्यात दश संस्कार कर यथा विधिः प्रातःसवनादि कृत्यं संकल्प रम्यस्थले पर्वताग्रे नदीतीरे वृक्षवृक्षे जलाशये गोष्ठे देवालयाश्रये उद्याने तुलसी-घने पुण्यक्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तैकान्तस्थितेऽपि वा पुण्यक्षेत्रे इति रहस्ये शब्देन धोवित्रकूटमिधिलाऽपि वैकटाद्रिदेशो प्राक्तः तत्र चेलाजितकुशोत्तरमासत-मास्तीर्थ्य पद्मासन उपविश्य श्रीरामं हृदि संस्मरन् रहस्ते जलमादाय श्रीरामप्रेरणया श्रीरामाराधनयोग्यतासिद्धयर्थं भूतशुद्धिमहं करिष्य इति संकल्प्य—

मन्त्राणां दश संस्काराः ।

भुजपत्रे लिखेत्सम्पक्व त्रिकोणं रोचनादिभिः ।

वारुणं कोणमारभ्य सप्तधा विभजेत्समम् ॥

एवमीशाग्रिकोणाभ्यां जायन्ते तत्र योनयः ।

(कोष्ट) नव वेद मिता (४८) स्तत्र विलिखेन्मातृकां क्रमात् ॥

अकारादि- हकारान्ता- माशादि- वरुणावधिम् ।

दक्षं तत्र समावाह्य पूजयेच्चन्दनादिभिः ॥

ततः समुद्धरेन्मन्त्रं जननं तदुदीरितम् ।

एतज्जननम् १ हंसः रामाय नमः सोहम् सहस्रजपेन दीपनं भवति ।
हूं रामाय नमः हूं पंचसहस्रजपेन बोधनं भवति २ फट् रामाय नमः फट् सहस्र-
जपेन ताडनं भवति ४ ऐं हंसः ॐ इत्येकसहस्रजपामिमन्त्रितजपेन तेनैव मन्त्रेण
तालपत्रोपरिलिखितं यन्त्रं अभिषेचनं इत्यभिषेकः ५ त्रों ॐ त्रों वषट् रामाय नमः
त्रों ४ ॐ ३ त्रों २ वषट् १ एवं सहस्रजपेन विमालीकरणम् ६ स्वधा वषट्
रामाय नमः वषट् स्वधा सहस्रजपेन जीवनं भवति ७ दुग्धघृतोदकैः तर्पयामि
रामाय नमः तर्पयामि एवं शतं तर्पणम् ८ ह्रीं रामाय नमः ह्रीं १ एवं सहस्रजपेन गोप-
नम् ९ ह्रीं रामाय नमः ह्रीं १ एवं सहस्रजपेन आप्यायनं भवति दश संस्काराः

एकादशहस्त्रेण सर्वं भवति १० इस प्रकार वेद की विधि से (दिव्य वर्ष रत्न) दिव्य जोरुद्र का सौ वर्ष सुन्दर प्रकार से अर्थात् विधि के युक्त जाप किया (रुद्र के वर्षका क्या गणित है) यथा , कमलासनादीनां दिनप्रमाणम् " चतुर्विंशसहस्राणां दिनं पितामहं भवेत् " पितामहसहस्राणि विष्णोश्च घटिका स्मृता ॥ विष्णोर्द्वी-
 दश लक्षानि फलाद्वैरीन्द्रमुच्यते " रुद्रस्याब्बुद संख्यानां ततो ब्रह्माक्षरं भवेत्—इति
 सूर्यसिद्धान्तः " चारोयुग एक हजार वर्ष बीतने पर ब्रह्मा जू के एक दिन उदतीत
 होते हैं, पितामह के एक सहस्र बीतने पर विष्णु की एक घटिका होती है चारह
 लक्ष विष्णु के बीतने पर ब्रह्मकला रुद्र का होता है रुद्र के अब्बुद संख्या बीतने पर
 सदातन ब्रह्म महानारायण का क्षणमात्र होता है इस प्रकार के दिव्य वर्ष से ज्ञप
 किया " प्रसन्नोऽभूत्तदा देवः श्रीरामः करुणाकरः " मंदाराध्येन रूपेण भजनीयः
 सतां प्रभुः " श्री कौशल राज कुमार जू करुणा के स्वरूप देवों का देव ध्यान करके
 जिनका मन्त्र जपने योग्य है सो श्री रघुवंश भूषण जू से प्रसन्न होत भये " (श्री
 राम उवाच) द्रष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्वप्नम् " आह्लादितो परां शक्तिं
 स्तुत्याः सात्त्वतसम्मताम् " श्री रघुनन्दन जू बीते हे शिव यदि मेरी भावना ध्यान
 हो मात्र है जो साक्षात् स्वरूप का अवलोकन किया चाहते हो अर्थात् सब का कारण
 रसास्वाद अवलोकन किया चाहते हो तो (सात्त्वतसम्मताम्) अर्थात् नारायण,
 महानारायण, वासुदेव, कृष्ण, महाशंभु आदिओं से पूजित परा शक्ति श्री जनक
 दुलारीजू भानन्दन के देने वाली ऐसे श्री किसोरीजू उनके स्तुति कीजिये (यदि
 कहें कि हम तो आप को इष्ट जानते हैं अन्य से क्या तात्पर्य है निसपर कहते हैं)
 तद्वाराध्य सदा रामस्तदधीनस्तथा विना । तिष्ठामि न क्षणं शंभो जीवनं परमं
 मम " श्रीरघुनन्दन जू बीते हे शिव वह श्री जनक दुलारी जू का हम आराधना
 करते हैं उन्हीं से हम सदा भानन्दित रहते हैं उनके हम अधीन हैं (जानकी बिना)
 श्रीजनक दुलारी जू के बिना हे शंकरजू एक क्षण भी हम नहीं स्थिति हो सकते
 काहे कि श्रीकिसोरी जू हमारे सुन्दर प्राण के आधार हैं " इत्युक्त्वा देवदेवेशो वशी-
 करणमात्मनः । पश्यतस्तस्य रूपं स्वमन्त्रध्यानं दधौ प्रभुः " देवों के देव अर्थात् महा-
 नारायण वासुदेवादि स्वामि श्री कौशल कुमारजू अपने वश होने के यत्न कहते भये
 कि जो मेरे को अपना वश किया चाहे तो श्री जनक दुलारीजू के सेवन करे ऐसा
 कह कर अपने रूप का अन्तर्धान किया अर्थात् अपनी दिव्य प्रकृति से शिवजू का
 जो दिव्य चतुर्ताही को आच्छादित करते भये यह चरितार्थ है " (सदाशिवसंहि-
 तायां) अगस्त्यः पुतीक्ष्णं प्रति " राज मार्गमिमं विद्धि रामोक्तं जानकीकृतम् । यद्वृत्ते
 चान्य मार्गोस्तु चौराणां विधिका यथा । श्रीरघुनन्दन जू से कही दूर, और भोजनक

हुलारी के कृत अर्थात् रामों के शाश्वत सम्बन्ध युक्त यह आज मार्ग है अर्थात् सम्प्रदाय शिरोमणि है ताते श्री सम्प्रदाय सर्वोपरि कथित है ताते इन मार्ग अर्थात् युगल भावना के बिना जो भगवत्प्राप्ति का मार्ग है सो बोर का मार्ग निन्दित वृण्वतोय है " पुनः—रूपा व साधन सिद्धिभक्तिः श्रीमैथिलोपतेः । अन्यन्तु केवल-धर्म साधितं मतवादिभिः " श्री मैथिली मैथिलोपति अर्थात् श्री सीताराम उनके दोनों के रूपा साधन सिद्धि तो भक्ति का मार्ग है अर्थात् युगल उपासना उचित है इन धर्मों से अन्य जो धर्म श्रुतियाँ करके जो जो प्रतिपादित है वा प्रचार है सो केवल परिधर्म मात्र है अर्थात् व्यर्थ है पुनः यथा वा० सु० का० २० " श्री जानकी जी राम के प्रति कहती है "विदितः सर्वं धर्मज्ञः शरणागत वत्सलः" । तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि " क्योंकि वे सम्पूर्ण प्राणी में तथा सम्पूर्ण धर्म में व शरणागत वत्सल के नाम से प्रसिद्ध है यदि तुम अपना जीवन चाहते हो तिनके साथ मैत्री करो " प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ॥ मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि " तिन शरणागत वत्सल के निकट जाय तिनको प्रसन्न करो व पवित्र चित हो अर्थात् भक्ति पूर्वक हमको ले उन्हें सौंप आवी " एवं हिते भवेत्स्वस्ति संशय रघूत्तमे । " अन्यथा त्वंहि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम् " शरणागत वत्सल श्री रघुनन्दन जू को सौंप (शरणागति हा जाय) तुम्हारे जीव की स्वस्ति अर्थात् कल्याण होगा व इसके विपरीत करने से बड़ी विपत्ति पावोगे (श्री किसोरी जू ने संप्रदाय रघूत्तमे यह बचन कहि) महा सदा शिव संहिता में कहा (श्री जानकी सम्प्रदायां) ताते सश्वत सम्बन्ध सर्वोपरि जानेगे " यथा वा० वा० का० सं० २ श्लो० ४३ तदुपगतसमाससंख्ययोगं समधु रीपन तदर्थं वाक्यं वद्धम् " रघुवरचरितं मुनिप्रणतं दशशिरसश्च वधं निशामय ध्वम् " संधिसमास योग से युक्त प्यारी युक्त वाक्य से सम्मिलित वाल्मीकि जू के बताया हुआ श्रीराम चरित्र जिसमें रावन का वध है सो सुनिये " अ० ४ श्लोक० १ प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकि भगवानृषिः ॥ चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रं पदमर्थ-वत् " जब श्री रघुनन्दन जू लंका दिग्बिजय कर आये राज करने लगे तमो अपने आश्रम वै निवास कर भगवान् श्री वाल्मीकि जू ने सम्पूर्ण श्रीराम चरित नाट्यजो के कहने व प्रज्ञा जू के आशावाद से विचित्र पद सहित बताया । क्योंकि भगवत् तत्व का यथार्थ जानने वाले थे, नहीं तो ऐसा सुन्दर ग्रन्थ रूपन रहित न होता ॥ १ ॥

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः ।

तथा सर्गशतान्पञ्च षट् काण्डानि तथोत्तरम् ॥

वाल्मीकि जू ने इस काव्य को २४००० श्लोक व ५०० सर्ग और सात काण्ड में कथन किया है इस प्रसंग के द्वारा यह दिखलाते हैं कि प्रथम द्वितीय तृतीय अध्याय में सबत्र श्रीराम चरित सब कथन किया है और वही चरित को श्री सीता चरित सम्पूर्ण दर्शाते हैं ताते श्री सीताराम अमेद श्रीवाल्मीकि जू के सर्वोपरि सिद्धान्त है ॥ यथा—

काव्यं रामायणं कृतं न सीतायाश्चरितं सहत् ॥

पौलस्त्यबधमित्येवं चकार चरितव्रतः ॥

कुश, लव, को थोड़ाही ग्रन्थ नहीं पढ़ाया वरन सम्पूर्ण श्री सीता के चरित रावण बध सहित रामायण बनाय मुनिराज ने पढ़ाया ॥ इत्यादि वाक्य से श्री सीतारामजू अमेद है अमेद ही उपासना कर्तव्य है यथा० सु० का० सू० २१ श्लो० १५ यथा श्रीकिसोरी जूके बचन ।

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ।

जैसे सूर्य को छोड़ कर प्रभा अन्य किसी के पीछे नहीं जा सकती इसी प्रकार हम प्राणप्रिय श्रीरघुनन्दन जू को त्याग कर अन्य को कदापि नहीं ग्रहण कर सकी ॥ (श्रीरघुनन्दन जू का वचन)

अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा ॥

जैसे सूर्य को त्यागकर प्रभा अन्यत्र कहीं नहीं जाती है इसी प्रकार श्रीप्राणप्रिया श्रीजानकी जू को त्याग कर कहीं नहीं जाते (प्यारे ! परस्पर भाव को अवलोकन कीजिये) यथा हनुमत्संहितायाम् ॥

तुरीया जानकी प्रीक्ता तुरीयो रघुनन्दनः ।

उभयोरंशजाः सर्वे चावताराः स्वसंख्यकाः ॥

श्रीजनकदुलारी जू तथा श्रीरघुनन्दन तुरीय है यहां तुरीय शब्द केवल शुद्ध के वाचक है । और अन्य अवतार सब इन दोनों अंश से हुये हैं ।

सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः ॥

श्रुतं दृष्टं यथा सर्वं चिरायुर्जीवनान्मुने ॥

सब भवतारों में श्रेष्ठ भवतारी श्री राघव जू है । (तथा आदिरामायणे
सेतुबन्धसमये नलं प्रति)

इदं सुगोच्यं भवते वदामि पसंगतः सेतुनिबन्धनेऽस्मिन् ।

न वाच्यमेतद्भवता परस्मै भक्त्योपपन्नाय तु वाच्यमेव ॥

रामेति मन्त्रं कवयो वदन्ति यद् द्व्यक्षरं नाम रघुत्तमस्य ।

अस्मत्प्रभोरस्य महामहिम्नो मनुष्यलिङ्गस्य परस्य पुंसः ॥

तदेव सम्यग्विलिखोरुबुद्धे ! प्रत्यद्रिपायणशिलामुतावत् ।

भवाम्बुधिं येन जनास्तरन्ति किं तारणं दुष्करमस्य तेषाम् ॥

आवां गणेशोऽपि जनस्य पापान्यतीवसम्भारसमाकुलानि ।

संपूक्रियन्ते मनुजा यदेतैर्भृशं विलुप्तैरिह तन्न चिच्चम् ॥

श्राद्धनुमत लाल जू बोले है प्रियबन्धु नल जू ! यह गोपनीय श्रीराम नाम का रहस्य इस सेतु के बन्ध के प्रसंग से मैं आप से कहता हूँ आप को सामान्यजीवों से नहीं कहने योग्य है जोकि श्रद्धा समेत व श्रीसीताराम नाम की भक्ति से संयुक्त हो उनसे कहना योग्य है और जो हमारे स्वामी बड़ी महिमावाले मनुष्य लीलाधारी परमात्मा व पुराण पुरुष है उन श्रीरघुनन्दनजू का जो दो अक्षर वाला नाम है उसका भाव यह है कि दो अक्षर से बत्तीस अक्षरपर्यन्त श्रीसीताराम नाम का मन्त्र है कि शत कोटि से भी अधिक हैं तिन सभी मन्त्रों में सीताराम यह जो दो अक्षर वाला नाम है उनको श्रीवाल्मीकि आदि कविवरों ने मन्त्र कहा है अहो विशालबुद्धे उस सीताराम मन्त्र को ही प्रति पत्थरों में लिखो और उनको यदि समुद्र में डार दो तो सहज ही में सेतु बंध जायगा बिलम्ब न लगेगा क्योंकि जिन श्रीसीताराम नामके प्रताप से अपार भवसागर को प्राणी तर जाते हैं तो उन श्रीसीतारामांकित पत्थरों का तरण क्या दुष्कर है, क्योंकि पापण समूहों से भी प्राणियों का पाप भारी है उन पापों से सब व्याकुल रहते हैं जब वे प्राणी श्रीसीताराम नाम का उच्चारण करते हैं तब पाप रूपी बोझा से हलके पड़े जाते हैं ऐसा श्रीसीताराम नाम का प्रताप है इसमें कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिये, इस प्रसंग के विषय श्रीराम नाम की धुनि है नहीं तो हे प्रियवर ऐसा नहीं जानेंगे कि केवल शिला में तथा वाल्मीकि तथा हनुमत लाल जू के सिद्धान्त केवल श्रीराम नाम है पूर्व प्रसंग से स्पष्ट है इससे शिला में भी श्रीसीताराम नाम दो अक्षर उपदेश जाना लिखना श्री मारुतनन्दन जू को तो युगल नाम रूप परम इष्ट है आगे इस भाव को दर्शाते हैं यथा:—

यथा प्रमोदनाटके ।

नाम्नः पराशक्तिपतेः प्रभावं ।

जानात्ययं मर्कटराजराजः ॥

तद्रूप- वागीश्वर- वायु- सुनु-

र्घद्रोमकूपे ध्वनयो लसन्ति ।

परा शक्तिः पराशक्ति-पतेः ॥

अर्थात् श्रीसीताराम जू अन्तर्यामी मङ्गल दायक के नाम के प्रभाव को केवल श्रीहनुमत लाल जू जानते हैं इन से परे अन्य कोई नहीं जानते हैं क्योंकि वायु कुमार जू श्री सीताराम नाम रूप उपासकों के नायक होकर अहर्निश श्री सीताराम का ध्यान करते हुए विभ्राम करते हैं जिनके रोम कूपों से श्रीसीताराम की ध्वनियाँ उल्लास करती हैं अब उन्हीं का उपाध्यान जो मतामन्तर में वर्णित हुआ है उसे कहते हैं ।

राज्योत्सवागतजनाय रघुप्रवीरः ।

प्रीत्वा हृष्यनेकमणिरत्नविभूषणानि ॥

दत्त्वाऽनिलात्मजमपास्य विदेहजायै ।

मालां ददौ रघुपतिः परमादरेण ॥

जिस समय राजाधिराज रघुवंश भूषण श्रीरघुनन्दन जू रावणादि को बध कर पुष्पकारुड होकर श्रीअवध में पधार राजसिंहासताकूट हुये थे उस समय राज्योत्सव देखने के लिये अधिक राजा महाराज आये थे उन सबों के लिये बड़ी प्रीति से अनेक मणियों व रत्नों तथा अलंकारों को देकर श्रीरघुनन्दन जू ने हनुमत लाल को छोड़ कर बड़े आदर से श्री जनक दुलारी जू को अमूल्य माला को दिया ।

तया हनुमते दत्ता सैव माला हृष्यमूलिका ।

दशनैः शकलीकृत्य त्यक्ता तेन जलाशये ॥

उन बड़े मोल वाली माला को श्री जनक नन्दनी जू ने पार्श्व में खड़े हुये श्री हनुमत लाल जू को दिया उन्होंने उस माला को दशन से कूटकूट कर उसमें श्रीसीताराम के न होने से उस को जलाशय में फेंक दिया ।

हाहेति जल्पितं सर्वस्तदा समुत्थानरैः ।

स्वजातीयमरे कर्म त्वया कृतमरिन्दम ॥

उस समय नररूपधारी देवताओं समेत सर्व धानरों ने हाहाकार मचाय कहा कि अरे शत्रुओं के दमन करने वाले हनुमत यह क्या तुमने अपनी जाति का कर्म किया ऐसे अमूल्य प्रदाय को नष्ट भ्रष्ट कर दिया ।

रामस्ततो मारुतिमत्युदारमाहूय चाऽऽरादभिवर्तमानम् ।

पप्रच्छ कस्मान्महती सुमाला त्यक्ता त्वया ब्रूहि विदेहजार्पिता ॥

तदनन्तर निकट ही खड़े हुये अनि उदार वायु कुमार जू को बुला कर श्री रघुनन्दन जू ने पूछा कि आ जनक दुलारी जू की दो हुई बड़े मोल वाली सुन्दरी माला को भापने किस कारण फोड़ कर जलाशय में फेंक दिया इसका उत्तर शीघ्र दीजिये (उसका हनुमान जू बोले)

ब्रह्मेति यद्ब्रह्मविदो वदन्ति आत्मेश्वरश्चेति वदन्ति सन्तः ।

सीतापते त्वं तदधीति बुद्ध्या त्यक्ता मयेयं सकलार्तिरूपा ॥

अहो सीतापते ब्रह्मवेत्ता सब जिनमें ब्रह्म कहते हैं और सन्त महान्मा जिनमें आत्मेश्वर कहते हैं वह तुम्हीं हो इस बुद्धि से सबों के लिये दुःखदायिका इस मलिका को मैंने त्याग दिया ।

श्रीरामश्रवणे दास्ये ममास्तु सफला स्पृहा ।

तस्या विरोधिनी या तु निर्मूला क्रियतां प्रभो ॥

अहो प्रभु श्री राम जू आप के उस श्रवण करने और दास्यपने में मेरी वाञ्छा सदा सफल बनी रहे उसके नाश करनेवाली जो वस्तु है उन्हें निर्मूल करिये । इस प्रसंग का यह भाव है । श्रीसंप्रदाय धर्म के प्रवर्तक श्रीकिसोरी जू तथा श्रीरघुनन्दन जू श्रीमारुति जू है समस्त मुनि ऋषियों तथा भालू बानर जो के श्रीसीताराम जू के उपासक है इस प्रसंग के द्वारे श्री वैष्णव धर्म को उपदेश करते हैं कि यदि मैं प्राप्ति के अभिलाषा तथा सद्गुरु उपदेश श्रीसंप्रदाय धर्मावलम्बियों को उचित है कि बिना श्रीसीताराम सम्बन्धि मणि के तुल्य न हो वह परित्याग योग्य है पुनः राजमणि यह सब श्रीसीताराम जू के भक्ति के वाधक है जब तक मणि धन में बना रहता है तब तक किसी प्रकार से आप की भक्ति को जीव नहिं प्राप्त होता जब संसार के पदार्थों का निर्मूल छेदन हो जाता है तभी आप की भक्ति प्राप्त होती है तत्पश्चात् आप मिलते हो यही आपका श्रीसंप्रदाय का धर्म है) आप के नाम

बिता सब व्यर्थ है पूर्व जो वस्त्र भूषण दिया था तिन्ह सब में युगल नाम से भूषित थे ताते रखा था इस द्वारे वस्त्र में भी श्रीसीताराम नाम युक्त धारण करना श्रीवैष्णव का धर्म है आगे जो पाषाण में श्रीसीताराम नाम लिख कर जल में तैराय इस द्वारे ललाट के विषे श्री वैष्णव को सदा सर्वदा जगत् निवृत्ति के लिये धारण करना देखलाया बाह्य साधन से अन्तर के विषे उपाप्त हो होता है उस भाव को अंगे दर्शाते हैं । पूर्व में केवल श्रीरामगद् कहते आये हैं उस पर के अभाव कर युगल श्रीसीताराम नाम स्पष्ट कर दर्शाते हैं कि जिस केवल श्रीराम नाम लेकर बहिर्मुख न हो जाये श्रीयुगल नाम का रहस्य अत्यन्त गुप्त है ताते निज संप्रदाय धर्म को दर्शाते हैं ।

मम स्वान्ते सदैव त्वं सीतया सह तिष्ठमि ।

अद्यैव सर्वे पश्यन्तु स्थितं त्वां जानकीपते ॥

अहो श्रीजानकीपते मेरे हृदय में श्रीसीता समेत सदैव स्थित रहते हैं इस हेतु आजही मेरे अन्तःकरण में टिके हुये आप सब प्राणी देख लेवे इस द्वारे श्री संप्रदाय के विषय सर्वोपरि युगल उपासना सिद्धान्त है ।

विदीर्घ्य वक्षस्थलमञ्जनीसुतः प्रदर्शयामास च राममद्वयम् ।

हृदम्बुजे संस्थितमञ्जुलोचनं महीमुताराधितपादपंकजम् ॥

उस समय युगल चरण उपासित श्रीअञ्जनीकुमार जू ने अपने वक्षस्थल को फाड़ कर हृदयकमल में टिके हुये शोकविमोचन पंकजलोचन द्वैतभावरहित श्रीसीताराम रूप का दर्शन सबों को कराया इससे यह दर्शाया कि जब इस प्रकार के उत्कृष्ट वैराग्य को लाभ करता है तब ही श्रीसीताराम जू हृदय कमल में बास करते हैं यथा—“जाहि न चाहिय कबहु कहु, तुम्हसन सहज सनेह । बसहु निरन्तर तासुं उर, सो राउर निज गेह” ॥ चरितार्थ करते हैं ।

मारुतेर्वभवं दृष्ट्वा सर्वे संतोषमागताः ।

रामेणालिङ्गितः श्रीमान् हनूमानञ्जनीसुतः ॥

इस प्रकार श्री वायु नन्दन जू के पेश्वर्य्य को देख कर सब सभा मात्र आनन्दित हुये और श्रीराम जू ने भी श्रीअञ्जनी कुमार श्रीमारुतिनन्दन जू को अपने अंग में लिपटा लिया । आनन्दित होने का भाव यह है कि प्रथम सब शोकयुक्त होते भये थे कि एक तो रत्न अनमोल था दूसरे श्रीकिसोरी जू को दिया था अब इस प्रसंग से यह दर्शाया कि यदि साम्राज्य युगल सरकार भी समस्त लोगों के विभव देवे तो भी श्रीवैष्णवों के लिये निर्मूल्य त्याग है तब ही सरकार हृदय में लगाते हैं, औरों की क्या कथा है ।

जयशब्दो महानामीतदा राघवमण्डपे ।

सीताप्रमुदिता तस्मै वगानभयदान्ददौ ॥

उस समय श्रीसीताराम जू महाराज के मण्डप में बड़ा भारी जयकारी शब्द हुआ उसी से आनन्दित हो श्रीजनक कुमारी जू ने श्री हनुमतलाठ जू के लिये अमयदायक बरदानों को दिया । जब इस प्रकार का वैराग्य प्राप्त होता है तबही श्रीकिसोरी जू अमय बरदान देतो है (यह लक्षणसम्पन्न होने की शरणागत कहते हैं) सकृत् देवप्रपन्नय । का यह चरितार्थ है ।

रामलीलामृतं चैतत्परमानन्ददायकम् ।

श्रोतृणां चाथ वक्तृणां पापसंचविदारकम् ॥

यह श्रीसीताराम लीला का अमृत है जो कि परम आनन्द दायक होकर श्रोता और वक्ताओं के पाप समूहों को नाशता है अर्थात् पूर्वोक्त धर्म के अनुकूल आचरण वाले गुरु तथा शिष्य समस्त पापों से रहित हो श्रीसीताराम जू के शरणागत कहाने हैं व सीताराम जू के प्यारे हैं । इति—

(ब्रह्मरामायणे श्रीरामवाक्यं श्रीजानकी प्रति)

ये त्वां स्मरन्ति सद्भक्त्या ते मे प्रियतमाः प्रिये ।

तेषां भाग्योदयं वक्तुं न शक्तोऽहं कदाचन ॥

हे प्रिया जू जो सत्प्रेम आपको स्मरण करते हैं सो मेरे का प्राण से भी अधिक प्रिय है उनके भाग्य को प्रशंसा हम नहीं कथन कर सकते किसी प्रकार से कभी कभी आपको स्मरण करते हैं उस फल को कहते हैं ।

क्वचिद्वां ये स्मरन्त्यन्तर्मम पार्षदतां पराम् ।

कोटिजन्माज्जितैः पुण्यैर्दुर्लभामपि यान्ति ते ॥

जो कभी कहीं भीतर से आपका स्मरण करते हैं सो मेरी सर्वोत्कृष्ट पार्षदता को प्राप्त होते हैं जौन परिकर का होना कोटिन जन्मन के सुकृत से अति दुर्लभ है ।

श्रीसीतारामनाम्नस्तु सदैक्यं नास्ति संशयम् ।

इति ज्ञात्वा जपेद्यस्तु स धन्यो भाविनां वरः ॥

श्रीसीताराम नाम दोनों एक हैं इनमें भेद नहीं संदेह रहित ऐसा जो जानते हैं सो भाविकन में श्रेष्ठ हैं ।

एकं शास्त्रं गीयते यत्र सीता कर्माण्येकं पूज्यते यत्र सीता ।

एका लोके देवता चापि सीता मन्त्रश्चैकोऽप्यस्ति सीतेतिनाम ॥

जहाँ श्रीकिसोरी जू के परतय है सोई मुखपशास्त्र है और कर्म है पूजादिक है एकहि देवता सर्वोपरि जतक दुन्दारी जू है सर्वोपरि श्रीसीता नाम महा मन्त्र है ।

नान्यः पंचा विद्यते चात्मलब्धौ नान्यो भावो विते चापि लोके ।

नान्यद् ज्ञानं विद्यते चापि वेदेष्वेवं सीतानाममात्रं विहाय ।

आत्मा परमात्मा के प्राप्ति के उपाय और नहीं है तथा और भाव नहीं है और ज्ञान भी वेद में नहीं है सीता नाम छोड़ करके ।

सीतेति मंगलं नाम सकृच्छ्रुत्वा कृपाकरः ।

श्रीरामो जानकीजानिर्विशेषेण प्रसीदति ॥

श्रीसीता नाम महाप्रमंगलमय नाम है श्री कृपासिन्धु श्रीराम जानकीप्राणबलम विशेष प्रसन्न हो जाते हैं । श्रीसीता नाम के विषय स्फुट प्रमाण दर्शावत है । यथा शिवपुराणे श्रीशंकरवाक्यं नारद प्रति—

सीतया सहितं रामनाम जाप्यप्रयत्नतः ।

इदमेव परं प्रेमकारणं संशयं विना ॥

शिव पुराण के विषय श्रीशंकर जू का वचन नारद प्रति—है श्री नारद जू साधनता पूर्वक श्रीसीताराम नाम सुधा के सदन परम प्रेम प्रदायक सर्व मनोर्थ शीघ्र के कारण है ताते युगल नाम जपना सार है । तत्रैव नारदवाक्यं याज्ञवल्क्यं प्रति—

सीतया सहितं रामनाम येषां परं प्रियम् ।

त एव कृतकृत्याश्च पूज्याः सर्व सुरेश्वरैः ॥

श्रीसीता संयुक्त राम नाम जिन्ह महद्जनों को परम प्रिय है हे मुने सो सज्जन कृतार्थ रूप है सर्व देव शिरोमणिन अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारयणादि से बन्दनीय है (श्रीसीताराम नाम जपने की रीति सिखाते हैं)

आदौ सीतापदं पुण्यं परमानन्ददायकम् ।

पश्चाच्छ्रीरामनाम्नस्तु कथनं संप्रशस्यते ॥

श्रीसीता नाम अतिशय पवित्र प्रथम श्रद्धा के सहित उच्चारण करे तत्पश्चात् श्रीराम नाम उच्चारण करे यह जपने की रीति प्रसिद्ध है अर्थात् सर्व का सिद्धान्त है (बृहन्नारदीय पुराणे नारदवाक्यम्)

॥ श्रीसीतारामात्मकं नाम सुधाधाम निरन्तरम् ॥

॥ ये जपन्ति सदा भक्त्या तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम् ॥

श्रीसीताराम नाम सम्पूर्ण ईशों के आत्मा सुधा धाम जो सदा स्नेह के सहित जपते हैं तिन्हें लोक तथा परलोक के किसी पदार्थ की कमती नहीं रहती है (यथा इतिहासोत्तमे भृगुवाक्य)

॥ हृदमेव परं भाग्यं प्रशस्यं सद्भिरुत्तमैः ॥

॥ श्रीसीतारामनाम्नस्तु सततं कीर्तनं मुने ॥

परम भाग्य सन्त सज्जन यही कथन करते हैं कि श्रीसीताराम नाम सर्वदा स्नेह सहित उच्चारण होय इस बिना सब अभास्य है ।

यथा लोमशसंहितायाम् शिववाक्यम्

॥ सीतया सहितं यत्र रामनामप्रकीर्तनम् ॥

॥ न तत्र नामदोषाणां प्रवृत्तिः स्यात्कथंचन ॥

श्रीसीता नाम के सहित जहां श्रीरामनाम उच्चारण होता है तिन्हें स्थान में दशनामापराध नहीं होता कदाचित् । श्रीमद्गोस्वामी परमाचार्य जगद्गुरु तुलसी दास जू अवध्वान्त मार्तण्ड श्री धर्मप्रवर्तक परमाचार्य का सिद्धान्त दर्शाते हैं आपका कथन है साक्षात् श्री वाल्मीकि जू ने स्वधर्म रक्षा अर्थात् श्री संप्रदाय धर्म को जीण उद्धार करने को ही अवतार धारण किया है । यथा भक्त माल—“कलिकुटिलजित निस्तार हेतु वाल्मीकि तुलसी भयो” कुटिल कहिए श्रीरघुनन्दन जू तथा श्रीकिसोरी जू में भेद तथा अन्य इसके तुल्य प्रतिपादन करना यही कुटिलाई है ताही को दूर कर विज श्री संप्रदाय धर्म को आपने पुनः जीर्णोद्धार किया अर्थात् श्री युगल स्वरूप नाम रूप धाम लोला को कथन किया । यथा भविष्य पुराणे तथा वासिष्ठ संहितायाम्—

॥ वाल्मीकिस्तुलसीदामः कलौ देवि भविष्यति ।

॥ रामचन्द्रकथां साध्वीं भाषारूपां करिष्यति ॥

ताते श्री वाल्मीकि जू होना सर्वोपरि सिद्धान्त है श्री संप्रदाय का आचार्य मुख्य श्रीमद् वाल्मीकि जू तथा श्रीमायत नन्दन जू तिन्हे जुगल नाम के आराध्य प्रथम आचार्य जान दर्शाया ॥ यथा

॥ सीतारामगुवाग्राम पुण्यारण्य विहारिणी ।

॥ वन्दे विशुद्धविज्ञानी कवीश्वरकपीश्वरौ ॥

इस श्लोक से भी संप्रदाय के विषय युगल उपासना दर्शाई ॥ तत् पश्चात् युगल नाम को सर्वोपरि कथन करते दूये चरितार्थ करते हैं ॥ यथा—

उद्भव-स्थिति-संहार-कारिणीं क्लेश-हारिणीम् ।

सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवाः सुराः,

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।

यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षवितां,

वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

दोनों नाम के एकार्थ भाव दर्शाया यथा प्रथम श्लोक में उद्भव स्थिति संहार कारिणी ।

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवाः सुराः ।

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ॥

यह दोनों पद के एकता जानने पुनः “क्लेशहारिणीम्” “यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षवितां” द्वितीय पद का तुल्य भाव दर्शाया “सर्वश्रेयस्करीं” “यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षवितां” तृतीय पद की तुलना “सर्वश्रेयस्करीं” वन्देऽहं तमशेषकारणपरं” चतुर्थ पद की एकता किया “सीतां” “रामाख्यं” पञ्चम पद स्पष्ट भया “रामवल्लभां” “ईशं हरिम्” षष्ठपद युगल नाम दर्शाया अर्थात् युगल नाम की एकता दर्शाई है । यही सम्प्रदाय है । इन्हें चरितार्थ दर्शाते हैं

चौपाई ।

सिया राम मय सब जग जानी । करौ प्रणाम जोरि जुग पानो ॥ पुनः—

जनक सुता जग जननि जानकी । भतिषय प्रिय करुणानिधानकी ॥

ताके युग पद कमल मतारौ । जासु कृपा निर्मल मति पावौ ॥ पुनः—

पुति मन बचन कर्म रघुनायक । चरण कमल बन्दी सब लायक ॥

राजिव नयन धरे धनु शायक । मक विपति भञ्जन सुलदायक ॥

दोहा ।

गिरा अर्थ जल बीच सम कडियत भिन्न न भिन्न ।

बंदौ सीता राम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥

हुये जीवों के आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक यह त्रिविध ताप को निवृत्त करने वाली भक्तों की रक्षा करने वाली इस से पालन पितृत्व गुण प्रधान महा लक्ष्मी तिन कर बीज (श्री) सर्वश्रेयस्करीन् अर्थात् स्वचरण शरणागत जीवों को सर्व श्रेयः अर्थात् सम्पूर्ण रसोंके पोषण करने वाली शृंगार मूर्ति श्री कौशल राज किशोर के मुख्य विहार में अपनी कृपा कटाक्ष प्रेम पराभक्ति से प्राप्त करनेवाली इससे रामेश्वर स्व प्रधान मुख्य नायिकास्व सिद्ध हुवा तिन कर बीज (क्लीं) है श्रीर (रामवल्लभाम्) अर्थात् राम तद्वत्तमा इससे श्री सीताराम जू का (रांश्री) गिरा अर्थ को सम्पूक्त श्री सीताराम जू है जैसे निरर्थक घाणी नहीं होती है इसी प्रकार श्री सीता जू का एकत्व होना अप्रसंग है इससे यहां श्री सीता शब्द राम रूप अर्थ से सम्बलित है क्योंकि अर्थ का त्याग कर शब्द का रहना असंभव है इसी प्रकार श्री राम जी को त्याग कर श्री सीता जू की स्थिति और किशोरी जू को परित्याग कर श्रीराम जू की स्थिति यह दोनों स्थिति असंभवत्व गुण वाली हैं ताते श्री युगुल स्वरूप अमेदही वर्तमान है (ओ३म् श्री क्लीं श्री रां सीतारामायनमः) ११ अक्षरी यह युगुल मन्त्र भी सिद्ध होता है ॥ श्री जानकी विनोद विलासे ॥ “सीतां विना भजेद्रामं सीतां रामं विना भजेत् । कल्पकोटिसहस्रैस्तु लभते न प्रसन्नताम् ॥ श्री किशोरी जू के बिना श्री रघुनन्द जू का नाम लेते हैं इसी प्रकार श्रीरघुनन्दन जू का नाम श्री किशोरी जू के बिना लेते हैं ऐसे प्राणी को कोटिकल्प लौ प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती ॥ “सीतारामात्मकं ध्यानं सीतारामात्मकार्चनम् । सीतारामात्मकं नाम जपं परतरात्परम्” श्री सीताराम जू के सहित ध्यान, पूजा, जप, ज्ञान, सम्पूर्ण साधन श्रेष्ठ हैं । केवल करना व्यर्थ है किन्तु अगति के देने वाला है अर्थात् साम्प्रदाय विरोध है । साम्प्रदाय विरोध जो है वही महापापी पापण्डी, धर्मभ्रष्टा है ताके फल नर्क चोरासी है तत्त्वाचार्य गोस्वामि जू ने स्पष्ट कथन किया है यथा (श्री राम नाम कलामणि कोष मंजूषा)—

श्री ते हि भक्त प्रसन्नताम् (दोहा ।

तुलसी भेंदे रूप निज, बिंदु सिया को रूप ।

(गीता) ॥ देखि लखे सीता हिये, राघव रेफ अनूप ॥

तुलसी जो तजि सीय को, बिंदुरेफ भै खाहु ।

(गीता) ॥ तो कुंभी मो कल्प शत, जाहु जाहु परि जाहु ॥

अर्द्धचंद्र जो महा कारण शरीर है ताही की प्राप्ति को श्री गोसाईं जू कहते कि निजरूप भेंदे अर्थात् अपने महा कारण स्वरूप प्राप्त भये पुनः शेष रहा जो बिन्दु शणव का पंचम कला से सीता का रूप है अर्थात् अंश है तिस बिन्दु को श्री सीता करि हिय में देखि तब अनुपम रेफ को श्री राघव करि लखे

अर्थात् तब श्री जनक बुलारी जू के प्रथम शरण भये श्री रघुनन्दन जू की प्राप्ति होती है श्री मोसार्दे' जू कहते हैं कि जो श्री सीता जू को तजि अर्थात् श्री जानकी जू के शरण नाम, रूप, लीला, धाम, बिना जिसको विन्दु अर्थात् केवल रूप पुनः रोक राम रूप की प्राप्ति की चाह भई अर्थात् केवल श्री राम नाम, धाम, रूप, लीला, लीला सी कल्प तक कुंभी पाक नरक को जाहु जाहु निश्चय करि जाहु अर्थात् और किसो प्रकार से जीव को कल्याण न होवगो, श्री तत्वाचार्य ने सम्प्रदाय धर्म को स्पष्ट कर देखलाया कि युग नाम, युगल रूप, युगल धाम, युगललीला, युगलपञ्च संस्कार ऊर्ध्व पुण्ड्र पीतश्वेत विन्दु सहित, युगलकंठी, धनुष बाण, युगल मुद्रा, तथा लालाट के विषय श्री सीता राम नाम धारण करना यह श्री सीताराम जू का पञ्च संस्कार है बिना संस्कार के ऊर्ध्व पुण्ड्र मीमांसा में पूर्ण रीति से व्याख्या किया गया है भिन्न २ सम्प्रदायों तथा श्रुति स्मृतियों में देखलाया गया है पक्षपात रहित ॥ श्री जानकी विलासोत्तमे, "स रामो न भवेज्जातु सीता यत्र न विद्यते । सीता नैव भवेज्जातु रामो यत्र न विद्यते ॥" जहां श्री जनकनन्दिनी जू नहीं तहां श्री रघुनन्दन जू नहीं है जहां श्री रघुनन्दन जू नहीं हो तहां श्री जनक नन्दिनी जू नहीं हैं दोनों का सम्बन्ध परस्पर है ताते युगल पांच संस्कार अवश्य कर्तव्य है "सीता राम विना नैव रामः सीतां विना नहि । (श्री) सीतारामयोरेव संबन्धः शाश्वतो मतः ॥" श्री सीता विना राम नहीं श्री राम विना सीता नहीं यह सीताराम का परस्पर नित्य सम्बन्ध है एक रस सर्वदा रहता है ॥

रामः सीता जानकी रामचन्द्रो नाहुर्भेदो ह्येतयोरस्ति किञ्चित् ।

वन्तो ज्ञात्वा तत्त्वमेतद्विचित्रं पारं याताः संसृतेमृत्युकालात् ॥

श्री सीता राम जू में किञ्चित् मात्र भी भेद नहीं है इस रहस्य को संत ज्ञान के संसार समुद्र पार हो गये मृत्यु काल से रहित होते हैं पूर्वोक्त श्रुति प्रमाण युक्त दर्शाते हैं यथा सीतोपनिषत् (आथर्वणी)

इच्छा-ज्ञान-क्रियाः शक्तित्रयं यद्भावसाधनम् ।

तद्ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे ॥

भाषार्थः—इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति, भक्तिही साधन जिस तत्त्व का ऐसे श्री सीता तत्त्व को उपासना करता है ॥ "(ओ३म् भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः) देवा इ वै प्रजापतिमब्रुवन्का सीता किं रूपमिति ॥" देवता समुदाय एक समय ब्रह्मा जू के पास जाकर, भगवन् सीता तत्त्व का क्या स्वरूप है ऐसा पूछते भये (स होवाच प्रजापतिः सा सीतेति) तत्पश्चात् ब्रह्मा जू थोड़े मूल प्रकृति रूप होने से सीता प्रकृति स्वरूप

है ॥ (प्रणवप्रकृतिरूपत्वात्सा सीता प्रकृतिरुच्यते) प्रणव प्रकृति स्वरूप होने से श्री सीता प्रकृति स्वरूप कही गई हैं (सीता इति त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामया भवेत्, सीता यह त्रिवर्ण आत्मा का साक्षात् माया मय स्वरूप है (विष्णुः प्रपञ्च योजं च माया ईकार उच्यते) विष्णु व प्रपञ्च योज माया शब्द से ईकार कही गई है (सकारः सत्यममृतं प्राप्तिः सोमश्च कात्यंते) सकार सत अमृत मोक्ष प्राप्ति करने वाला है (तकारस्तारलक्ष्म्या च वैराजोविस्तरः स्मृतः) तकार ओ३म् अर्थात् प्रणव लक्ष्मी से प्रस्तुत नाम विराट का विस्तार है (ईकार रूपिणी सोमामृतावयवदिव्यालंकारस्त्र्यम्भौकिकाद्याभरणालङ्कता महामायाऽव्यक्तरूपिणी व्यक्ता भवति) ईकार रूपिणी सोम अमृत के समान शुद्ध अवयव अर्थात् इन्द्रियां दिव्य अलंकार अर्थात् भूषण व माला मौक्तिकादि आभरणों से शोभित है अव्यक्त रूपिणी महामाया व्यक्त रूप होकर प्रगट होती है (प्रथमा शब्दब्रह्ममयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना उद्गावन-करो सात्मिका, द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना, तृतीया ईकार रूपिणा अव्यक्तस्वरूपा भवतीति सीता—इत्युदाहरन्ति)

प्रथम शब्द ब्रह्म मयी स्वाध्याय काल में प्रसन्न स्वरूप उद्गावन करने वाली दूसरे भूतल में हलाग्र से उत्पन्न होने वाली है तृतीया ईकार अर्थात् ई रूपिणी अव्यक्त स्वरूप वाली भगवती श्री सीता जू हैं।

इस विषय को सीतोपनिषद् में विस्तार पूर्वक देखिये श्रुतियों के द्वारे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि श्री किशोरी जू का क्या स्वरूप है ताते सीताराम जू अमेद है युगल उपासता परम सिद्धान्त कर्तव्य है। अत्यन्त विस्तार भय से एकही प्रसंग दर्शाया गया "सिया राम मय सब जगजानी" इसी भाव को तत्वाचार्य ने दर्शाया है ताते सर्वोपरि सब काल कारण है व सेवित है ॥ (कामाभि रामं) का भाव, कि काम जो कि अत्यन्त सुन्दर है तिसका भी कारण है यथा—

रामात्सञ्जायते कामः कामाद्विश्वं प्रजायते ।

तस्मादनुर्धराः सर्वे द्विभुजा मूलरूपिणः ॥

भीरधुनन्दन जू से काम उत्पन्न भया कामसे संसार का उत्पादन हुआ अर्थात् जहाँ तक सुन्दरता की सीमा है तिसका कारण कामदेव है तिस कामदेव का कारण रघुनन्दन जू हैं ताते "कामाभिरामं" कहा यथा "बोटि काम छवि श्याम शरीरा" "बोटि मनोज लजावन हारे" इत्यादि स्पष्ट है सब धनुर्धर है सब द्विभुज है और मूल के रूपी है, पुनः—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां

मेको धूर्ना यो विदधाति कामान्—इति श्रुतिः ॥

बहूनां यो विधाति कामान् (से स्पष्ट हुआ) ॥ पुनः सदाशिवसंहिता-
“काम कोटि कलानाथम्” इति । यथा चित्रकूटमाहात्म्य अ० ३ में “कोटिकंदर्पलावण्य-
मूर्तो रामस्य धीमतः” ॥

(रघुकुल तिलकं) का भाव कि रघु संज्ञा जीवों का है (जीव स्वरूप पंचधा
भवति बद्ध-मुमुक्षु-केवल-मुक्त-नित्याः, मुमुक्षुषोऽपि द्विविधाः, भक्त प्रपन्न-भैरवाः, ते प्र-
पन्ना द्विविधाः, तत्राताः विप्रास्तु) इसको व्याख्या अर्थपञ्चक में देख लीजिये यथा अन्य
तहां बद्ध में तीन भेद एक पामर जिसे ईश्वर का ज्ञान नहीं है, दूसरा विषय के स्वरूप
शास्त्र गुरु द्वारा जानता है पर त्याग नहीं करता, तीसरे जो विषय के स्वरूप को
जानकर धिक्कार मानता तथापि विषय को नहीं त्यागता ॥ मुमुक्षु में चार भेद है
विषय मुमुक्षु जो द्रव्य का उपार्जन करता है परन्तु भगवत भक्ति से शास्त्र श्रवण
करि (मन्द वैराग्य में आरुढ़ है) दूसरा कृपा शील मुमुक्षु जो कामनादि नवधा
भक्ति कर भगवत अर्पण करके स्वयं वैराग्यवान् है । तीसरा मनन शील मुमुक्षु शास्त्र
श्रवण कर तिन्हे मनन करि सारासार विचार तीव्र वैराग्य में आरुढ़ हो । चौथे
मुक्त शील मुमुक्षु सारासार ठूढ़ विचार मुक्त तन की दशा में अनुसंधान है ते तीव्र
तर वैराग्यवान् है इति मुमुक्षु ॥ अथ मुक्त के तीन भेद है एक जीवमुक्त यथा
श्री जनक जू । दूसरे विदेह मुक्त यथा श्रृपमदेव । तीसरे जीवमुक्त विदेह मुक्त
दोनों दशा में, यथा सनकादि—इति जीवनमुक्त ॥ अथ कैवल्य जे ज्ञानानन्द में मग्न
यथा अष्टाचक, जे तीव्रतम वैराग्य में आरुढ़ है ॥ नित्य जो दास प्रभु के निकट सदा
निवास करते हैं यथा श्री भरत लाल जू तथा लखनलाल जू भ्रातन, हनुमत लाल जू
आदि गोलोक मध्य साकेत आवरण के मध्य जो निवास अर्थात् लोकाधिप सम्पूर्ण
नित्य है ॥ यथाः—

नित्य-कैवल्य-मुक्त-मुमुक्षु-बद्ध-पंचभिः ।

अकारो नित्य-कैवल्य-मध्य-मुक्त-मुमुक्षवः ॥

मस्याकारो भवेद्बद्धजीवतत्त्वं सनातनम् ।

ईश्वरांशभवेन्नित्यं सच्चिदानंदमव्ययम् ॥ पुनः ।

अयोध्यावासिनः सर्वे जगन्नाथस्य मुर्त्तयः ।

ईश्वरेण पुरा प्रोक्तं पार्वतीं प्रति चैकदा ॥ (पद्मपुराणे)

अर्थः—अयोध्या वासी सब भगवत मूर्त्ति हैं ताते पूर्व प्रसंग स्पष्ट हुआ ।

(सीतया शोभमानम्) सीतया सख्या सहितम् शोभमानम् सीतया शोभमानम्
अर्थात् श्री किसोरीजू के तथा सखियों के सहित सत्तावरण अन्तर जहां कि किसी

पुरुष का गर्व नहीं अर्थात् पुरुष का आदर्श है तहाँ नित्य निवास करते हैं अर्थात् शोभायमान हो ॥ यथा चित्रकूट महात्म्ये—

दुर्निरीक्ष्या दुराराध्या भावनाहीनयोगिनाम् ।

स्वप्रभाभिरनन्यासि प्रकाशन्ती जगत्त्रयम् ॥

जो पुरुष श्री रघुनन्दन जू के पवित्र भाव को त्याग कर अन्य भाव करने वाले है उन्हे किसी प्रकार से दृष्टि में नहीं आती है तथा अन्य किसी साधन के द्वारे साक्षात् करने को चाहते हैं उनको भी न प्राप्त होने वाली ॥ महारामायणे शंकर-वाक्यं पार्वतीं प्रति—

पुंसामगोचरस्थानं सखादामविवर्जितम् ।

महापुरुषरूपेण श्रीरामो हि विराजते ॥

पुरुष को अगम्य स्थान है अर्थात् शांत, दास, सखा, वात्सल्य, रसो भावों युक्त भक्तों से रहित स्थान है वहाँ महा पुरुष रूपसे श्री रघुनन्दन जू ही विराजते हैं पुनः—यथा हनुमत्संहितायाम्—

पुंसामगोचरं स्थानं केवलप्रेमदायकम् ।

नारीभावसमायुक्तस्तेषां दृश्यं भवेद् भ्रुवम् ॥ अथवा ॥

ध्यायेच्छत्रमुदिष्यचामरयुतं साकेतरत्नासने ।

जानक्यंसभुजे सखीगणवृतं नित्यं निकुंजे स्थितम् ॥

यथा सदाशिवसंहितायाम्—

सीतालङ्कितवामाङ्गं कामरूपं रसोत्सुकम् ।

तरुणारुणसंकाशं विकचांबुजपादकम् ॥

श्री किसोरी जिनके वाम भाग में है (रसोत्सुक है) अर्थात् महारसिक है ताते सीतया शोभमानम् कहा । अन्य व्याख्या प्रथम पद की व्याख्या में देखेगे—इति ।

(श्यामं) शृङ्गार मूर्ति अर्थात् शृङ्गार मूर्ति जो परात्परब्रह्म श्रीकृष्ण भगवान् तिन्हे भी शृङ्गार प्रदान करने वाले हैं । यथा सुदर्शनसंहिता "कृष्णः शृङ्गार-रूपश्च वृन्दावनविभूषण" वृन्दावन के भूषित करने वाले श्री कृष्ण पर ब्रह्म शृङ्गार मूर्ति है ॥

पुनः—यथा शुकसंहितायां—

रामस्यापि प्रियं नाम रामे त्वेव सनातनम् ॥

रात्रिं दिवं गृण्य चेष भाति वृन्दावने स्थित" इति अथवा---

यथा हनुमत्संहिता—

श्यामलान्धस्मितमुखान्धर्वाभरणभूषितान् ।

किशोरान्कमनीयांश्च कामविद्याविशारदान्॥

रसास्वादानुगुणान्श्च किरीटकुण्डलान्वितान् ॥ पुनः ॥

दोहा ।

नील सरोरुह नील मणि, नील नीलधर श्याम ।

लाजत तनु शोभा निरखि कोटि २ सत काम ॥

भक्तों के ध्यान के अर्थ नहीं तो श्री रघुनन्दन जू बुद्धि, मन घाणी से परे है यथा "राम अतर्क बुद्धि मन वानी"

अथ (भक्तार्तिनाशम्) चारो वर्ण से इतरभी आपके शरण जाते हैं उनके संचित क्रियमान समस्त कर्मों का समूल नाश कर देते हैं व कदापि नहीं भूलते यथा, युक्त पञ्चवेद० ६ मन्त्र० ३—

कदाचन प्रयुच्छत्युभे न पासि जन्मनी तुरीयादित्वा ।

हे ! तुरीयादित्य, कदाच, न, प्रयुच्छति, उभे, जन्मनी, निवासी, हे श्रीरघुनन्दन जू, कबही नहीं भक्तों को भूलते हो, दोनों जन्म जिनमें एक माता पिता से दूसरा भोगुरु से होता है, निरंतर रक्षा करते हो, अपने समान सम्पूर्ण साज को साज देते, "आप समान साज सब साजे", सो यथा वेदान्ते, (भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च) सो कृपा करके जो हानियों के अत्यन्त दुर्लभ है सो भारत भक्त पुरुषकू भोग मात्र ही ईश्वर के तुल्य अर्थात् अपने समान कर देते हैं, "हनुमदादि सब वानर वीरा । धरे मनोहर मनुज शरीरा" यही साम्य अवस्था है, सो एक बार नमस्कार मात्र से, यथा यु० का० स० १६ ।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

श्रीमुख वचन है जो एक बार भी दुःखी हो हमारे से कहे कि मैं आप का हूं अर्थात् चरणशरण हूं तो मैं सर्व प्राणियों से उसे अमय करता हूं, पुनः कदापि नहीं त्यागता हूं, यथा स० १६—

मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।

दोषो यद्यपि तस्य स्वात्सतामेतदगर्हितम् ॥

भीमुख बचन है, हमारे शरण आये हुये को मित्र भाव से तो हम अब नहीं त्यागेंगे चाहे उनमें दोष हो वा गुण हो क्योंकि शरण आये की रक्षा न करना यह महत् जनों के मध्य में अति निन्दित है इस भाव से भक्त को दुःख दूर कर पुनः नहीं त्यागते, यथा "सतमुख होइ जीव जब मोहीं । जन्म कोटि अघनासी तबहीं ॥ कोटि विप्र बध लागे जाही, आप शरण तजो नहि ताही ॥" ताते भक्त भक्ति नाशक है । अपने सौशील्य गुण को प्रचार करते हैं, (होन-दीन मलीन बीभत्स-कुत्सिादिभिरप्यालिङ्गन-संभाषणादिकतृत्वं सौशील्यम् ॥) अर्थात् दीन मलीनादि पुरुषों के भी साथ आलिंगन संभाषणादि के करने का नाम सौशील्य है, यथा निषाद जाहि छाह छुर लई सिचा, पामर कोल किरात, जटायु, आदिभ्यो भोगि यथा—

शोणितोत्पिक्तसर्वाङ्गं क्रव्यादं च जटायुषम् ।

शंक्रमरोप्य पप्रच्छ संचस्कारं च तं मृतम् ॥

जिस जटायु के सब अङ्ग उधिर से अत्यन्त भीजा हुआ है और जो मांस खाने वाला है उस जटायु को श्रीधुनन्दन जू अपनी गोद में बैठा कर पूछते भये, मरे जटायु को संस्कार किया वेद मंत्र से करते भये अर्थात् श्री महाराजने शरण के महात्म्य दर्शाया कि जो कोई प्राणी हो शरणागत प्राप्त होते शठता पूर्व के कर्म के उसी क्षण नाश कर देते हैं द्विजानि को प्राप्त हो वेद के अधिकारी हो जाते हैं । भगवत्पूजक तो त्रिगुणातीत है पुनः वेद क्यों कहा लोक में वेद ही प्रधान है ताते वेद कहा भक्तपति भगवत् ता वेद का शिरोभाग है ।

यथा श्रीभागवतेप्रल्लादवाक्यम्—

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वा सुरात्मजाः ॥

प्रीणनाय मुकुन्दस्य न व्रतं न बहुज्ञता ।

श्री प्रल्लाद जू कहते हैं कि हे वालों को मुकुन्द भगवान् के प्रसन्न करने हेतु ब्राह्मणपना, देवपना, और ऋषिपना, समर्थ नहीं है भगवान् की प्रसन्नता के हेतु कुछ चांद्रायण प्राजापत्यादिक व्रत भी समर्थ नहीं तथा अत्यन्त ज्ञानपना भी समर्थ नहीं है भगवान् के प्रसन्न करने के लिये एक भक्ति सीहाद ही कारण है शरण मात्रही से सम्पूर्ण पाप से रहित कर देते हैं पाप पुण्य हो उच्च नीच योनिका हेतु है नहीं तो आत्मा जाति वर्ण भेद से रहित है । भक्ति स्वरूप है । यथा गीतायां भगवद्बचनम्—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ण धर्म, तथा आश्रम धर्म को त्याग कर तथा यह सब समान धर्मों को त्याग कर तुम मेरे शरण की प्राप्त हो जब तुम मेरे शरण की प्राप्त होगे तब मैं तेरे

को तीन धर्मों को त्याग जन्म पापों के प्रायश्चित्त के बिना ही सर्व पापों से मुक्त करूँगा अर्थात् सब कर फल हटि भक्ति सोहाई, तत्पश्चात् कर्तव्य शून्य है कारण कि जब तीन ऋणों को दूर कर के मोक्ष के साधन में मन को प्रवेश करे यथा मनुस्मृति :—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।

अनपाकृत्य मोक्षं तु सेव—मानो ब्रजत्यधः ॥

अर्थात् ऋषि ऋण पितृ ऋण और देव ऋण इन तीनों को दूर कर के मोक्ष मार्ग के विषय में मन को प्रवेश करे । इन तीन ऋणों का दूर किये बिना मोक्ष को सेवता हुआ अर्थात् ज्ञान वैराग्य को साधना करता हुआ स्ववर्णाश्रम धर्म के त्याग देता है सो अधोगति को प्राप्त होता है इन तीनों धर्म से निवृत्त होना दुस्तर है पुरुषार्थ से और जो श्री भगवान् के शरण हो जाते हैं वे तीन ऋणों के आसरे नहीं रहते हैं यथा भागवते :—

देवर्षीणामाप्नुणां पितृणां न किंकरीनायमृणी च राजन् ।

सर्वात्मना यः शरणं शरस्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम् ॥

जो जीव सर्व कृत्य को त्याग कर अर्थात् वर्णाश्रमों के धर्म देह आत्माभिमान जन्म मरण प्रद समस्त को त्याग कर श्री भगवान् के शरण को प्राप्त भया सो पुरुष देव, ऋषि, पितृ आदिकों के किंकर अर्थात् देनदार नहीं होता शरण होने मात्र ही से उसी क्षण के तीनों ऋणों के आर्तपत्रों को दूर कर अभय कर देते हैं ताते “भक्तार्त्ति नाशनम्” कहा है अथवा मायिक आवरण विक्षेप मल को दूर करने वाले अर्थात् कृपा कर बुद्धि और योग्य को प्रदान कर जगत का जन्म मरण रूप फलेश को दूर करते हैं । यथा गी० अ० १२ :—

येतु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः ।

अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात् ।

भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥

(स्वजन भय हरणम्) निज भक्त ऋषि मुनियों को पीड़ा देने वाले दुष्ट राक्षसादि तथा कामादि दोषों को हरण करने अर्थात् नाश करने के लिये अवतीर्ण होते हैं ।

श्री रघुवंश भूषण जू निज मुख से ऋषियों के प्रति कथन करते हैं । यथा :—

विप्रकार मया कतुं राक्षसैर्भवतामिमम् ।

पितुस्तु निदेशकरः प्रविष्टोहमिदं वनम् ॥

वा० आ० का०—

हे मुनियो ! जो हम इस वन में आये हैं तो आप सम्पूर्ण ऋषियों को ज-
राक्षसों से भय है उसे नाश करने के लिये तथा पिता श्री की आज्ञा पालने के लिये,
कुछ अन्य कार्य के लिये नहीं आये । पुनः

परिचाणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मं संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

म० गी०

॥ दोहा ॥

साधुन के प्रतिपाल हित अरु दुष्टन संहार ।

धर्म स्थापन के लिये युग युग धर अवतार ॥

अपने अंश कला विभूति करके यद्वा धर्मरक्षणपूर्वक शरणागतरक्षणाय राक्ष-
सान मारयतीतिरामः “यद्वा राक्षसा मरणं येन सरामः अतएव रामो राक्षसा
मर्दन इति प्रसिद्धतरम्” धर्म के रक्षण पूर्वक शरणागत के रक्षक हेतु राक्षसों केसे
मारे सो राम कहिये, व जिस कर राक्षस मरण का प्राप्त हो तिन्हें राम कहिये इस
पद से द्वि विभूति को नायकपना कहा ।

(वामदेवादि वंशम्) शंकरादि देवों तथा महर्षियों से सेवित यथा वशिष्ठ
संहितायाम्:—

नारायणः स्वयंभूश्च शिवश्चैन्द्रादयस्तथा ।

सनकाद्यश्च योगीन्द्रा नारदाद्य महर्षयः ॥

सिद्धाः शेषादयश्चैव लोमशाद्य मुनिश्वराः ।

लक्ष्म्यादि शक्तयः सर्वानित्यमुक्ताश्च सर्वदा ॥

नारायण, ब्रह्मा, शिव, समस्त देवताओं सनकादि योगीन्द्र, नारदादि महर्षि
श्रेष्ठ २ सिद्धी तथा शेष वासुकादि लोमशादि मुनीश्वर व लक्ष्मी, सरस्वती,
पार्वती, देवी दुर्गादि सम्पूर्ण शक्तियां नित यानी परवैकुण्ठवासी देवता गण तथा
सुमुष्म गण तथा शुकदेवादिक ऋषि समूह सर्वोपरि परमेश्वर्य्य सम्पन्न श्री सीता

रामजू के प्रभाव अर्थात् भारी इष्ट मान कर श्री सीता रामजू की उपासना करते हैं अर्थात् बंदना करते हैं ।

विधि हरिहर पद बंदित रेनु ।

(रावण वाक्य)

कीन्हव प्रभु विरोध तेहि देख ।

शिव विरंचि हरि जाके सेवक ॥

भृकुटीविलास जासु जग होई ।

राम बाम दिशि सीता सोई ॥

(कुंभ करण वाक्य)

पुनः :— जहां चितवहि तंह प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रवीना ॥

देखे शिव विधि विष्णु अनेका । अमित प्रभाव एक ते एका ॥

बंदत चरन करत प्रभु सेवा । विविध वेप देखे सब देवा ॥

रा० वा०

॥ दोहा ॥

सती विधात्री इन्दिरा, देखी अमित अनूप ।

जेहि २ वेप अजादि सुर, तेहि २ तन अनरूप ॥

देखे जंह तंह रघुपति जेते, शक्तिन सहित सकल सुर तेते ।

जीव चराचर जे संसारा, देखे सकल अनेक प्रकारा ॥

पूजहिं प्रभुहिं देव बहु वेपा,

इत्यादि वाक्यों से वामदेवादि बंधन पद स्पष्ट हुआ (कामार्ति नाशम्)

जीवों के अन्तःकरण वासना रूप जो विपत्ति को दूर करने वाले यथा, श्री भागवत नवम स्कन्धे शुक वाक्य :—

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि,

गायन्त्य वधनमृषयो दिगभेद्रपटं ।

तन्नाकपाल वसुपाल किरीट युष्टं,

पर्दायुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥

श्री शुकवाक्य कहते कि हे राजन श्री रघुनन्दनजू के चरण कमल के शरण हम हैं केसा चरण है कि उस चरण कमल के सुन्दर यश दैविक ऋषी गण राजाओं का सभा में गान करते हैं जिस यश से पाप जन्य जो कडेश तेहि, दैविक, भौतिक, तथा

नामा वासना मुक्त आत्मा को नाश कर देते हैं जिस कारण पर भागपाल अर्थात् नारायण महा नारायण वासुदेव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण कुबेरादिकों के मुकुट गिरते हैं अर्थात् कारण का सेवन करते हैं। पुनः म० गी० :—

चतुर्विद्या भजंतेमां जनाः मुकृतिनोऽर्जुन ।

ज्ञातौ जिज्ञासुरर्थो च ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

॥ दोहा ॥

भजहिं मुकृति चतुर सब, जगजन चारि प्रकार ।

दुःखी, मुमुक्षु काम धन, ज्ञानी मत संसार ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! सांसारिक दुःखों से आतं, आत्मतत्त्व के ज्ञान के लिये आतं, लोक जग्य सुख पुत्र धनादि की इच्छा से आतं, ज्ञानी जोष जो ब्रह्म प्राप्ति के लिये आतं है ऐसे भक्तों को काम आतंता, को नाश करते हैं। पुनः रा० वा० :—

नाम जीव जपि जागहि योगी, धिगति धिरं चि प्रपंच वियोगी ।

ब्रह्म सुपहि अनुभवहि अनूपा, अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

जानहि चहहि गूढ़ गति जेऊ, नाम जीह जपि जानहि तेऊ ।

साधक नाम जपहि लौ लाए, होहि सिद्ध अनिमादिक पाए ॥

जपहि सदा जन आरत भारी, मिटहि कुसंकट होहि सुखारी ।

राम भगत जग चारि प्रकारा, मुकृति चारिउ अनघ उदारा ॥

(पद्य) चतुः चतुरन कह नाम अधारा, ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा ।

इत्यादि वासों से कामात्ति नाशम् स्पष्ट हुये :—

(कलिकलुष हरम्) जीवों के काल अर्थात् कलिकाल अथवा, काल, कर्म, गुण, स्वभाव अन्य कलुष को नाश करते हैं स्व रूपा से यथा “ श्री जानकी प्रणय नाटके ” :—

सीता समेतं रघुवीर नाम जपंति ये नित्यमधौघहारि ।

ते पुण्यवंतः खलु भाग्यवंतः परं पदं यान्ति स्ववर्गयुक्ताः ॥

श्री किसोरी जू के सहित श्री राम नाम, मङ्गलधाम, सकल पाप विनाशक को जो जपते हैं सो महा पुण्यात्मा निश्चय करके बड़े बड़ भागी रङ्ग रस रागी हैं अपने परिवार के सहित परम पद को पाते हैं ।

पुनः पद्म पुराणे श्री कृष्ण वाक्य भर्जुन प्रति :—

न संदेहस्त्वया कोट्यः न वक्तव्यं पुनः पुनः ।

पापी भवति धर्मात्मा राम नाम प्रभावतः ॥

हे भर्जुन श्री सीता राम नाम में संदेह करना योग्य नहीं है बार २ कहना भी संदेह समेत व्यर्थ है चाहे जैसा पापी हो श्री सीता राम नाम प्रताप से शुद्ध धर्मात्मा हो जाता है ।

पुनः महा शंभु संहितायां श्री शिव वाक्यम् श्री राम भक्तान् प्रति :—

मुक्ति स्त्री कर्ण पूरी मुनि हृदयवयः पक्षती तीर भूमी,

संसारा पार सिंधो कलि कलुष तमस्तोम सोमाङ्कबिंबी ।

उन्मीलित्यु पुंजद्द्रुम खलित दले लोचने च श्रुतीनां,

कामं रामेति वर्णो शमिह कलयतां संततं सज्जनानाम् ॥

मुक्ति रूपा सुन्दरी स्त्री को करण फूल है अर्थात् सौभाग्य है मुनियों के हृदय रूपा विहंग से अर्थात् आत्मा को भगवत प्राप्ति रूपी सामर्थ्य देने को दो पक्ष हैं अर्थात् जिस प्रकार पक्ष के बिना पक्षी उड़ नहीं सकता उसी प्रकार श्री सीता राम नाम बिना गति को नहीं प्राप्त कर सकते, पुनः दो वर्ण संसार रूप समुद्र का दोऊ किनारे हैं अर्थात् श्री सीता राम नाम महाराज के शरण मात्र से संसार तिरा जाता है कलियुग में को महा पाप सोई महातम नाम समूह ताके नाशने अर्थ महा सूर्य चन्द्र रूपा हैं, पुनः प्रकाशित जो मुक्ति रूप वृक्ष तिन्हें दो दल हैं समस्त श्रुतियों के दोऊ धरण नेत्र हैं, ताते नाम, रूप, लीला, धाम, चतुः सच्चिदानन्द हैं पुनः विष्णु पुराणे वेद व्यास वचनम् :—

अवशीनपियन्नाग्नि कीर्त्तिते सर्व पातकैः ।

सद्यः पापोद्विमुच्यन्ते सिंहत्रस्ता मृगाइव ॥

शुकदेव जी से कहा है विवश हो के भी जो श्री राम नाम कीर्तन कलियुग में करते हैं सो भी सम्पूर्ण पाप से छूट कर परम पद को पा जाते हैं इस प्रकार “कलि कलुष हरम्” (सृष्ट) हुआ ।

(कामदम् कामदानां) अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि शक्तियों के अभीष्ट पूर्ण करने वाले, यथा पद्म पुराणे :—

अर्द्धमात्रे स्थितौ श्रीमत्सीतारामौ परात्परी ।

ह्यकारेषु च यो देवा विंदौ शक्तिमनुत्तमाम् ॥

भाषार्थः—अकार रहित जो रेफ रेफ आधा मात्रा है सोई श्री सीता राम वाक्य है सर्वदा श्री सीता राम जूमें भगेश है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों अकार में स्थित है, अर्थात्, रकार में जो अकार बासुदेव विष्णु है दीर्घ अकार जो रकार में अकार है ब्रह्मा है मकार में अकार श्री महेश है विन्दु जो आधा मकार सो महा माया मूल प्रकृति शक्ति शिरोमणि है परम उत्तम है ।

पुनः विष्णु पुराणे विरंचि वाक्यं मरीचिं प्रति :—

अहंच शंकरो विष्णु स्तथा सर्वदिबौकसः ।

राम नाम प्रभावेण संप्राप्ताः सिद्धिमुत्तमाम् ॥

श्री ब्रह्मा जू कहते हैं, हम तथा महादेव और विष्णु समेत सब देवताओं को श्री सीता राम प्रभाव से सकल सिद्धि प्राप्ति परमोत्तममयी है और यज्ञ नहीं ताते कामदानों कामदं सिद्धि हुई यथा :—पुलक्ष्य संहितायाम् रकाराज्जायते ब्रह्म रकारजायते हरि, रकाराज्जायते शम्भु रकारात्सर्व शक्तयः ।

(लोकाभिरामं) लोक कि जो क्षीराब्धि बैकुण्ठ, महा बैकुण्ठाधिपति, श्रीमन्नारायण, विष्णु बासुदेव, भगवत्प्रधान अंगों को आनन्द देने वाले हैं “यथा ईश्वर स्वरूपमाह”

अधिकारानुकूलं पञ्चधाज्ञेयं ।

परब्रह्म, विभवान्तर्याम्यर्चावितार भेदात् ॥

यथा, पर १ ब्रह्म २ विभव ३ अन्तर्याम्य ४ अर्चा, ५ इत्यादि सब को आनन्द देने वाले, यथा, पर कहिये षट्गुण युक्ता ब्रह्मादि का भी कारण हो श्री, भू, नीला, कर सेवित हो श्रीपतिः पुरुषोत्तम हो ताको, पर कहते हैं ? संकर्षण १ प्रद्युम्न २ अनिरुद्ध ३ रूप हो कर जो वर्तमान हो ताको ब्रह्म कहते हैं दो दो गुण कर युक्त है यथा ज्ञान, बल, युक्त जगत्संहार करते हैं १ पेश्वर्य, वीर्ययुक्त होकर सृष्टि करते हैं २ शक्ति, व तेज, युक्त होकर रक्षा करते हैं ३ यह सब द्वी द्वगुण युक्त होकर संसार के कर्तव्य में युक्त है और ब्रह्म कहे जाते हैं “विभवस्तु, मुख्य, शक्यावेश गौणभेदेन चतुर्विधः” मुख, शक्ति, अवेश, गौण, कर के चार भेद हैं “राक्षासदि से जब महा कष्ट प्राप्त होता तब जगत की रक्षा करने के लिये अवतार ग्रहण करते हैं । सो मुख्य, राम कृष्ण कहे जाते हैं, शक्यावतार, बुद्धादि अपेक्ष में दो भेद हैं शुद्ध, अशुद्ध, शुद्ध व्यासादि १ अशुद्ध परशुरामादि २ गौणास्तु, ब्रह्मा, कपिलादि

अन्तर्यामी में दो भेद, शरीर २ प्रति १ स्वभक्त के हृदय विषय स्वित कल्याण गुण स्वरूप २ अर्चावतार अष्ट प्रकार है तामे चार भेद हैं " स्वयं व्यका १ दिव्य प्रह्लादि के द्वारा स्थापित २ सैद्धन्तु सिद्धों कर के ३ मानुषस्तु मनुष्यों कर के ४ दो प्रकार के ग्राम दूसरा गृह में अधिकारी प्रति जानेगे इन सभीों को आनन्द देने वाले हैं ताते लोकाभिराम कहिये " अब सब का स्वरूप दर्शावते हैं " यथा शिव पुराणे श्री शंकर वाक्यं नारदं प्रति :—

श्री राम नाम सकलेश्वर मादि देव,

धन्याजना भुवितलेसततं स्मरन्ति ।

तेषां भवेत्परम मुक्ति प्रयत्नतस्तथा,

श्रीराम नाम भक्तिरचला विमला प्रसाददा ॥

श्री राम नाम सर्व ईश्वरों का ईश्वर है आदि देव है ऐसे श्री राम नाम को जो जपते हैं सो भूमि तथा सर्व लोको में धन्य हैं तिन बहुभागिन को मोक्ष बिना भ्रमहि तथा श्री सीता राम जू की परा भक्ति महा निर्मल प्राप्त होती हैं ताते सर्व देवों के पति हैं पुनः यथा शिव सहितायाम् :—

नारायणादि नामानि कीर्तितानि बहून्पि ।

सम्यग् भगवतस्तेषु राम नाम प्रकाशकम् ॥

श्री नारायण आदि अर्थात् जितने परमात्मा के अनन्त नाम का कीर्तन करे तिन समूह नामन का प्रकाशक परात्पर श्री सीता राम नाम है तथा असंख्य नामन उच्चारन का फल यही एक राम नाम देते हैं पुनः :—

नारायणादि नामानि साकारैश्वर्य्य मुत्तमम् ।

नित्यं ब्रह्म निराकार मैश्वर्य्य वै विभाति च ॥

श्री नारायण से लेकर से जितने नाम हैं सो सब साकार विभूतिमय है व ब्रह्म निरीहादिक नाम व्यापक विभूति समेत हैं एक रस हैं एक में दोनों गुण नहीं है ।

उभयैश्वर्य्यमाङ्गित्यो रामो दशरथात्मजः ।

साकेत नित्य माधुर्य्यधाङ्गि संराजते सदा

श्री रघुनन्दन जू परात्पर दासदधि साकार निराकार दोनों विभूति सम्पन्न है एक रस साकेत महा माधुर्यमय धाम तहाँ सपरिकर विराजमान हैं भाव यह है कि साकार व निराकार ब्रह्म का भी पति है यथा “पुलस्त्य संहितायाम्” :—

कृष्णेति वासु देवेति संतिनामान्व नेकशः ।

तेभ्यो रामेति यन्नाम प्राहुर्वेदाः परं मुने ॥

कृष्ण विष्णु नारायण वासुदेवादिक जेते नाम है सब से श्रेष्ठ परम प्रकाशक श्री राम नाम है समस्त अतियां निरूपण करती हैं हे मुनिराज “ यथा वाशिष्ठतंत्रे ” :—

कृष्ण नारायणादीनि नामानि जपतो निशम् ।

सहस्रैर्जन्मभो राम नाम्निस्नेहो भवत्युत ॥

श्री कृष्ण वासुदेव नारायणादि नाम के जो सदा जपते हैं स्नेह समेत सहस्र जन्म तक विघ्न बिना तब परात्पर श्री सीता राम में परम प्रीति प्रगट होती है सहज न जानोगे “ स्कंध पुराणे विरंचि वाक्यं मरीचिं प्रति ” :—

अहंच शंकरो विष्णुस्तथा सर्व दिवौकसः ।

राम नाम प्रभावेण संप्राप्ताः सिद्धिमुत्तमाम् ॥

हम व शंकर तथा विष्णु सम्पूर्ण देवता श्री राम नाम के प्रभाव से सकल सिद्धि प्राप्त हुये हैं “पुनः भविष्योत्तर पुराणे श्री नारायण वाक्यं लक्ष्मीं प्रति” :—

भजस्व कमले नित्यं नाम सर्वेश पूजितम् ।

रामेति मधुरं साक्षान्मया संकीर्त्यते हृदि ॥

हे लक्ष्मी श्री सीता राम से सदा प्रेम करो अर्थात् जप करो श्री राम नाम सर्व ईश्वरों कर के पूजित हैं और हम भी श्री सीता राम नाम महा मधुर का जप सदा हृदय में करते रहते हैं “ यथा शुक संहितायां ” :—

रामस्याति प्रियं नाम रामेत्येष सनातनं ।

रात्रिंदिवं गृणन्नेष भाति वृन्दावने स्थितः ॥

श्री परब्रह्म कृष्ण चन्द्र जू महाराज अतिशय प्रिय श्री साता राम नाम है जिन्हें रात दिन उच्चारण करते हुये वृन्दावन में स्थित रहते हैं ।

श्री रघुनन्दन जू के नाम, रूप, लीला, धाम, चारहु सच्चिदानन्द के स्वरूप हैं यथा, “वाशिष्ठ संहितायाम्” ।

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम् ।

एतच्चतुष्टयं नित्यं सञ्चिदानन्द विग्रहम् ॥

“अनन्त संहितायाम्” ।

परन्नारायणाश्चैव कृष्णात्परतरादपि ।

“यो वै परतमः श्रीमान् रामो दाशरथिः स्वराट् ॥

व्याकरण में ३ परे ते हीन है यथा पर, परतर, परतम्, इसे अन्य कुछ भी नहीं कहा जाता है सो परे श्री मन्नारायण है गोलोकवासि श्री कृष्ण चन्द्र हैं सो परतर है और श्री रघुनन्दन जू परतम् दाशरथि स्वराट् अर्थात् सर्व का पति हैं पुनः—

राघवस्य गुणो दिव्यो महा विष्णु स्वरूपान् ।

वासुदेव घनी भूतस्तनु तेजो महा शिवः ॥

श्री राघव जू के दिव्य गुण महा विष्णु का स्वरूप पूर्ण ऐश्वर्य्य वासुदेव हैं तनु का तेज महा शंभु है “यथा महारामायणे” ।

विष्णु नारायण कृष्णो वासुदेव हरिः स्मृतः ।

ब्रह्म विश्वम्भरोऽनन्तो विश्वरूप कलानिधिः ॥

कल्मषघ्नो दयामूर्ति सर्वज्ञः सर्व सेवितः ।

परमेश्वर नामानि संत्यजेकानि पार्वति ॥

एकादेक महा स्वच्छं उच्चारान्मोक्षदायकम् ।

नाम्नामेव च सर्वेषां राम नाम प्रकाशकः ॥

विष्णु, नारायण, वासुदेव, हरि, ब्रह्म, विश्वम्भर, अनन्त, विश्वरूप, कलानिधि, कल्मषघ्न, दयामूर्ति, सर्वज्ञ, सर्व सेवित, परमेश्वर का अनन्त नाम हैं एक एक नाम के उच्चारण से निर्मल अन्तःकरण तथा मोक्ष होता है इन सब नामों के प्रकाशकर्ता श्री राम नाम है अर्थात् सब का आत्मा है “यथा वेद सारोपनिषद्” :—

यस्वांश नैव ब्रह्मा विष्णु महेश्वरा अपिज्ञाता महाविष्णुर्यस्य दिव्य गुणाश्च स एव कार्य कारणायोः परः परम पुरुषो रामो दाशरथो बभूव ।

जिन्हें अंश कर के ब्रह्म, विष्णु, महेश, उत्पन्न हुये हैं महा विष्णु जिन्हें दिव्य कर के हैं ये कार्य कारण दो से परे परम पुरुष हैं सो श्री राम जू दाशरथो हुए हैं ।

“यथा सुवर्शनं संहितायाम्” ।

मत्स्यश्च राम हृदय योग रूपी जनार्दन ।

नार सिंहो महा कोपो वामनः कटिमेखला ॥

मार्गयो जंघयोजातो बलरामश्च पृष्ठतः ।

बोद्धश्च करुणा साक्षात् कलिकश्चित्तस्य हर्षतः ॥

कृष्णः शृंगार रूपश्च वृन्दावन विभूषणः ।

येते चाग्र कला सर्व रामस्तु भगवान्स्वयम् ॥

भावार्थः—मत्स्यावतार श्री राम जू के हृदय से है योगरूप जनार्दन भगवान् है कूर्मावतार आचार शक्ति से है बाराह दोनों भुजा के बल से है वृसिंह महा कोप से है वामन कटि मेखला से है परशुराम दोनों जंघा से हुये हैं, बलिराम पृष्ठ से, बुद्ध साक्षात् करुणा रूप हैं कलिक, चित्तहर्ष से है श्री कृष्ण भगवान् शृंगार से हुये हैं जो कि वृन्दावन के भूषण हैं “यथा वृहद्विष्णु संहितायाम्” :—

वासुदेवादि सूर्तीनां चतुर्णां कारणं परम् ।

षट्त्रिंशति सूर्तीनामाश्रयः शरणं मम ॥

कर्ता सर्वस्य जगतो भर्ता सर्वस्य सर्वतः ।

संहर्ता कार्य जातस्य श्री रामः शरणं मम ॥

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चारों मूर्तियों के परम कारण अर्थात् कारणों के कारण श्री राम जू हैं व चौबीस अवतारों की मूर्तियों के परम आश्रय अर्थात् आश्रय के आश्रय श्री राम जू हैं सो मेरा शरण है, अर्थात् श्री राम जू मेरा रक्षण करने वाला है “ताते श्री राम जू सर्व जगत् के कर्ता हैं तथा पोषण करता हैं तथा संहर्ता भी श्री राम जू ही हैं सो श्री राम मेरा शरण है अर्थात् रक्षा करने वाला है “यथा महा रामायणे” ।

तेजो रूपमयो रेफ श्री रामम्बक कंजयोः ।

कोटि सूर्य्य प्रतीकाशः परंब्रह्म स उच्यते ॥

श्री राम नाम तथा रूप अभेद जानना महा तेज में प्रकाश मय जो रेफ है सो श्री राम चन्द्र जू के नयन कंज का तेज रूप कोटिन सूर्य्य सम प्रकाशमान परब्रह्म कह्य है :—

सोपि सर्वेषु भूतेषु महस्वेषु प्रतिष्ठितः ।

सर्व साक्षी जगद्ग्राही नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ॥

सब जीव मात्र में तथा हृदय तथा सस्त्र दल कमल में विराजमान है सम्पूर्ण के साक्षी जगद्ग्राही है सदा योगी जन ध्याते हैं ।

रामस्य मण्डलस्यैव तेजो रूपं वरानने ।

कोटि कंदर्प शोभाद्योरेफाकारो हि विद्धि च ॥

श्री रघुनन्दन जू के मुख मण्डल महा तेजो मय कोटिन काम की शोभा सम्पन्न कोटिन प्रकाश में है सो रेफ का आकार हृदय है यह जानो ।

अकारस्योऽपि रूपं वासुदेवस्य कथ्यते ।

मध्याकारो महा रूपः श्री रामस्यैव वक्षसः ॥

सोई अकार वासुदेव का कारण है और मध्य का आकार महा वक्षःकार बल पराक्रम पुत्र समेत है सो श्री रामचन्द्र जू के वक्षस्थल कहिये हृदय स्वरूप हैं ।

सोऽप्याकारो महा विष्णुर्बलं वीर्यं स्वरूपकः ।

सर्वेषामेव भूतानामाधारस्त्वं च विद्धि सः ॥

सोई आकार बल, वीर्य, स्वरूप महा विष्णु का कारण रूप है सबल सृष्टि का आधार इन्हीं को जानो ।

मस्याकारो भवेद् रूपः श्री राम कटि जानुनी ।

सोऽप्याकारो महा शम्भु रुचतेजो जगद्गुरु ॥

मकार का अकार श्री राम जू के कटि व जङ्घा है सोई अकार महा शम्भु रूप सम्पूर्ण विश्व को आचार्य रूप में अर्थात् उपदेष्टा है ।

इच्छा भूतं च रामस्य मकरं व्यंजनं च यत् ।

सामूल प्रकृतिर्ज्ञेया महा माया स्वरूपी ॥

श्री राम जू के महा आश्चर्य रूप इच्छा अर्थात् चरण सो व्यंजन विन्दु रूप समझो सोई मूल प्रकृति महा माया स्वरूपिणी सर्व सृष्टि की कारण विवारी इस प्रकार से श्री सीता राम जू अभेद सम्पूर्ण का कारण तथा कार्य कारण से परे जानेंगे ।

श्री सीता राम जू महाराजाधिराज चक्र चूडामणि जू के युगल चरणों के चिन्हों से सम्पूर्ण अवतारों का भी विधान किया है विस्तार मय से नहीं लिखते । श्री युगल स्वरूप का भेदना भी सूचना किये हैं यथा :—

यानि चिन्हानि रामस्य चरणे दक्षिणे स्थिताः ।

तानि सर्वाणि जानिक्याः पादेतिष्ठन्ति वामके ॥

यानि चिन्हानि जानक्याः दक्षिणे चरणे स्थिताः ।

तानि सर्वाणि रामस्य पादेतिष्ठन्ति वामके ॥

किञ्चित मात्र दर्शाते हैं (स्वस्ति से) महा कालि, महा विष्णु (ऊर्ध्व रेखा) महा शंभु (अष्ट कोण) वासुदेव (लक्ष्मी से) लक्ष्मी (शक्ति) महा माया जिसे अंश शारदादि (प्रस्य) मीनावतार (क्षित से) कूर्म अवतार (चापर से) वराह (ब्रज्जाकुश) नृसिंह (श्री वरल्या) से त्रिविक्रप (धनु त्रिकोण तूण से) परशुराम (मुसल) बलभद्र अर्थात् बलदण्ड (सिंहासन रत्न चन्द्र) बुद्ध (एवंश्रिया शृङ्गाराः) श्री कृष्ण चन्द्र (चामरे) हयग्रीव (ध्वजा पताकयो) नरनारायण (बंसी से) कृष्णाधर धर बंसी (चंद्रिका से) शक्ति अल्हादिनी राधा इत्यादि श्री सीता राम जू के चरण, तथा अंग तथा नाम से अनेक अवतार होते, लय, सदा सर्वदा काल इसी प्रकार से प्रवर्त्य रहते हैं आप दोनों सदा कार्य कारण से भिन्न रसास्त पद है अति गम्य हैं यथा “विश्वम्भर उल्लिखतु” ।

अथ हैनं शाण्डिल्यो महा शम्भुं पप्रच्छ यतो वाचो निवर्तन्तेन्ते अप्राप्य मनसा सहेत्युक्तं ब्रह्म किमस्ति कोवा सर्वेश्वराधिपतिः निर्गुण सगुणाभ्यां परः कोवा सूर्ति । सूर्तिमूर्तिः भ्यापरः कर्ताऽकर्ता च कीदृशः इति अथकैमंत्रः संसाराद्विमुच्य जीवः सद्यो मुक्तो भवति कोवा मन्त्रणामधिकारो २९, समन्येतीति ।

अत्यन्त प्रश्नोत्तर करते हुये तत्पश्चात् शाण्डिल्य ऋषि ने महा शंभु से प्रश्न किया कि वाणी रूप वेद मन द्वारा जिस ब्रह्म को नहीं प्राप्त होकर जिसे लौट आते हैं वह ब्रह्म क्या है पुनः सर्वेश्वराधिपति अर्थात् ब्रह्म विष्णु तथा शिव के पति निर्गुण और सगुण इन दोनों से परे को है पुनः मूर्त्त अमूर्त्त से परे को है पुनः कर्त्ता अकर्त्ता किस भांति से कहे हैं ये और तिन के पश्चात् यह भी कथन करेंगे कि किन मन्त्रों से जीव संसार से निवृत्त होकर शीघ्र मुक्ति को लाभ करते हैं और उन मन्त्रों के अधिकार किसे हैं ॥ १ ॥

(दशरथतनयम्) का भाव है कि चारो वेद तथा उपवेद अंगोपांगो अर्थात् यजुर्वेद, सामवेद, सामवेद, अथर्ववेद चार वेद तथा उपवेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व, अर्थात् दर्शन अर्थात् शिल्प आदि पडाङ्ग पडोपाङ्ग अर्थात् कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द यह पडाङ्ग हैं पुनः इन्हीं दशों अंग के विषय रूपा रथ पर जो स्थित रहे ताको दशरथ कहते हैं यथा " शिव संहितायाम् " ।

आयुर्वेदो गान्धर्व चार्थ दर्शनम् ।

इतोमानि दशांगानि रथ नामनि यस्य सः ॥

ज्ञेयो दशरथो वेदः साध्व साधन दर्शनः ।

इति दशरथ तनयम् अर्थात् पुत्र भावकि पितृनर्कत्रायतीति पुत्रः ॥

अर्थात् पिता का जो नरक से रक्षा करते हैं वही पुत्र कहाते हैं जब प्राणी इन धर्मों से युक्त होते तबहिं श्री रघुवंश भूषण जू रक्षा करते हैं उन्हें क्या साधन है यथा रामायण तुलसीकृत में

तेहि मुनि राज कीन्ह बहु काला ।

प्रभु आयसु बहु विधि प्रति पाला ॥

सो०—हो इन विषय विराग, भवन बसत भा चौथ पनु ।

हृदय बहुत दुःख लाग, जनमनायउ हरि भक्तिबिनु ॥

जिसे साधन से रक्षा करते हैं उन्हें स्वरूप दर्शाते हैं ।

रूप शरीर मुनि पट परधाना सत समाज नित सुनहि पुराना ॥

दोहा द्वादश अक्षर पर (अर्थात् युगल मन्त्रः) ।

सहित अनुराग, बाबुदेव पद पंकरह ।

मन अति लाग, ... ॥

॥ चौपाई ॥

करहि अहार शाक फल कंदा, सुमिरहि ब्रह्म सच्चिदानन्दा ।

पुनि हरि हेतु करण तप लागे, वारि अधार मूल फल त्यागे ॥

॥ दोहा ॥

यहि विधि भीते वर्ष पट, सहस वारि अहार ।

सम्बत सत सहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥

॥ चौपाई ॥

चरण सहस दश त्यागेउ सोऊ, ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ।

अस्मि मात्र होइ रहेउ शरीरा, तदपि मना गम नहि पीरा ॥

(त्याग के स्वरूप)

विधि हरि हर तब देखि अपारा, मनु समीप भार बहु बारा ॥
मागहु बर बहु भांति लोभाये, परम धोर नहि चलहि चलाये ।

दश दशा दशांति है यथा कृप शरीर मुनि पट १ संत समाज पुरान २ मन्त्र
जप ३ वासुदेव पदपंकज ४ महार साकफल कन्द ५ चारि आधार ६ समीर अवार
७ ठाढ़े रहे एक पद ८ परम धीर तीव्रतम वैराग्य ९ अस्थिमात्र शरीर १० जो ये दश
दशा युक्त होते हैं ताको दशरथ कहि उन्हीं के पुत्र हो अर्थात् संसार से उद्धार करते
हैं ताते दशरथ कहा है यथा :—

पृथगात्मानं प्रेरितारं च गत्वा जुष्टस्तस्तेनामृतत्वमेति ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां शान्तिः शाश्वतो नेतरेषां ॥

अर्थात् आत्मा कूँ और आत्मा की प्रेरक परमात्मा को जुड़े मान कर आत्मा
परमात्मा से भ्रारा है ऐसे मान कर ता पीछे जिन्ह के साथ प्रीति करता हुआ मोक्ष
को प्राप्त होता है अपने आत्मा विषे रहे हुये ता परमात्मा कूँ जे धीर पुरुष देखते हैं
तिन्हीं पुरुष को मोक्ष रूपी शान्ति मिलती है “अर्वातरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना
ब्रह्मणि” और ब्रह्म कूँ जानने वाले पुरुष जीव और ब्रह्म विषे (अंतर) भेद को
जान कर ब्रह्म विषे लीन होते हैं, इस प्रकार ते जीव और ब्रह्म के भेद जानते ही
मोक्ष होता है ऐसा वेद का सिद्धान्त है ताते “दशरथ तनयम्” “कहा तथा विद्वान्
पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति” पूर्वोक्ति प्रकार से ब्रह्म को जानने
वाला पुरुष पुण्य और पाप इन दोनों को त्याग कर के पीछे पुण्य पाप रूप मल से
रहित भया हुआ पुरुष ब्रह्म के साम्य को प्राप्त होता है यथा कटी भृङ्ग न्याय के
तुल्य अनेक कीड़ों के रुंधन कर के आप समान बना लेते हैं (आप समान साज
सब साजे) पूर्व में तथा भृङ्ग के तुल्य किन्तु ध्यान कर के भृङ्ग समान होते भया
उस देव की कृपा ते (ताते स्पष्ट हुआ) “यथा श्री राम तापनीये” :—

चिन्मयेऽस्मिन्महा विष्णौ जाते दशरथे हरौ रघौः ।

कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः ॥

वराम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः ।

सच्चिदानन्द स्वरूप श्री राघव जू को राम नाम कहने का प्रकार श्रुति
कहती है “अजायमानो बहुधाऽभिजायते” यह सब श्रुतियों के प्रमाण से जो एक
महा व्यापक भक्त जन के क्लेश हरता सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा रघुकुल
विषय जगवर्ती महाराज दशरथ जू के गृह में आविर्भाव होकर पृथ्वी पर विराजमान

है और सर्व जनों का मनोरथ पूर्ण करते हैं सो परमात्मा सर्व लोक विषय वशिष्ठादि ऋषियों के द्वारा राम नाम कर के विख्यात है यथा, वाल्मीकि रामायण ।

वेद वेदो परे पुन्नि जाते दशरथात्मजे ।

वेदः प्रचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥

श्री राम जू वेद कर के जानवे योग्य हैं अर्थात् जिन्हें वेद जानते हैं व परम पुरुष हैं सो दशरथ आत्मज भये हैं अर्थात् उद्धार करने को पुत्र भाव दर्शाते भये हैं तब वेद को ब्रह्मा जू श्री रामायण रूप से प्रगट किये हैं (तिन्हें चरित्र कैसा है) ।

चरितं रघुनाथस्य शत कोटि प्रविस्तरम् ।

एकैकमक्षरं पुन्सां महा पातक नाशनम् ॥

श्री रघुनन्दन जू के चरित शत कोटि विस्तरित हैं उन्हें एक एक अक्षर महा पातक के नाश करने वाली है इति भावः “ (रावणारिम्) भाव यथा, रामायण तुलसीकृत”:-

रण मद मत्त फिरत जग धावा, प्रति भट खोजत कतहुं न पावा ।
रवि ससि पवन बदन धनु धारी, अग्नि काल जम सब अधिकारी ॥
किन्नर सिद्धि मनुज सुर नागा, हठि सबहि के पंथहिं लागा ।
ब्रह्म सृष्टि जंह लग तन धारी, दस मुख बल वर्तौ नर नारी ॥
आयसु करहि सकल भय भीता, नवहिं आइ नित चरण विनीता ।

दो०—भुज बल विस्व वस्थ करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र ।

कोउ न सुतंत्र का भाव कि ब्रह्म, विष्णु, शङ्कर, सब देवन के देव हैं ते भी बरा वर्तौ हैं त्रिदेवों में मुख्य विष्णु भगवान् हैं सो भी पराजय को प्राप्त हुये यथा:-

कि मैनाक कि खग पति होई, मम बल जान सहित पति सोई ।

पुनः कवित्त रामायण सुन्दर काण्ड :-

युग पट भानु देखे प्रलय कृशानु देखे शेष मुख अनल विलोके बार बार हैं ।
तुलसी सुना न कान सलिल सर्प समान अति अचरज कियो केशरी कुमार हैं ।
वारिद बचन सुनि धुनै शीश सचिबन्ह कहै दश शीश ईश वामता विकार हैं ॥
पावक पवन पानी भानु हिम वान यम काल लोक पाल मेरे डर डावां डोल हैं ।
साहेब महेश सदा शंक्ति रमेश कहि मोहिं महातप साहस विरंचि लीन्ह मोल हैं ॥
तुलसी त्रिलोक आनु दूजो न विराजै राजा बाजे २ राजनि के वेटा बेटी बोल हैं ।
को है ईश नामको जो वाम होत मोहूसेको मालवान रावरेके बावरेसे बोल हैं ॥

“ इस भाव को, विनय में चरितार्थ किया है ” हरहि हरिता विधिहि विधिता

शिवहि शिवता जिन दर्द, सोई ज्ञानकी पति मधु सूरति मोद मय मङ्गल मई, जहाँतु
सम्पूर्ण को बस में कर रक्ता था ऐसे महा अरि ताको अरि कहि नाशक ताते राख
नारिम् कहि "जो कहते हैं, बलि, तथा, बालि, सहस्र भुज के बश में पड़ा था सो
अम्य राघव था" शिव गण तथा जलन्धर, जय, विजयकी कथा में जानेंगे जिन्हें विष्णु
भगवान् बध किया है इन्हें तो स्वतः विष्णु को पराजय किया है सो स्पष्ट दर्शाते हैं"
"यथा शिव संहितायाम्" :—

प्रतापी राघव सखा भ्रात्रा वै सह रावणः ।

राघवेण तदा साक्षात्साकेतादवतीर्यते ॥

प्रतापी श्री राम जू के सखा भ्राता विरज बल तथा परिवार समेत निशिवर
रावण कुम्भकर्ण हैं तब श्री राघव कर साक्षात् साकेत से अवतीर्ण होते हैं ७२ चौकड़ी
युग राज्य किया है विष्णु शिवादि सों सब को पराजय किया है "अब श्री राघव जू
के अवतीर्ण का समय दर्शाते हैं" प्रथम कल्प के बहत्तरी चौयुगी के त्रेता जब नव
लाख बहत्तर हजार वर्ष बीत गया अर्थात् ३ चरण भया जब चतुर्थ चरण लगे तब
प्रभव नाम सम्भवत सर में परात्पर प्रभु श्री राघव जू अवतीर्ण भये प्रतापी नाम जो
रावण हुये सो बहत्तर चौयुगी राज किया बहत्तर चौयुगी के त्रेता के चौथे चरण
जब ३ लाख चौबिस हजार वर्ष शेष रहा तब साकेत बिहारी प्रगट भये पुनः
वाल्मीकि सुन्दर काण्ड सर्ग १० :—

ऐरावत विषाणाग्रे पीडना कृत प्रव्रणौ ।

वज्रोत्लिखितपीनांभौ विष्णु चक्र परिहृतौ ॥

रावण को शयन करते शयन स्थान में देखते हैं जो भुज ऐरावत हाथी के
दाँतों के लगने से घाव युक्त हो गये थे (इससे इन्द्र का युद्ध स्पष्ट है) और विष्णु
चक्र लगने से कटि कन्धे में चिह्न हो गया था (इससे विष्णु का युद्ध स्पष्ट है) उत्तर
काण्ड सर्ग ६ :—

नारायणश्च रुद्रश्च शक्रश्चापियमस्तथा ।

अस्माकं प्रमुखेस्थातुं सर्वविभ्यति सर्वदा ॥

नारायण, रुद्र, यम, ये सब समर में हम सभी के सामने खड़े होते सदा
डरते हैं :—

विष्णोर्द्वेषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वर ।

देवा नामे दोषेण विष्णो प्रचलितं मनः ॥

“ हे राक्षसेश्वर ” विष्णु से घैर होने का कोई कारण नहीं है किन्तु देवताओं के कहने से विष्णु का मन बदल गया है ताते पूर्व प्रसंग स्पष्ट हुआ इस प्रकार के तेजस्वी ताको नाश किया ताते रावणादिम् कहा यथा “ओ राम तापनीये” :—

राक्षसा येन मरणं यांति स्वोद्रेकतोऽथवा ।

राम नाम भुविख्यातमभिरामेण वा पुनः ॥

या हेतु कर के सर्व राक्षस अपने से अधिक बल वीर्य पराक्रमादि युक्त श्री राघव जू से मरण को प्राप्त होते हैं इति भुवरादिक लोकों में श्री राम नाम कर के विख्यात है इति ।

(रामेशम्) रामा ईशम्-इति वृत्तेदः रमा जो लक्ष्मी अर्थात् श्री, भू, नीलादि समस्त श्रियों के ई-अर्थात् प्रेरक अर्थात् रमन करने वाली अथवा, ई नाम अपने स्वामी आनन्द के देने वाली, अथवा समस्त प्राणी शरणागत मात्र को रमण कराने वाली, यथा विनयपत्रिका ” :—

रुद्र विधि विष्णु सुर सिद्धि बन्धित पदे जयति सर्वेश्वरी राम जाया पुनः ।

जयति वैदेहि सर्वं शक्ति शिर भूषणो ते न तव दृष्टि बिन कबहु पावे पुनः ॥

इन्दिरा आदि दैमत्त गज गामिनी देव भामिनी सर्व पाँच परसे ।

रचित तव विपिन प्रिय प्रेम प्रगट करण लंक पति व्याज कलु खेल ठान्यो ॥

गोपिका कृष्ण तव तुल्य बहु यत्न करी तोहिमि इश आनन्द मान्यो ॥

ताते रमेश कहि पुनः “यथा वा० को० उ० अ० ४२” :—

अप्सरोरग संचाद्य किन्नरी परिवारिताः ।

दक्षिणा रूपावत्यश्च स्त्रियाः पानवशंगताः ॥

जिन्ह के पीछे अप्सरा नाग, किन्नरी आदिकों के समूह आये व परम चतुर-वती और भी स्त्रियां आईं इन सबों ने पुण्य रस पान किया जिससे कुछ २ मद सब की चढ़ आया ।

उपानृत्यंतिकाकुत्स्थं नृत्य गीत विशारदाः ।

मनोभिरामा रामास्तारामो रमयतां वरः ॥

फिर गाने नाचने में परम चतुर स्त्रियां श्री रघुनन्दन जू के सामने नाचने गाने लगीं इसी प्रकार अति मनोभिराम स्त्रियों को श्री रघुनन्दन जू इशारों से अर्थात् हाव भाव दर्शाय कर अच्छी प्रकार से :—

रमयामास धर्मात्मा नित्यं परम भूषिता ।

स तथा सीतया सार्धमासीनो विरराज वै ॥

सुख मान कर करवाये तथा आप किये वे पुनः श्री किशोरी जू के सहित
वस्त्रम आसन पर विराजमान होते भये ।

अरुन्धत्या इवासीनो वसिष्ठ इव तेजसा ।

एवं रामो मुदा युक्तः सीतां सुर सुतोपमाम् ॥

जैसे अरुन्धती के सङ्ग श्री वसिष्ठ जू विराजमान होते हैं उसी प्रकार परमा-
नन्दित हो श्री रघुनन्दन जू अति सुन्दरी देव कन्याओं व श्री किशोरी जू के संग :—

रमयामास वैदेहि महन्यहनि देववत ।

तथा तयो विहरतोः सीताराघवयोश्चिरम् ॥

दिन दिन अर्थात् नित्य प्रति कोड़ा करने लगे यहां तक कि तिन श्री जनक-
नन्दीनी जू श्री रघुवंश भूषण जू को विहार करते २ बहुत समय बीत गया ताते रमेशम्
कहा पुनः :—

सर्वाधीश्वरस्याग्नि हेतुरत्राभिधीयते ।

सीतापुरुषकारार्था श्रीत्यनेन पदेनतु ॥

इस श्री रामद्वय मन्त्र विषे श्री इस पद करके पुरुषाकार के अर्थ सीता कही
है, कैसे है श्री कि ब्रह्मादि स्थान पर पर्यन्त जगत के ईश्वर श्री राम की प्राप्ति विषे
सीता ही कारण कही है :—

अयं भावः—“आश्रित दोषान् शृणोति नाशयति तत्प्रार्थनाः
स्वयं शृणोति निजपतिं रामं श्रावयति अहितमपि हितान् ।
श्रावयतीति श्री ” :—

इत्यादि व्युत्पत्ति करके श्री इस पद कर के आश्रितों के दोषों को नाश करने
वाली और तिन आश्रितों की प्रार्थना को आप सुनने वाली और अपने पति श्री
रघुनन्दन जू के सुनाने वाली तथा आश्रितों के अहितों को भी हितकर के सुनाने के
स्वभाव वाली तथा ब्रह्मादि देवों कर के सेवा करी हुई तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड के पूर्ण
करने के सामर्थ्य वाली तथा परम कहना वाली तथा निरंतर दया वाली ऐसी सीता
भगवती श्री राम जू के प्राप्ति की मुख्य हेतु है ताते रमेशम् कहा :—

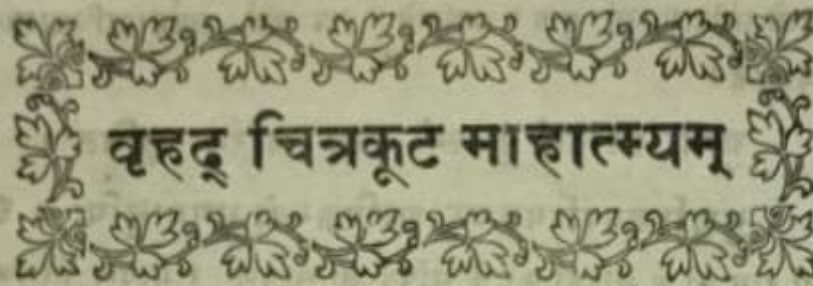
श्री रघुनन्दनस्येकमेव रूपं द्विप्रकारकमस्ति परिच्छिन्नम
परिच्छिन्नं च तयोर्मध्ये बीजस्वरूपं परिच्छिन्नं तत्तुजानक्या

सहायोध्यागताशोकवनिकार्णं नित्यमेव रामं करोति, अपरि-
 चिद्धन्नं नाम स्वरूपं द्वितीयमनेककोटिव्रह्माण्डेषु जगदुत्पाद्य
 नाना विधि लीलाद्यकरोति यत्रैवभक्तः स्मरति तत्रैवात्मानंदं
 दर्शयति अयोध्यायां नित्यं स्थितौ प्रमाणम् रामः पूर्णतम् श्रीमान्
 सच्चिदानन्द विश्रहः “अयोध्यां क्वापि संत्यज्य पादमेकं नगच्छति
 इति वशिष्ट संहितायाम् ॥



ॐ श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॐ

आदि कवि श्री वाल्मीकि महा मुनि प्रणीत ॥



यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभाति स्थितानि च ।

यत्रैवोपशमं यांतितस्मै चत्वात्मनेनमः ॥ २ ॥

जिसमें ये निखिल प्राणी आविष्कार होते हैं और स्थित लय होते हैं ऐसे सत्य स्वरूप परमात्मा को नमस्कार हो । यथा “ यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स बुद्धि शुभया संयुक्तुः ” यो देवानां माधिपो यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः । य ईश्वरस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम “ इति श्वेताश्वेतरोपनिषद् ” यतो वा इमानि भूतानि जायंते जातानि जीवन्ति यत्पर्यंत्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्य ब्रह्मेति ॥ यतः सर्वाणि भूतानि भवंत्यादि युगागमे । यस्मिंश्च प्रलयं यांति पुनरेव युगक्षये ।

स्फुरंत शीकराया स्मादानंदस्यां वरेऽवनौ ।

सर्वेषां जीवनं तस्मै ब्रह्मानंदात्मने नमः ॥ ३ ॥

यह आनन्द के कण जिससे आकाश व भूमि में प्रकाशित हो रहे हैं जो सम्पूर्ण का अधार है ऐसा नन्दात्मा परमात्मा को नमस्कार है “ यो देवाऽन्नियं ऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश । यथ्रोपधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ” इति श्वेताश्वेतरोपनिषद् :-

चरितं रघुनाथस्य शत कोटि प्रविस्तरं ।

एकैकमक्षरं पुंसां महा पातक नाशनं ॥ ४ ॥

श्री रघुनाथ जी का चरित शतकोटि से प्रविस्तार है जिसमें एक २ अक्षर प्राणियों के महा पापों को नाश करने वाला है :-

नमस्तस्मै मुनीशाय श्रीयुताय तपस्विने ।

सर्वज्ञानाधिवासाय बाल्मीकि मुनये नमः ॥ ५ ॥

मुनियों में शिरोमणि उपासना कर्म ज्ञान यह काण्ड त्रयके यथार्थ ज्ञाता बाल्मीकि मुनी को नमस्कार हो । श्रीयुताय-श्री सीता राम जू के उपासना, अर्थात्, श्री संप्रदाय धर्म युक्त " तपस्विने " तप कर्म, सर्वज्ञानाधिवासाय अर्थात् यही कांडव्य है ।

श्रुत्वारामायणं कृत्स्नं राम चरित भूषितं ।

भुशुण्डिरूपरिपप्रच्छ शाण्डिल्यो भगवानृषिः ॥ ६ ॥

श्री राम जी के चरित्रों कर के भूषित जो सम्पूर्ण रामायण तिसको श्रवण कर के भगवान् शाण्डिल्य ऋषि काकभुशुण्डि जी से फिर पूछते हैं :-

शाण्डिल्योवाच :-

श्रुतं त्वत्तः कृपासिन्धो जगदुत्पत्ति कारणम् ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि तीर्थं माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥

हे कृपा के समुद्र आप से हमने संसार की उत्पत्ति पालन प्रलय का कारण सुना अब इस समय उत्तम तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण करने की इच्छा है :-

चित्रकूटो गिरिश्रेष्ठः श्री रामपद भूषितः ।

यस्मिन् श्री जानकीनाथो रमे सर्वदैवहि ॥ ८ ॥

श्री राम जी के चरण कमल कर के भूषित पर्वतों में श्रेष्ठ जो चित्रकूट पर्वत है जिनके विषय श्री जानकी नाथ सदा रमन करते हैं :-

चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय लपन समेत ।

राम नाम जप जाप कहि, तुलसी अभिमत देत ॥

राम कथा मन्दाकिनि, चित्रकूट चित्त चार ।

तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहार ॥

माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि रहस्यं श्रुति संमितं ।

श्रुतं च परमैश्वर्यं श्री रामस्य गिरेः प्रभो ॥ ९ ॥

हैं स्वामिन् ! श्री राम गिरि का श्रुति सम्मत माहात्म्य को तथा रहस्य को हम श्रवण करने की इच्छा करते हैं हमने सुना है कि श्री चित्रकूट का बड़ा भारी प्रभाव है ।

देव्या च सीतया सार्धयस्मिन्नित्यं समाश्रितं ।

॥ श्रोतुमिच्छाम्यहं तात तस्य माहात्म्यमुत्तमम् ॥ १० ॥

हे परम प्रिय जिस श्री चित्रकूट पर्वत के विषे श्री जानकी देवी के सहित श्री रघुनन्दन जू विराजमान रहते हैं तिस श्री गिरिराज को उत्तम माहात्म्य को मैं श्रवण करने की इच्छा करता हूँ ।

रहस्यं रघुनाथस्य सर्वेषां च प्रियङ्करम् ।

चित्रकूट गिरौरम्ये मन्दाकिन्यास्तटेशुभे ॥ ११ ॥

रमणीक श्री मन्दाकनी नदी के किनारे में जो चित्रकूट पर्वत के विषे श्री सीताराम जी का रहस्य सर्व प्राणी मात्र को प्रिय करने वाली होती है ।

ऋषिणामाश्रमपदे सदा तिष्ठति सानुजः ।

मण्डलम्परमं शुद्धं निर्मितम् विधिनापुरा ॥ १२ ॥

योजनत्रय संख्याकं दिक्षु सर्वासु चोत्तमम् ।

प्रथम श्री ब्रह्मा जी ने संसार की उत्पत्ति के आदि में अत्यन्त शुद्ध चारों दिशाओं में तीन तीन योजन पर्यन्त बहुत शोभायमान मण्डल की रचना किया ऐसा जो ऋषियों का स्थान श्री चित्रकूट तिसके विषय छोटे भ्राता श्री लक्ष्मण जी के सहित श्री राघव जी सदा काल विराजमान रहते हैं ।

माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तीर्थानि विविधानि च ।

एतन्मे वाञ्छितं तात परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥ १३ ॥

इस हेतु हे तात ऐसे श्री चित्रकूट गिरिराज के माहात्म्य की तथा जो इनके अन्तर्गत तीर्थ हैं इनके माहात्म्य को मैं श्रवण करने की इच्छा करता हूँ हे प्रभो इस हमारे मनोरथ को अच्छी प्रकार से पूर्ण करो ।

भुशुण्डिरुवाच :—

रहस्यं रामचन्द्रस्य दुर्लभमुनिदेवयोः ।

तथापि ते वदिष्यामि सावधानतया शृणु ॥ १४ ॥

श्री काकभुशुण्ड जी बोले हे शाण्डिल्य श्री रामचन्द्री जी का रहस्य मुनि जनों तथा देव गणों को भी दुर्लभ है तथापि हम तुम्हारे प्रति कहेंगे एकाग्र चित्त से श्रवण करो ।

उक्तं हि विधिना पूर्वं सर्वेषां हितकाम्यया ।

एकाग्र मानसं कृत्वा जित श्वासो जितासनः ॥ १५ ॥

पश्चासन से बैठे हुये श्वास वशीभूत किये हुये श्री ब्रह्माजी ने एकाग्र मन को करके सम्पूर्ण प्राणियों के हित करने की इच्छा से प्रथम सृष्टि के आदि में परम पावन रहस्य को कहा । तत्र स्थिर सुखमासीनम् । प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम् । ततो ब्रह्मज्ञानभिधातः । इति आसनम् । तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगति विच्छेदः प्राणायामः सतुवाह्याभ्यान्तर स्तम्भ वृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिवृष्टो दीर्घसूक्ष्मः । वाह्याभ्यान्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः । ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् । इति प्राणायाम योगसूत्र ।

रहस्यं परमोदारं यत्र ब्रह्मपुरी स्थिता ।

यच्च वेदी स्थिता तस्यां त्रिंशद्भुजमायता ॥ १६ ॥

तिस श्री चित्रकूट में ब्रह्मपुरी विराजमान हैं तिस ब्रह्मपुरी में तीस ३० धनुष के प्रमाण एक यज्ञ वेदी विराजमान है ।

विधिना निर्मिता पूर्वं वेदी परम पावनी ।

अग्नि वेशादि मुनयो वाल खिल्यादयस्तथा ॥ १७ ॥

ते गताः परमां सिद्धिं यच्च कृत्वा जितेन्द्रिया ।

गंगाया गर्भ मध्ये तु धनुषा कृतिः शोभना ॥ १८ ॥

श्री ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि में परम पवित्र इस वेदी की रचना किया है और अग्नि वेशादिक ऋषि तथा वालखिल्यादि ऋषि गण इन्द्रियों के जोते हुये यज्ञ को करके परम उत्कृष्ट भगवत्प्राप्ति रूप सिद्धि प्राप्त हुये हैं और श्री गंगाजी के मध्य में एक बहुत शोभायमान धनुष का आकार है ।

तस्यां सर्वाणि तीर्थानि संस्थितानि द्विजोत्तम ।

दृष्ट्वा तां तत्र च स्नात्वा पीत्वा गंगाजलं शुभम् ॥ १९ ॥

तीस धनुषाकृत में सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं हे शाण्डिल्यजी ! उस तीर्थ का दर्शन करके स्नान करके श्री गंगा जलपान करने से :—

ते गच्छन्ति परां सिद्धिं महदैश्वर्यं सम्भवाम् ।

एतत्ते गुह्यमाख्यातमपरमं द्विजसत्तम ॥ २० ॥

वह पुरुष बड़े भारी ऐश्वर्य से प्राप्त हुई उत्तम सिद्धि को प्राप्त होते हैं हे छिजों
में श्रेष्ठ यह बहुत गूढ़ वृत्तान्त को आप से हमने कथन किया ।

स्नात्वा मातर्यम्परित्यज्य देवलोकङ्गतानराः ।

स्नात्वा श्री यज्ञ वेद्यां तु दृष्ट्वा सीतापतिं नराः ॥२१॥

और उस तीर्थ में स्नान करके बहुत से सकाम पुरुष इन्द्रलोक चले गये और
जो कोई पुरुष यज्ञ वेदों में स्नान करते हैं और श्री सीता रामजी का दर्शन
करते हैं ।

प्रदक्षिणं गिरेः कृत्वा कोटिं यज्ञं फलं लभेत् ।

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वाणप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ॥२२॥

और श्री गिरिराज की प्रदक्षिणा करके कोटि यज्ञ के फल को प्राप्त होते हैं
गृहस्थ अथवा ब्रह्मचारी अथवा वाणप्रस्थ या संन्यासी । यथा दक्षस्मृतौः- मेखलाजिन
दण्डेन ब्रह्मचारी तु लक्ष्यते । गृहस्थो देवयज्ञार्चनखलोद्भा वनाश्रितः । त्रिदण्डेन
यतिश्चैव लक्षणानि पृथक् पृथक् किन्तु संन्यास को षट् प्रकार से श्रुतियाँ ने विधान
किया है ॥

ते गच्छन्ति परां सिद्धिं शतशोऽथ सहस्रशः ।

पयोभूता नदी यत्र राम रूपा न संशयः ॥२३॥

ऐसे अनेक जीव सैकड़ों हजारों (सहस्र शब्द वेद्य में अनन्त वाचक हैं) पुण्य
के सदृश जल वाली नदी वह साक्षाद्राम रूप है इस में संशय नहीं वहाँ पर उत्तम
सिद्धि को प्राप्त होते हैं ।

यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावत्स्थास्यन्ति सागराः ।

ते गतिम्परमां यान्ति दुःप्राप्यमजितेन्द्रियैः ॥२४॥

जब तक पर्वत स्थित रहेंगे जब तक समुद्र स्थित रहेंगे तब तक वह प्राणी
उत्तम गति को प्राप्त रहेंगे वह गति जिन पुरुषों ने इन्द्रियों को नहीं जीता है ऐसे
जीवों को दुर्लभ है ।

साम्रा सशशस्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः । आगमा पायिनोऽनित्प्रास्तां-
तितिक्षस्वभारत ॥ यं हि न व्यथयत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ । सम दुःख सुखं धीरं सोऽमु-
तत्वाय कल्पते ॥ गी० अ० २ ॥

ॐ विस्तार भय से इसका उल्लेख नहीं किया अतः "वैष्णवं तत्त्वप्रपाकर" में देखिये । ले०

किन्तु ते ते शक्तिं प्राप्नुवन्ति ॥ दोहा ॥

शब्दादिक विषय न रमै, सुख दुःख ऊषण शीत ।

सहै जनम पुनि मरण को, तन अनित्य यह मीत ॥

जिन्हें न दुःख विषय कलु, नर पुङ्गव ते धीर ।

दुःख सुख लहि सम चित रहै, लहै अमृत फल ॥ वीर ॥

तपसा तेजसा चैवदुर्नीत्या सुरैरपि ।

ते भवन्ति नरा नित्यममन्दाकिन्याः प्रभावतः ॥ २५ ॥

और जो श्री मन्दाकिनी तट पर निवास करते हुये श्रीमन्दाकिनीजी की सेवा करेंगे उन पुरुषों को श्री मन्दाकिनी जी के प्रभाव से तप करके तथा तेज करके देवतागण भी कष्ट से देख सकेंगे ।

मन्दराचल मूलातुप्राप्ता मन्दाकिनी नदी ।

सा देवगंगा विख्यातासदाः पापहरा परा ॥ २६ ॥

एक मन्दराचल नाम का पर्वत है जिसके मूल से मन्दाकिनी नदी प्राप्त हुई है वह तत्काल ही पाप को हरण करने वाली परम उत्कृष्ट नदी देव गङ्गा नाम से प्रसिद्ध है ।

विनय पत्रिकायाः—यथा हरति पाप त्रिविध तापं सुमिरत सुरसरिता ।
विलसति महि कल्प वेलिमुद मनोरथ करिता ॥

यस्यां स्नात्वा नारदश्च निर्मुक्तो दत्त शापतः ।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य भुशुण्डेः परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥

श्री नारद जी ने जिस नदी में स्नान करके ओदक्ष प्रजापति के शाप से छूट गये इस प्रकार श्री भुशुण्डि जी के परम आश्चर्यमय वाक्य को सुन करके

मन्दाकिनी त्रय काल नहाहि । जेहि विलोक अघ ओघ नसाहि ॥

पूत्युवाचः—विनीतात्माशाण्डिल्यो द्विजसत्तमः ।

द्विजों में श्रेष्ठ श्री शाण्डिल्य जी नम्रता पूर्वक बोले :—

यथा गीतायां तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यति ते ज्ञानं ज्ञानि नस्तत्त्वदर्शिनः ॥ श्री गुरुदेव जी को साष्टांग दण्डवत् कर क्या मोक्ष, ज्ञान अज्ञान आत्मा, परमात्मा, माया, परमात्मा के प्राप्त के लिये प्रश्न करे यह शास्त्रोक्त विधि है ।

शाण्डिल्योवाच ।

कथम्प्रजापते. शापान्निर्मुक्तो नारदो मुनिः ।

एतद्विबस्तरो ब्रूहि गुरो संसार-तारकः ॥ २८ ॥

शाण्डिल्य जी बोले हे संसार समुद्र से पार करने वाले गुरी ! श्रीदक्ष प्रजापति के शाप से श्री नारद जी किस प्रकार से छूटते भये इस कथा को विस्तार पूर्वक कहिये ।

दक्ष प्रजापति के शाप का हेतु ।

दक्ष प्रजापति ने पंच जन प्रजापति की कन्या असिन्की से विवाह किया । उससे हर्यश्व नाम दश हजार पुत्र उत्पन्न किया सब स्वभाव के एक तुल्य थे, पुनः सम्पूर्ण अपने पिता की आज्ञा से पश्चिम दिशा को गये, नारायण शरनाम तीर्थ है । अपि मुनियों से सेवित जहां सिन्धु नदी और समुद्र का संगम है उनमें स्नान करते ही उनका हृदय निर्मल होगया परमहंस धर्म में विचार उत्पन्न होने लगा प्रजा के वृद्धि के उद्योग में तप कर रहे थे, नारद जी पहुंचे दश कूट प्रश्न सुनकर ब्रह्माकार वृत्ति हो जाने से दक्ष ने श्राप दिया दशकूट क्या है पृथ्वी का अन्त देखे सृष्टि क्यों करोगे १ एक पुरुष वाला देश २ जिस में निकलने का मार्ग नहीं देख पड़ता ऐसी गुफा ३ बहुत रूप धरने वाली स्त्री ४ व्यभिचारी पुरुष ५ दोनों ओर बहने वाली नदी ६ पचीस पदार्थों से अद्भुत प्रतीत होता धर ७ कोई विचित्र कथा कहता हुआ हंस ८ आप से घूमता और छुरे बज्जों से बना चक्र ९ अपने सर्वज्ञ पिता की आज्ञा १० इन पदार्थों के जाने सृष्टी कब कर सकोगे ।

भुशुण्डिवाच ।

पुत्रावभूवुर्दक्षस्य ते वै हर्यश्व संज्ञका ।

ते च पित्रा समादिष्टा स्तपस्तेपुर्महात्मना ॥ २९ ॥

श्री भुशुण्डि जी बोले दक्ष प्रजापति के पुत्र होते भये और हर्यश्व नाम जिन का होता भया वह सब महारमा श्री पिता जी की आज्ञा को प्राप्त हुये तप को करने लगे ।

ते दृष्ट्वा नारदेनैव शुद्धा मोक्षाऽधिकारिणः ।

देवर्षिर्भगवांस्तेषां ज्ञानं भक्तिसमन्वितम् ॥ ३० ॥

ददौ ते चैव निर्मुक्ताः सदाः संसार बन्धनात् ॥

॥ और अन्तःकरण जिनका शुद्ध मोक्ष के अधिकारी उन महारमों को श्री नारद

जो नै देखा और भगवान् देवर्षि श्री नारद जी ने उन महात्माओं को भक्ति करके संयुक्त जो ज्ञान स्वरूप तथा पर स्वरूप का विचार रूप ज्ञान तिनको देते भये यह सब महानुभाव ने तत्काल ही संसार रूप बन्धन से छूट जाते भये ॥

श्रुत्वा प्रजापतिस्तेषां नाशं ध्यान परायणः ॥३१॥

पुत्रों को चिन्तन करते हुये दक्ष प्रजापति ने पुत्रों का नाश अर्थात् जगत् के व्यवहारिक विषयों से निवृत्त होकर स्वच्छन्दगति को प्राप्त हुये सुन कर,

शशाप नारदं क्रोधात्पुत्र शोकोतुरस्तदा ।

त्रिलोक्यां तव देवर्षे स्थितिर्नैव भविष्यति ॥३२॥

पुत्र शोक से व्याकुल हुये प्रजापति जी ने उस समय श्रीनारदजी को शाप देते भये कि हे नारद तीनों लोक में फिरते हुये तुम्हारी स्थिति कहीं भी न होगी ।

श्रुत्वा शापं तु देवर्षि ब्रह्मणः सन्निधियौ ।

उवाच पितरं ज्ञात्वा सर्व लोक महेश्वरम् ॥३३॥

इस प्रकार दक्षजी के शाप को सुन कर श्रीनारदजी श्रीब्रह्माजी के समीप गये सर्व लोक के महान् ईश्वर पिता श्रीब्रह्माजी के समीप जाकर बोले ।

श्रीनारद उवाच ।

केन दानेन देवेश तपसातीर्थ सेवया ।

निर्मुक्तोऽहम्भवामीति तद्वदस्व पितामह ॥३४॥

श्रीनारदजी बोले हे देवेश कौन से दान करने से कौन सा तप करने से किस तीर्थ को सेवन करने से हम दक्ष के शाप से छूटेंगे सो हे पितामह हमारे से कहिये ।

॥ ३५ ॥ श्रीब्रह्मोवाच ।

चित्रकूटो गिरिश्रेष्ठः श्रीरामपद भूषितः ।

मन्दाकिनी नाम नदी यत्र पाप प्रमोचनी ॥३५॥

श्रीब्रह्मा जी बोले श्रीरामजी के चरण चिन्हों से भूषित पर्वतों में श्रेष्ठ श्रीचित्रकूट नाम का पर्वत है वहां पर सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली मन्दाकिनी नदी है ।

तस्यां स्नात्वा द्विजश्रेष्ठ शाप मुक्तो भविष्यसि ।

इति प्रजापतेरुक्तं श्रुत्वा देवर्षिरुत्तमम् ॥३६॥

हे ब्रह्माणों मैं श्रेष्ठ उस नदी मैं स्नान करने से शाप से छूट जावेंगे इस प्रकार श्रीब्रह्माजी के उत्तम कथन को नारदजी श्रवण करके ।

चित्रकूटं गिरिं गत्वा यत्र मन्दाकिनी नदी ।

देव नद्यां ततः स्नात्वा गिरेः कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥३९॥

श्रीचित्रकूट पर्वत को जाय करके जहां पर मन्दाकिनी नदी है वहां मन्दाकिनीजी में स्नान करके गिरिराज की प्रदक्षिणा करके ।

दृष्ट्वा श्रीरामदेवं तं ब्रह्मरुद्रादि वन्दितम् ।

दक्ष शापाद्दिवनिर्मुक्तो देवर्षिर्द्विजसत्तम ॥४०॥

ब्रह्मा विष्णु महेश नारायणादि देवता जिनकी वन्दना करते हैं ऐसे श्रीरघुवंशज का दर्शन करके द्विजों में श्रेष्ठ श्रीनारदजी दक्ष प्रजापति के शाप से छूट जाते भये ।

प्रभावश्चित्रकूटस्य मयाप्युक्तः समासतः ॥४१॥

हे श्रीशाण्डिल्यजु हमने श्रीचित्रकूट के प्रभाव को संक्षेप में कहा ।

अतः परम्प्रवक्ष्यामि भरता ज्ञेयमुत्तमं ।

सम्वादं यत्र संभूतं तीर्थं माहात्म्यमुत्तमम् ॥४२॥

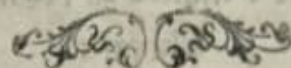
इसके पश्चात् श्रीभरत लालजु का व श्रीभञ्जि जू का सम्वाद कथन करेंगे जिस सम्वाद में तीर्थ का उत्तम माहात्म्य कथन हुआ है ।

इति श्रीबृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये सीता रामोय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी

शरण कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका

भाषा टीका प्रथमोऽध्यायः



अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

भरत उवाच ।

तीर्थानि यानि पुण्यानि वनान्पायतनानि च ।

द्रष्टुमुत्कण्ठितं तात ममेदं नाथ मानसम् ॥ १ ॥

श्रीभरतजी अत्रिमुनि के प्रति बोले, हे तात ! श्रीचित्रकूट के जो २ पवित्र तीर्थ हैं और जो वन हैं जो गुहा हैं हमने सब देखा इस हेतु हे नाथ हमारा यह मन बहुत प्रसन्न हुआ ।

तदेतत्प्रार्थितं देव सफलं कर्तुमर्हसि ।

नचास्ति त्रिषुलोकेषु त्वत्समो ज्ञानवित्तमः । २ ॥

इस हेतु हे देव हमारी जो यह प्रार्थना है आप कृपा करके सफल कीजिये आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं आपके सदृश तीनों लोक में कोई नहीं है ।

माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि चित्रकूटस्य विस्तरम् ।

प्रजामु वीतशोकासु स्थितासु विगतउत्तर ॥ ३ ॥

इस हेतु स्वामिन् श्रीसीतारामजी के दर्शन से दूर हो गया है शोक जिनका ऐसी सुख पूर्वक बैठो हुई प्रजा के मध्य में दुःख से रहित हुआ मैं श्रीचित्रकूट के माहात्म्य को विस्तार पूर्वक श्रवण करने की इच्छा करता हूँ ।

तीर्थपुण्याश्रमश्रेणी द्रष्टुमुत्कण्ठितममनः ।

एतत्त्वम्परमं गुह्यं वक्तुमर्हसि मे गुरो ॥ ४ ॥

हे गुरो श्री चित्रकूटान्तर्गत तीर्थ पवित्र जो आश्रम के समूह देखने के हेतु हमारा मन बहुत उत्सुक रहता रहा ।

येन मार्त्यम्परित्यज्य देवलोकं गतानराः ।

तन्माहात्म्यम्बदमुने चित्रकूटस्य विस्तरम् ॥ ५ ॥

हे मुनि जिनके श्रवण करने से मनुष्य मृत्युलोक को परित्याग करके देवलोक को चले गये ऐसे श्री चित्रकूट के माहात्म्य को विस्तार पूर्वक कहिये ।

अत्रिरुवाच ।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पुण्यवर्धनम् ।

यस्य श्रवण मात्रेण वाजपेयं फलं लभेत ॥ ६ ॥

श्री अत्रिजु बोले हे राजन् ! सुनिये पुण्य की वृद्धि करने वाले माहात्म्य को हम कथन करेंगे जिसके ध्वन मात्र से पुण्य वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ।

चित्रकूटेति विख्यातः श्रीराम पद भूषितः ।

स्वर्णरौप्यादिष्वचितेः सर्वतीर्थावगर्भितः ॥ ७ ॥

श्री रामजी के चरण चिन्हों से भूषित श्री चित्रकूट नाम का पर्वतराज प्रसिद्ध है सोना चांदी करके जड़ित सम्पूर्ण तीर्थों करके युक्त है ।

गिरिराजश्चित्रकूटो यच्च मन्दाकिनी नदी ।

स्नात्वा मन्दाकिनी नीरे गिरेः कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ८ ॥

श्री चित्रकूट नाम के पर्वत राज हैं उनके समीप मन्दाकिनी नदी हैं उस मन्दाकिनी नदी में स्नान करके । श्री पर्वतराज के चारों तरफ प्रदक्षिणा करके यथा सुन्दर काण्डे श्री जानकी वचन माकतीप्रति :—इदं ध्रुष्टमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वंतु मम प्रियम् । शैलस्य चित्रकूटस्य पादेपूर्वोत्तरे पदे ॥ तापसाश्रमवासिन्याः प्राप्य मूल-फलोदके । तस्मिन्निस्सङ्गाध्रिते देशे मन्दाकिन्याविदूरतः ॥

मनोवाञ्छा फलं प्राप्य ब्रह्म चातान्निवर्तते ।

प्रयागात्पश्चिमे भागे सप्तयोजन दूरतः ॥ ९ ॥

मनोकामना को प्राप्त होकर पुरुष ब्रह्महत्या से छुट जाता है । प्रयाग राज से पश्चिम भाग सात योजन दूर है ।

दश क्रोशस्तस्मात् गिरिर्यस्मिन्नियत्स्थितिः । महर्षिसेवितः पुण्य पर्वत शुभदर्शन ।
श्री रघुनन्दन जू प्रति भरद्वाज जू, तथा भरतार्थ तृतीयेषु योजनेष्वने वने ।
चित्रकूट गिरिस्तत्ररम्य निर्दर कानन । अ० का० बा०

सकूटः पर्वत श्रेष्ठ मणि काञ्चन चित्रितः ।

विराजते महाराजा ब्रह्म रुद्रादि पूजितः ॥ १० ॥

हे महाराजा ! मणि सुवर्ण से जड़ित ब्रह्मा विष्णु नारायण और रुद्रादि देवतों से पूजित वह पर्वतराज श्री चित्रकूट विराजमान है ।

भुशुण्डिरुवाच ।

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं भरतो भ्रातृवत्सलः ।

संगलालंकृतवपुः कृतः स्वस्त्ययनो द्विजैः ॥ ११ ॥

आतृणां को निर्दोष देवते चाले श्री भरत जी इस प्रकार मुनियों के वाक्य को ध्वनित करके और ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त हुये और मंगल शासन करके शीघ्र ही शरीर जिनका ऐसे श्री भरत लाल जी ।

वशिष्ठ प्रमुखैर्विप्रैः शास्त्रज्ञैश्च समन्वितः ।

स्निग्धैः कतिपयै रेव राजपुत्रवरैः सह ॥ १२ ॥

शास्त्र के जानने वाले वशिष्ठ प्रधान ब्राह्मणों के सहित और सुन्दर अथवा बहुत से राजकुमारों के साथ ।

कौशल्यादि स्वमातृभिः साकं स्नेह विभूषितः ।

निरगात्तुल्ययोध्यायास्तीर्थ यात्रार्थ मुदातः ॥ १३ ॥

स्नेह करके भूषित श्री कौशल्या प्रधान अपने माताओं सहित तीर्थयात्रा को तत्पर हुये श्री अयोध्या जी से गमन करते भये ।

प्रीयमाणः पुरस्त्रीणां नेत्रैर्भावादि भूषितैः ।

ग्रामणी ललना लोल हस्त पद्म प्रच्छेपितैः ॥ १४ ॥

शुद्ध अन्तःकरण के विषय जो सीतादेव तिस करके भूषित जो नगर की स्त्रियों का नेत्र तिस को प्रसन्न करने वाले श्री भरतलालजी नगर में रहने वाली स्त्रियों के जो चञ्चल हस्त कमल उससे जो प्राप्त हुई लावा की वृष्टि से व्याप्त हुये ।

लाजवर्षैर्विकीर्णः सन् शोभते रघुनन्दनः ।

प्रणमन्नपिप्रवर्षाश्च परिमृण्वन् प्रजापिपः ॥ १५ ॥

श्रीरघुवंश को आनन्दित करने वाले श्री भरतजी शोभा को प्राप्त होते हुये श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम करते हुये और प्रजा के आशीर्वाद को ध्वनित करते हुये ।

आलोकयन्दिगन्तञ्च परिचक्राम जाङ्गलान् ।

आजगामहरिक्षेत्रं चित्रकूटम्मणिप्रभम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार दिशों के मध्य को देखते हुये पार्श्वतोय को चले और मणि के सहस्र कान्ति वाले श्री सीताराम जी के विहार स्थल श्री चित्रकूट को आये ।

यत्र मन्दाकिनी गंगा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।

यत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे तथा राजर्षयोऽमला ॥ १७ ॥

विराजन्ते द्विज श्रेष्ठ श्री राम स्मरणोत्सुकाः ।

स्नात्वाद्यु नद्यां विधिवद्भक्त्या दानं यथाविधि ॥ १८ ॥

जहाँ पर मन्दाकिनी गंगा जी दोनों लोक में प्रसिद्ध विराजमान हैं और हे शाण्डिल्य जी परिशुद्ध भक्तिकरण हो गया है जिनका ऐसे श्री सोताराम जी के स्मरण करने में बड़े उत्साह वाले जो ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि सब विराजमान रहते हैं श्री मन्दाकिनी जी में स्नान करके विधि पूर्वक दान दे करके ।

प्रदक्षिणार्थम्भरतोद्वाजगाम गिरेरधः ।

तत्राश्चर्यं तेन दृष्टं तत्पर्वं कथयामि ते ॥१८॥

प्रदक्षिण करने के हेतु श्री भरतलाल जी गिरिराज के नीचे आते भये और वहाँ जो कुछ आश्चर्य उन्होंने देखा सो आप से कहते हैं ।

जान्हवीचैव कालिंदीं स्रुं च कमलैर्वृताम् ।

सरस्वतीं शतद्रुं च चन्द्रभागाम्पयस्विनीम् ॥२०॥

श्री गंगा जी तथा यमुना जी तथा सरयू जी कमलों युक्त देखते भये और सरस्वती, शतद्रुमा, चन्द्रभागा, पयस्विनी, इन सब को उन पर्वत में देखते भये ।

विरजां ताम्रपर्णीं च कावेरीं चैव नर्मदां ।

प्रयागं नैमिषं चैव धर्मारण्यं गयां तथा ॥२१॥

श्री विरजा, ताम्रपर्णी, कावेरी, नर्मदा, प्रयागराज, नैमिषारण्य, धर्मारण्य गया पुरी, यह सम्पूर्ण तीर्थ नदी व वन नगर देखते भये ।

वाराणसीं श्री गिरिं च केदारं पुष्करम् तथा ।

मानसं सरोवरं च तथैवोत्तर मानसम् ॥२२॥

श्री काशी, श्री शैल, केदार, पुष्कर, मानसरोवर, उत्तर मानससर, यह सब तीर्थों को देखते भये ।

वाडवम्बडवञ्चै तीर्थवृन्दं च सागरम् ।

अग्नि तीर्थम्महातीर्थमिन्द्र द्युमसरस्तथा ॥२३॥

तीर्थों के समूह समुद्र बड़वानल, बड़ा व तीर्थ, अग्नि तीर्थ, महातीर्थ, इन्द्र पुमसर सब को श्री भरतलाल जी ने देखा ।

सारांसि सरितश्चैव पुण्य क्षेत्राणि यानि च ।

स्वामिनं कार्तिकेयंश्च शालिग्रामं हरिं तथा ॥२४॥

सम्पूर्ण सरोवर नदी और जो जो पवित्र क्षेत्र हैं स्वामी कार्तिक भक्तों के फलेश के हरने वाले शालिग्राम भगवान को भी देखा ।

एतानि सर्व तीर्थानि नानाश्चर्ययुतानि च ।

विन्ध्यादि पर्वत श्रेष्ठाः श्री गिरेः सेवनोत्सुका ॥२१॥

अनेक प्रकार के आश्चर्य युक्त सम्पूर्ण तीर्थों को श्री भरतलाल जू देखते भये और विन्ध्यादि जो जो पर्वतों में प्रधान हैं सो सब श्री गिरिराज श्री चित्रकूट जू की सेवा में उत्साहित हैं ।

श्री गिरिं चतुरशीतीर्थोजनानां समुच्छ्रितम् ।

सर्व देवात्मकं दृष्ट्वा गिरेः कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥२२॥

श्री भरतलाल जू इस प्रकार से चौरासी ८४ योजन के ऊँचा सर्व देवताओं मय श्री गिरिराज को देख कर के ओर श्री चित्रकूट की प्रदक्षिणा कर के:—

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यः श्री रामप्रीति हेतुकम् ।

मन्दाकिन्यां ततः स्नात्वा प्रयागे राघवे तदा ॥२३॥

ब्राह्मणों को श्री सीताराम जी की प्रीति निमित्तिक दान दे करके श्री राघव प्रयाग के बिप्रे मन्दाकिनी जी में फिर स्नान करके:—

चकार यात्राम्भरतः पञ्चतीर्थात्मिकां शुभाम् ।

कोटि तीर्थं ततः स्नात्वा दत्त्वा दानं यथाविधि ॥२४॥

श्री भरतलाल जू सुन्दर जो पञ्च तीर्थ की यात्रा करते भये इसके अनन्तर कोटि तीर्थ में स्नान करके विधिवत् दान देते भये ।

हनुमद्दर्शनं कृत्वा ह्यत्रि तीर्थं गतस्तथा ।

यत्र मन्दाकिनी गंगा समुद्भूता महानदी ॥२५॥

श्री हनुमन्तलाल जू का दर्शन करके श्री अत्रि जी के आश्रम में जाते भये जहाँ पर महानदी श्री मन्दाकिनी गंगा उत्पन्न हुई है ।

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो भोजनं विधि पूर्वकम् ।

कारयित्वा मुनि दृष्ट्वा भार्याभिः सहितः सुधीः ॥२६॥

सुन्दर बुद्धिमान श्री भरतलाल जू अपने श्री भार्या के अर्थात् स्त्रियों के सहित ब्राह्मणों को विधि पूर्वक भोजन कराव करके दान देते भये और मुनि श्री अत्रि जी का दर्शन करके ।

यथा वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड में:—

सौ सौ कन्या, प्रत्येक राजकुमारी को व दास, दासी, अति भेट कोटान

२ रुपये व मुहरे व मोती मूवा दिये । ताते भार्या बहु बचत है ॥

गोदावर्यं ततो गत्वा देवं पशुपतिं विभुम् ।

पूजयित्वा प्रसन्नात्मा ह्यात्मार्यं कूप मागताः ॥३१॥

प्रसन्न चित्त वाले श्री भरत लाल जू गुप्त गोदावरी को जाय करके श्री महा-
देव जू का पूजन करके अपना कूप अर्थात् भरत कूप को जाते भये ।

पंचतीर्थात्मिकं यात्रां कृत्वा पूजां विधाय च ।

दर्शनं श्री गिरेः कृत्वा पूजनं सह मातृभिः ॥ ३२ ॥

अपने माताओं के सहित (अर्थात् सात सौ ७०० माताओं के सहित) पञ्च-
तीर्थ की यात्रा करके और पूजन करके श्री गिरिराज का दर्शन करके पूजन करते
भये, यथा गीतावली० बाल काण्ड :-

पालागन दुलहिन सिंघावत सरिस सासु शत साता ।

देहिं अशीश ते घरप कोटि लगि भचल होउ अहि बाता ॥

वासं त्रिरात्रिकं कृत्वा ह्यजगाम पुरं ततः ।

प्रविवेश पुरीं श्रीमान् यथा शक्तोऽमरावतीम् ॥३३॥

श्रीमान् भरत लाल जू फिर तीन ३ दिवस श्री बिष्णुकूट में रहकर पुनः अपने
नगर को आय जिस प्रकार से इन्द्र देवता अपने अमरावती पुरी में प्रवेश करते हैं
इसी प्रकार श्री भरत लाल जू अपने श्री अयोध्या पुरी में प्रवेश करते भये ।

प्रणनामाय भरतो गुरुभ्रातृषमन्वितः ।

ब्राह्मणान् कुल वृद्धांश्च पूजयामास सादरात् ॥३४॥

श्री भरत लाल जू श्री अयोध्यापुरी में आय कर श्री गुरु महाराज की प्रणाम
करते भये और ब्राह्मणों को और कुल के वृद्धों को प्रणाम करके पूजन करते भये ।

एतद्भारतमाख्यानं यः पठेत्पाठयेद्यदि ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो धनधान्य समन्वितः ॥ ३५ ॥

बहुत शिष्टों के विषय भरतलाल जू के वा० भ० का० स० १०० श्री० ४९ में देखिये ।

यह जो श्री भरत लाल जू की कथा को जो कोई प्राणि मात्र पाठ करेंगे और दूसरे को भवण करावेंगे सम्पूर्ण पापों से छुट करके धन धान्य से युक्त होंगे ।

विमुक्तः सर्व पापेभ्यो रामलोके महीयते ।

इति भारतमाख्यानं मया ते परिकीर्तितं ॥३६॥

वह पुरुष सम्पूर्ण पापों से छुट करके श्री सीताराम जू के लोक में प्रशंसा को प्राप्त होते हैं यह श्री भरत लाल जू की कथा हमने तुम्हारे से कथन किया ।

इत्यार्षे बृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये श्री सीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी-

शरण कृत ब्रह्मतत्व प्रकाशिका भाषा

॥ ३६ ॥ टीका द्वितीयोऽध्याय ।

— (३६) टीका द्वितीयोऽध्याय ।

इति ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

— इति ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

। तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

॥ तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

। तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

॥ तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

इति ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

• इति ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

। तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

॥ तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

। तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

इति ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

• इति ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

। तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

॥ तत्र ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

इति ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका द्वितीयोऽध्याय ।

तृतीयोऽध्यायः ।

शाण्डिल्योवाच ।

तीर्थयात्रा विचित्रा च वर्णिता द्विजसत्तम ।

रहस्यं चित्रकूटस्य ब्रूहि संक्षेपतो मुने ॥१॥

श्री शाण्डिल्य जी बोले हे पक्षियों में श्रेष्ठ आपने श्री चित्रकूट के अग्तर्गत तीर्थों की यात्रा का बहुत अच्छा वर्णन किया । हे मननशील अब आप कृपा करके संक्षेप से श्री चित्रकूट के रहस्य का वर्णन कीजिये ।

श्री भुशुण्डिरुवाच ।

सुतीक्ष्णो ब्राह्मणः कश्चित्संशयाकृष्टमानसः ।

आगस्त्यमाश्रमं गत्वा मुनिं पप्रच्छ सादरम् ॥२॥

श्री भुशुण्डि जू बोले श्री सुतीक्ष्ण नाम के कोई ब्राह्मण रहे जिनका मन संदेह से आकर्षण हुआ रहा वह श्री अगस्त जी के आश्रम में जा करके हाथ जोड़ कर आदर पूर्वक श्री अगस्त जू से पूछते भये । यथा गी० याम् :—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।

तस्यां कथायां विस्तार महिमा वर्ततेऽनघ ।

तन्मुखाद्गलितं सर्वं कथयामि तवाग्रतः ॥३॥

वह सुतीक्ष्ण अगस्त की कथा में विस्तार पूर्वक महिमा का वर्णन वर्तमान है तुम पाप से रहित हो इस हेतु से हे अनघ वह श्री अगस्त जी के मुख से निकली हुई कथा को हम तुम्हारे आगे सब कथन करते हैं । श्री भगवत् अधिकारी शुद्ध जीवों का लक्षण :—

आस्तिको धर्मशीलश्च शीलवान्वैष्णवः शुचिः ॥

गभीरश्चतुरो धीरः शिष्य इत्यभिधीयते ।

शरीरं वसु विज्ञानं वासः कर्म गुणानमूर् ॥

गुर्वार्थं धारयेद्यस्तु स शिष्यो नैतरः स्मृतः ।

सद्बुद्धिः साधु सेवी समुच्चै चरिततत्त्व बोधाभिलाषी ।

शुश्रूषुस्त्यक्तमानः प्रणि पतन परः प्रश्नकाल प्रतिष्ठः ॥

शान्तो दान्तोऽनसूयो शरणमुपगतः शास्त्र विश्वासशाली ।

शिष्यः प्राप्तः परीक्षां कृत विदमभिमत तत्त्वतः शिक्षणीयः ॥

सुतीक्ष्ण उवाच ।

देवादि देव देवेश कृपासिन्धो जनेश्वर ।

जगद्धाम जगद्वन्धो जगदानन्दकारक ॥४॥

ओ सुतीक्ष्ण जी बोले हे देवों के आदि देव आप सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी हैं अर्थात् सब देवता आपकी आज्ञा को पालन करते हैं महाराज आप कृपा के समुद्र हैं आप संसार से बन्धु के सदृश रक्षा करने वाले हैं महाराज आप संसार को आनन्द कराने वाले हैं । आचार्यवान्पुरुषो वेदेति :—

यस्यदेवे पराभक्तियथा देवे तथा गुरौः ॥

—छान्दोग्य

तस्यैव ते कथिताह्वार्याः प्रकाशन्ते महत्तमनः ।

आचार्यवान् विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥

न मन्यं तुदुष्या सेवेत सर्वदेवमयो गुरुः ।

—भागवत

ब्रह्मरूपे हरस्त्राता हररूपे हरिस्तथा ॥

हरिरूपे गुरुस्त्राता गुरुरूपे न कश्चन ।

—तन्त्रे

योगुरुः सहस्रिः साक्षाद्योहरिः सगुरुः स्वयं ॥

गुरुर्यस्य भवेत्तत्पुस्तस्य तुष्टो हरिः स्वयं ।

दीनबन्धो दयासिन्धो शरणागत वत्सल ।

श्रीरामचन्द्र पादाब्ज रतानां तापनाशनं ॥५॥

महाराज जी जीव आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दुःखों से दुःखी रहते हैं उनकी रक्षा में आप बन्धु के सदृश हैं इस हेतु आप दया के समुद्र हैं महाराज आप शरणागत वत्सल हैं अर्थात् शरण में आये हुये जो जीव तिन के दोष को आप नहीं देखते हैं और जो जीव श्रीसीताराम जी के चरण में रत हैं अर्थात् चरण कमल सेवा में तत्पर हैं अर्थात् पञ्जरस युक्त हैं उनके फलेशों को नाश करने वाले हैं ।

सर्वज्ञ सर्वशस्त्राणां प्रवर्तकप्रकाशक ।

वेद वेदांग मन्त्राणां यन्त्राणांस्वरूपवित् ॥६॥

महाराज आप सर्वज्ञ भूत भविष्य वर्तमान सकल काल के जानने वाले हो सबशास्त्रों को आप प्रवृत्त कराने वाले और प्रकाश कराने वाले हो और वेद

जो चार हैं, अक्ष-यन्त्र-साम-अथर्वण, रूप और वेदाङ्ग, जो छा. शिक्षा कल्पे व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष इत्यादिरूप और मन्त्र और यन्त्र इनके यथार्थ स्वरूप को आप जानने वाले हो यथा,

गुरौ मनुष्यतां बुद्धि मन्त्रे चाक्षर बुद्धितां ।
प्रतिमासु शिष्य बुद्धि कुर्वाणे रौरवं व्रजेत् ॥
ताते गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णुगुरुदेवमहेश्वरः ।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥
ऐसेहि निरुक्त में भी कहा है,
गुह्यं स्वरूपं कारुः स्याद्गु शब्दस्तन्निरोधकम् ।
अन्धकार निरोधत्वाद् गुरित्यभिधीयते ॥

भाष्योक्त, शिक्षा के मन्त्रों के विषय ।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थं माह ।
सचाम्बजो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रु स्वरतोऽपराधात् ॥

(इन्द्र शत्रोर्विवर्धस्य) यहां पर ओकार का उच्चारण उदात्त होना चाहिये था, परन्तु इकार का उच्चारण उदात्त हो गया इसीसे (बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्) इस सूत्र से बहुवाह समास करने पर इन्द्र है शत्रु (बेरी) जिसका ऐसे अर्थ केहोने से उल्टा शत्रु उत्पन्न हुआ, (इन्द्रो वृषाय वज्रमुद्यच्छत) यह वैदिक वचन संगत होता है इस हेतु मन्त्रों में अक्षरों के बुद्धि नहीं करनी चाहिये क्योंकि स्वर बिगड़ने से मनोरथ का नाश हो जाता है ताते मन्त्र के तात्पर्य अर्थ गुप्त है (मन्त्रो वेद विशेष स्याद्देवादीनां च साधने । गुह्यवादेऽपि च पुमानिति मोदिनी) इस कोश के प्रमान से मन्त्र शब्द पुलिङ्ग होकर वेद भेद और गुह्यवाद में विराजते हैं जिसे साधन भी वैयाकरण से किया है यथा, मन्त्र्यते, मन्त्रणं वा, इस विग्रह से (मन्त्रिगुप्तभाषणे) इस चुरादिगण की धातु से (घञ्) प्रत्यय करके मन्त्र शब्द सिद्ध होता है उसीसे (पट्कणों भिद्यते मन्त्रः) इस हेतु वैदिक मन्त्रों को गुप्त रीति से प्रकाश करना चाहिये तात्पर्य के यथार्थ स्वरूप जानते हैं ।

संसार सागरात्यन्त भीतानां भयनाशक ।

जाड्यतमोदिनमणे श्रीगुरो शील वारिधेः ॥१॥

महाराज संसाररूप समुद्र से जो जीव डरे है उन के भय को आप नाश करने वाले हो और जड़तारूप अन्धकार तिस के नाश करने के वास्ते आप सूर्य ही, महाराज आप मेरे गुरु हैं कहने का यह भाव है कि मेरे हृदय के अन्धकार को आप दूर करने वाले हो जैसे कि,

गुणशब्द स्तब्धकारः स्यादगुणशब्द स्तब्धविरोधको ।
अन्धकार विरोधित्वादगुणरित्वमिधीयते ॥

गुणशब्द है सो अन्धकार वाचक है और गुणशब्द उसका विरोधि है अर्थात् प्रकाश वाचक है गुणों के साथ यही तत्पुरुष करने से गुरु इस पद की सिद्धि होती है, जैसे कि, गोः कः गुरुः तात्पर्य है कि अनादि जो अविद्या है सो अन्धकाररूप है उन को निवारण करके श्री सीताराम जी के चरण कमल में प्रीति कराने वाले जो ज्ञान अर्थात् ब्रह्म विद्या सो प्रकाशरूप है इस कारण अनादि अविद्या को निवारण करके आप मेरे को श्रीसीतारामजी के चरण कमल की सेवा में प्राप्त कराने वाले ही श्री सीतारामजी के चरण कमल की प्राप्ति है सोई संसार से निवृत्तिरूप भक्ति पद तथा मोक्ष पद वाच्य है जो कि भगवान् वेद व्यासजी ने कहा भी है,

सर्वे महा भागवतो परोक्षिणेनापवर्गाण्यमदभ्य बुद्धिः ।

ज्ञानेन वैयासकिशद्वितेन भेजे स्वमेन्द्र ध्वज पाद मूलम् ॥

वह जो शुद्ध बुद्धि वाले महा भागवत ध्यापरिक्षित महाराज है सो श्रीशुक देवजी का उपदेश रूप उस ज्ञान करके अपवर्ग नाम संसार से निवृत्ति रूप मोक्ष उस मोक्ष पद वाच्य जो श्रीसीतारामजी के चरण कमल तिसकी सेवन करते हुये है गुरो यह कहने का भाव हुआ । हे महाराज आप शोल के समुद्र हो, किस प्रकार आचार्य को शरण में जाकर कहे यथा,

ब्राहि ब्राहि महादेवो रक्ष मां शरणागतम् ।

त्वदविनान्यो दयासिन्धो मम रक्षाकरो नहि ॥

त्वत्तः कमलपत्राक्ष श्रुतं रामायणं मया ।

यस्य श्रवण मन्त्रेण सफलं जन्म जायते ॥ ८ ॥

हे कमल के दल सदृश नेत्र वाले आप से हमने श्रीरामायण जी की कथा श्रवण किया जिस श्रीरामायण कथा के श्रवण मात्र से जन्म सफल हो जाता है ।

माहात्म्यं वद मे स्वामिन् चित्रकूटस्य विस्तरं ।

कथं सर्व मुनि श्रेष्ठा सेवते सिद्धि कांक्षया ॥ ९ ॥

हे स्वामिन श्रीचित्रकूट के माहात्म्य का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये मुनियों में जो प्रधान हैं सो सिद्धि की आकांक्षा से गिरिराज को किस प्रकार से सेवन करते हैं ।

अ/भगस्त्योवाच ।

चित्रकूटं महातीर्थं परं निर्वाण कारकम् ।

तीर्थानां परमं तीर्थम्मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ॥ १० ॥

धी अगस्त जी वाले धी विचकूट महातीर्थ है उत्तम मोक्ष पद को देने वाले हैं तोर्थों में उत्तम तीर्थ है मङ्गलों में परम मङ्गल है ।

पीठानाम्परमपीठं पर्वतानां च पर्वतम् ।

धर्माभिलाषबुद्धिनां धर्मराशिकरम्पत्म् ॥ ११ ॥

पाठों में उत्तम पीठ है पर्वतों में उत्तम पर्वत है धर्म की अभिलाष में जिन की बुद्धि है उनकी धर्म की राशि करने वाला है ।

अर्थिनामर्थदातारंपरमार्थप्रकाशकम् ।

कामिनां कामदातारं मुमुक्षूणां च मोक्षदम् ॥ १२ ॥

अर्थियों को अर्थ देने वाले हैं परमार्थ को प्रकाश करने वाले हैं कामियों को काम देने वाले हैं मुमुक्षु को मोक्ष देने वाले हैं ।

सर्वत्र श्रूयते तस्य महिमा द्विजसत्तम ।

तस्मिंश्चपीणां संचारच तपश्चर्यां प्रकुर्वते ॥ १३ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! उस गिरिराज की महिमा सब जगह सुनी जाती है उस गिरिराज के विषय ऋषियों के समूह तप करते हैं ।

सप्तरात्रं व्रतं केचिद्दशरात्रं व्रतं तथा ।

द्वादशाहं व्रतञ्चैव मासिकं व्रतमुत्तमम् ॥ १४ ॥

कोई ऋषि सात रात्रि का व्रत और कोई दस रात्रि का व्रत करते हैं और कोई बारह रात्रि का व्रत करते हैं और कोई ऋषि उत्तम एक मास का व्रत करते हैं ।

मूलाहारं प्रकुर्वन्ति फलाहारं तथैव च ।

वायु भोजन संयुक्ता दधि भोजन तत्पराः ॥ १५ ॥

कोई ऋषि मूल का आहार करते हैं कोई ऋषि फलाहार करते हैं कोई ऋषि वायु का आहार करते हैं कोई ऋषि दधि का आहार करके भजन करते हैं ।

गोमूत्रपान निरताः शाक भोजन तत्पराः ।

व्रतं चान्द्रायणं नाम सर्वपातक नाशनम् ॥ १६ ॥

कोई ऋषि गो मूत्र पान में रत हैं कोई ऋषि शाक भोजन में तत्पर हैं कोई महात्मा सम्पूर्ण पापों के नाश करने वाला चान्द्रायण व्रत करते हैं ।

भक्षणं शुष्क पर्णानां प्रकुर्वन्ति मुनीश्वराः ।

विविधानि च कृच्छ्राणि कुर्वन्ति हरि काम्यया ॥१७॥

कोई मुनिश्वर सूखे पत्ते को भक्षण करते हैं इस प्रकार से भगवत प्राणि के लिये अनेकों कृच्छ्र चाण्ड्रायणादि प्रत करते हैं ।

एवं सर्वे द्विज श्रेष्ठाश्चातुर्वर्ण्येन संयुता ।

तपश्चर्याम्प्रकुर्वन्ति ह्युभयत्र मुदावहाम् ॥ १८ ॥

इस प्रकार द्विज श्रेष्ठ चारों वर्ण हैं सो दोनों लोक में अर्थात् लोक, तथा भगवद् लोक में आनन्द करने वाली तपश्चर्या करते हैं (यहां द्विज संज्ञा श्री वैष्णव की है) प्रश्नः—शूद्र के लिये तप निषेध है काहे कि श्री रघुनन्दन जू के राज के समय नीच एक शूद्र तपस्या करता रहा तेहि अनोति से एक ब्राह्मण का बालक मरि गयो सो प्रभु निकट आय भारत से पुकारे, नारद ज ने कहा कि एक शूद्र तपस्या करता है ताते विप्र के बाल को अकाल मृत्यु भयो है सो प्रभु वह शूद्र का शीश काट डाले । यहां शूद्र का तप कथन किया सो यहां परस्पर विरोध क्यों है, उत्तरः—यह सब श्री वैष्णव हैं भगवत शरणागत मात्र में द्विज संज्ञा को प्राप्त हो जाते हैं ताते सर्व कर्तव्य अधिकार है किसी वैदिक धर्म से निषेध नहीं है यथा तत्त्वसारेः—यथा कांचनतां याति कास्यां रस विधानतः । तथा दीक्षा विधानेन द्वितत्त्वं जायते वृणां ॥ अवश्यं वैष्णवी दीक्षां प्रविशेत्सर्वयत्नतः ॥ दीक्षितस्य विशेषेण सिद्धिर्नात्र संशयः । इत्यादि वाक्यों से द्वितत्त्व होता स्पष्ट है । जब मन्त्र को आराधना करते हैं तब प्रभु के रूप ही हो जाते हैं । यथा, नारद भक्ति सूत्र—ॐ नास्ति तेषु जाति विद्या रूप कुल धन क्रियादि भेदः ॥ न तस्य जन्म कर्माभ्यां न वर्णाश्रम जातिभिः । सज्जतेस्मिन्नाहं भावो देहैव सहरेः प्रियः ॥ यथा, नारदीये वामदेव रुक्माङ्गदं प्रतिः—श्वपजोपि महीपाल विष्णो भंकाद्विजाधिकः । काशीखण्ड, ब्राह्मणः क्षत्रिया वैशाः शुद्रोवा यदिचेतरः । विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥ यदि वैष्णव को शुद्रो माने वा जाने तो महा अपराध कथन किया है । इतिहाससमुच्चये—शूद्रं वा भगवद्भक्तं निपादं श्वपचं तथा । वीक्षते जाति समान्यात् सा याति नरकं ध्रुवम् ॥ पद्म पुराणे माघ माहात्म्ये—श्वपाक मिव नैक्षेत लोके विप्रम् वैष्णवम् ॥ वैष्णवो वर्णं बाह्योप पुनाति भुवन त्रयम् । न शूद्रा भगवद्भक्तास्तेतु भागवता मताः । सर्व वर्णेषु ते शूद्रा येन भक्ता जनार्दने । सर्वत्र श्रुति स्मृति पुराणों में प्रसिद्ध है ।

विस्तृतानां शिलानां च छाया प्रस्रवणानि च ।

विपुलानि च रम्याणि विचित्राणि वनानि च ॥१९॥

देवस्थानानि पुण्यानि यत्र वर्तन्ति भूरिशः ।

यज्ञोश्चविविधा कारान् द्विजाः कुर्वन्ति भूरिशः ॥२०॥

जिस जगह में बड़े २ शिला की छाया और भरने वर्तमान है और उसका किनारा बहुत रमणीक है और बहुत शोभाय मान्य है, जहां पर परम पवित्र बहुत से देवों का स्थान है इस प्रकार की भूमि में अनेक प्रकार का बहुत से यज्ञ द्विजाति लोग करते हैं ।

दानं च विविधाकारं दीनान्ध कृपणेषु च ।

यो ददाति द्विज श्रेष्ठ मगुणानति वर्तते ॥२१॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ इस श्री चित्रकूट में जो कोई पुरुष दीन और अन्धे कृपणों को नाना प्रकार का भोजन वस्त्रादि का दान देता है वह पुरुष गुणों को अतिक्रमण कर लेता है अर्थात् त्रिगुण से परे श्री सीताराम जी के पद का अधिकारी हो जाता है ।

स्वधाकरो वषट्कारः स्वाहाकारो नमस्कृया ।

या जनाध्ययनञ्चैव ये कुर्वन्ति द्विजोत्तमम् ॥२२॥

हे द्विजोत्तम स्वधाकार पितृभ्यः स्वधा इत्यादि वषट्कार इन्द्राय वषट् इत्यादि स्वाहाकार अमुकदेवाय स्वाहा इत्यादि और गुरु इत्यादि को नमस्कार और वेदादि पाठ और यज्ञ यह सब जो कोई पुरुष इस क्षेत्र में करते हैं ।

क्षेत्रे ह्यस्मिन्पुण्यतमे ते गच्छन्ति परांगतिम् ।

चित्रकूटं गिरिं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥२३॥

ये पुरुष उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और श्री चित्रकूट पर्वत का दर्शन करके पुनरावृत्ति को नहीं प्राप्त होते ।

तीर्थानि च यथोक्तेन विधिनाहवचरन्ति ये ।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ॥२४॥

न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभि गमनेन यत् ।

तानि ते कथयाम्यत्र सावधानतया शृणु ॥२५॥

जैसा शास्त्र में कहा हुआ विधि के अनुसार जो पुरुष तीर्थों को करते हैं सो अग्निष्टोमादियज्ञों को बहुत से दक्षिणा पूर्वक करने से जो फल होता है वह फल

तीर्थाटन के बराबर नहीं होता सो तीर्थ हम तुम्हारे से कहते हैं सो एकाग्र चित्त से ध्यान करो ।

प्रथम तीर्थराजस्तु प्रयागाख्याः सुप्रवितः ।

काशिक सर्वतीर्थानां धर्म कामार्थ मोक्षदः ॥२६॥

प्रथम सर्व तीर्थों के राजा प्रयाग नाम से प्रसिद्ध हैं पुनः अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को देने वाली काशी जी प्रधान हैं ।

नैमिषं च कुरुक्षेत्रं गंगाद्वारमवन्तिका ।

अयोध्या मथुरा चैव तथा द्वारावती शुभा ॥२७॥

और भी नैमिषारण्य कुरुक्षेत्र श्री हरिद्वार उज्जयिन श्री अयोध्या मथुरा द्वारावती, नाम द्वारका,

सिन्धुः सरस्वती चैव गंगासागर सङ्गमः ।

काशी च त्र्यम्बकश्चैव तथा गोदावरी शुभा ॥२८॥

और भी सिन्धु नदी सरस्वती और गंगा समुद्र का संगम और काशी पुरी तथा त्र्यम्बकनाथ और गोदावरी ॥

कालञ्जरं प्रभासश्च तथा बदरिकाश्रमः ।

महालयस्तथोद्धार क्षेत्रं वै पुरुषोत्तमम् ॥२९॥

गोकर्णो भृगुकक्षश्च भृगुतुङ्गश्च पुष्करम् ।

एवमादीनि तीर्थानि धरार्या हि मतानि मे ॥३०॥

कालञ्जर तथा प्रभाक्षेत्र भृगुक्षेत्र तथा भृगुतुङ्ग पुष्कर राज बदरिकाश्रम ब्रह्माण्डक्षेत्र ओंकारक्षेत्र हरिहरक्षेत्र गोकर्णनाथ इत्यादि पृथिवी तल में हमारे सिद्धान्त से पवित्र क्षेत्र बहुत हैं ।

एतानि मुक्तिदान्येव नात्र कार्याविचारणा ।

भौमानामपि तीर्थानाम्पुण्यत्वे कारणं श्रुत्वा ॥३१॥

यह सब मुक्ति के देने वाले हैं इस विषय में कुछ विचार नहीं करना सुतीक्ष्ण जी ने कहा महाराज पृथिवी और जल सब एक ही सरीखे होते हैं उसमें एक भूमि पवित्र एक जगह का जल पवित्र और एक भूमि एक जगह का जल अपवित्र कैसे होता है यह विषमता कैसे हुई यह सुनकर कांगभुशुण्डिजी बोले पृथिवी विशेष जल विशेष जो तीर्थ उसके पवित्रता में जो कारण है सो सुनो ।

यथा शरीरस्योद्देशात्केचिन्मेधपतमाः स्मृताः ।

तथा पृथिव्याश्चोद्देशात्केचन पुण्यतमाः स्मृताः ॥३२॥

जिस प्रकार से पञ्चभौतिक शरीर याचन प्राणी मात्र का सब एक ही है परन्तु शरीर ही के उद्देश्य से ग्राह्य जलव्यादि पवित्र कहे जाते हैं उस प्रकार से पृथिवी जल मात्र सब एक ही है परन्तु तीर्थ स्थल पावन कहे जाते हैं ।

प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसा ।

महर्षीणां प्रभावाच्च भौमं तीर्थवरं स्मृतम् ॥३३॥

कुछ पृथिवी के अद्भुत प्रभाव से कुछ जल के अद्भुत प्रभाव से और महर्षियों के प्रभाव से पृथिवी में तीर्थ श्रेष्ठ कहे जाते हैं ।

श्री अगस्त्य उवाच ।

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघ ।

येषु सम्यग्ग्नरः स्नात्वा संयाति परमाङ्गतिम् ॥३४॥

श्री अगस्त्य जू बोले:—हे अनघ ! हम मानस तीर्थ तुमसे वर्णन करते हैं सुनो वह कैसा मानस तीर्थ है कि जिस मानस तीर्थ में अच्छे प्रकार स्नान करने से पुण्य उत्तम गति को प्राप्त होता है ।

सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।

सर्वभूत दया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ॥३५॥

सत्य तीर्थ है दया तीर्थ है, इन्द्रियों का जीतना यह भी तीर्थ है सम्पूर्ण प्राणियों में दया करना यह भी तीर्थ है हृदय में कोमलता रखना यह भी तीर्थ है ।

ब्रह्मचर्यम्परं तीर्थं तीर्थं चक्रतुमुच्यते ।

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तीर्थम्विज्ञानमेव च ॥३६॥

ब्रह्मचर्य यह उत्तम तीर्थ है यज्ञ करना यह भी तीर्थ कहा जाता है कर्तव्य अकर्तव्य का विचार रूप ज्ञान शीत उष्ण रूप सुख दुःख के हेतु के सहन में जो धृति नाम धैर्य है यह भी तीर्थ है और यह जीव कहां से आता है और कहां जाता है और कहां स्थित है मैं कौन हूं संसार क्या पदार्थ है इत्यादि रूप जो विज्ञान है यह भी तीर्थ है ।

तीर्थाणामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ।

न जलाप्लुत देहस्य स्नानमित्यभिधीयते ॥३७॥

और मन को उत्तम जो शुद्ध सोई तीर्थों में उत्तम तीर्थ है और कुछ जल में शरीर के भी जाने से ही स्नान नहीं कहा जाता ।

न शरीर मल त्यागान्नरो भवति निर्मलः ।

मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यत्यन्त निर्मलः ॥३८॥

केवल शरीर मात्र के मल के त्याग करने से पुरुष निर्मल नहीं होता किन्तु मन के मल के त्याग करने से पुरुष अत्यन्त निर्मल हो जाता है ।

यतशोऽथ जलैर्धौतिः सुराभाण्डमिवा शुचिः ।

दानमिज्या तपः शौचं तीर्थ स्नानं श्रुतं तथा ॥३९॥

जिस प्रकार मद्य के पात्र को सहस्र बार भी धोने से अशुद्ध ही रहता है उसी प्रकार सहस्र बार जल करके शुद्ध होने पर भी अशुद्ध ही रहता है । दान यज्ञ तप शुद्धि तीर्थ का स्नान तथा शास्त्राध्ययन ।

सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि चित्तं मुनिर्मलम् ।

न गृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः ॥४०॥

यह सब तब ही पवित्र करते हैं जब मन निर्मल हो जाता है और इन्द्रियों को निग्रह करने वाला पुरुष जहां पर निवास करता है ।

तत्र तत्र कुरुक्षेत्रप्रयागं नैमिषं तथा ।

भगवद्ध्यान सम्पूते दया दान समन्विते ॥४१॥

वहां वहां पर कुरुक्षेत्र प्रयागराज नैमिषारण्य यह सब तीर्थ निवास करते हैं श्रीभगवान के ध्यान काके पवित्र और दया दान करके युक्त ।

य स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ।

एतत्ते कथितं तात मानसं तीर्थं लक्षणम् ॥४२॥

इस प्रकार के मानस तीर्थ में जो स्नान करते हैं वह पुरुष उत्तम गति को प्राप्त होते हैं हे तात ! यह मानस तीर्थ का लक्षण हमने आप से कथन किया ।

प्रथमममानसे स्नातः पश्चाद्भौमेषु नित्यशः ।

साङ्गफलमवाप्नोति कविभिः परिकीर्तितम् ॥४३॥

जो पुरुष प्रथम मानस तीर्थ में स्नान कर लेते हैं पीछे भूमि के तीर्थों में स्नान करते हैं वह पुरुष महात्माओं के कहे हुये समग्र फल को प्राप्त होते हैं ।

प्रथमम्मानसे तीर्थे पश्चाद्भीमेषु नित्यशः ।

उभयेष्वपि यः स्नाति स याति परमां गतिम् ॥४४॥

जो पुरुष प्रथम मानस तीर्थ में पीछे भूमी के तीर्थ में यह दो प्रकार के तीर्थ में जो कोई स्नान करते हैं वह पुरुष उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ।

अदाम्भिको निरालम्बो लज्जाहारो जितेन्द्रियः ।

विमुक्तः सर्व पापैर्यः स तीर्थ फलमश्नुते ॥४५॥

जो पुरुष पाषण्ड से रहित है किसी प्रकार का अन्याय युक्त अलम्ब नहीं है धोड़ा आहार करता हो इन्द्रियों को जीतने वाला हो वह पुरुष सम्पूर्ण पाप से छुटा हुआ तीर्थ के समग्र फल को प्राप्त होता है ।

अक्रोधिनोऽमलमतिः सत्यवादि दृढव्रतः ।

आत्मोपमश्च भूतेषु सतीर्थ—फलमश्नुते ॥४६॥

क्रोध से रहित हो निर्मल बुद्धि वाला हो सत्य बोलने वाला हो प्रतिज्ञा में दृढ़ होय सब प्राणीमात्र में अपने आत्मा के सदृश देखता हो ऐसा पुरुष तीर्थ के समग्र फल को प्राप्त होते हैं ।

भगवद्भ्यान संयुक्तो ज्ञान वैराग्य संयुतः ।

यत्रैव च वसेद्भीमान् तत्तीर्थं योजनत्रयम् ॥ ४७ ॥

श्री सोताराम जी के ध्यान करके संयुक्त और ज्ञान वैराग्य करके संयुक्त ऐसे बुद्धिमान पुरुष जहां निवास करते हैं वह भूमि तीन योजन पर्यन्त तीर्थ है ।

आगत्याश्चर्यपितृन् स्वान यथोक्त फलभाग्भवेत् ।

अकालेऽप्यथवा काले तीर्थे श्राद्धं च तर्पणम् ॥ ४८ ॥

तीर्थ में आय करके समय हो अथवा न होय अपने पितरों का पूजन करे श्राद्ध करे तर्पण करे वह पुरुष यथार्थ फल भागी होता है ।

अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ।

श्रद्धायुक्तो नरो धीमान् तीर्थ यात्रां करोति यः ॥ ४९ ॥

श्राद्ध और तर्पण बहुत शीघ्रता से करे जिसमें विघ्न न होने पावे और श्रद्धा करके युक्त जो पुरुष तीर्थ यात्रा को करते हैं ।

श्राद्धं फलमवाप्नोति तीर्थे यात्राश्रितं नरः ।

अन्यस्थाने कृतम्पापं तीर्थम्प्राप्य विनश्यति ॥ ५० ॥

भये कि कहां पर उसका स्थान है ॥ राजवल्कल जी बोले, भुवट्टी और नाशिका की ओर सन्धि है सो इसका स्थान है और स्वर्ग और वैकुण्ठ लोक की ओर सन्धि है सो इसका स्थान है और इसी सन्धि की सन्ध्या को ब्रह्मदेता लोग उपासना करते हैं ॥ सन्धि और अविमुक्त दोनों पर्याय वाचक हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि अविमुक्त स्थान में श्री सीताराम जी की उपासना सब से श्रेष्ठ है अर्थात् नित्यस्वरूप अवोध्या में यथा रुद्र यामले :—

विष्णोः पादमर्चतिकां गुणयती मध्ये च कांचीपुरी,

नाभी द्वारयती तथा च हृदये मायापुरी संभुदां ।

ग्रीवा मूलमुदाहरति मधुरां नाशाग्र चाराणशो,

मेतद्ब्रह्म पदं घदन्ति मुनिगोऽयोध्यापुरी मस्तकं ॥

यथाऽविमुक्ते निर्वाणं न तथाऽन्यत्र कुत्रचित् ।

चित्रकूटं गिरिं दृष्ट्वा सर्व तीर्थ फलं लभेत् ॥ ५८ ॥

जिस प्रकार अविमुक्त स्थान में उपासना करने से संसार से निवृत्ति होती है उस प्रकार और किसी वाह्य साधन तीर्थ व्रातादिक से नहीं और चित्रकूट गिरिराज के दर्शन करने से सम्पूर्ण तीर्थों का फल हो जाता है ॥

चित्रकूट समं नास्ति तीर्थम्ब्रह्माण्ड—गोलके ।

यत्र श्रीरामचन्द्रोऽसौ सीतया सहितः सुधी ॥ ६० ॥

श्री चित्रकूट के समान तीर्थ कोई भी ब्रह्माण्ड मात्र में नहीं है कि जिस श्री चित्रकूट में श्री सीता जी के सहित श्रीरामचन्द्र जी हैं सो यह भाव अत्यन्त शुद्ध है आचार्य के द्वारा जानने योग्य है ॥

विमलादि सखी युक्तो अणिमादि विभूतिभिः ।

सप्तावरण संयुक्तो मन्दिरे रत्न भूषिते ॥ ६१ ॥

सर्वं तस्यान्तरालेऽसौ विहारं कुरुते सदा ।

विमलादि सखियों करके संयुक्त और अणिमा महिमा, गरिमा, लघिमा, इत्यादि अष्ट सिद्धिओं के सहित जो सात आवरणों से युक्त सम्पूर्ण रत्नों से भूषित ऐसा जो श्री चित्रकूट पर्वत यथा अगस्त्य संहिता, अ० १० विमलात्कर्षणी ज्ञाना क्रिया योगाभ्य इत्यपि । नामानि प्रहर्षणी सत्याभ्यामीशानायै दलांतरे । पूर्वार्दितोऽनुग्रहायै प्रणमामि तदन्तरे ॥ के भीतर में मन्दिर उस मन्दिर में सम्पूर्ण विहार सदा काल करते हैं ॥ विमलादि शक्तियों के पूर्वादि दिशों में अष्टदल कमलके अन्दर

में जानेंगे । अनुवहा को कणिका के मध्य में श्री विमला १ उत्कर्षणी २ ज्ञाना ३ क्रिया ४ योगा ५ प्रवृध्य ६ सत्या ७ ईशाना ८ इस विधि को विस्तार के सहित गुरु के द्वारा जानेंगे ॥

तीर्थाध्यायमिदं श्रुत्वा नरो नियत मानसः ॥ ६२ ॥

एकाम चित्त करके मनुष्य है सो तीर्थ के माहात्म्य के इस अध्याय को धवन करे ॥

श्रावयित्वा द्विजाश्चापि श्रद्धा भक्ति समन्वितान् ।

क्षत्रियान् धर्मनिरतान् वैश्यान् शूद्रांस्तथैव च ॥ ६३ ॥

और यदि श्रद्धा और भक्ति वाले ब्राह्मणों को सुनावे तथा धर्म में तत्पर हुये क्षत्रियों को सुनावे तथा धर्मात्मा जो वैश्य और शूद्रों को सुनावे ॥

द्विजो वेदान्त वक्ता स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।

वैश्यो धन समृद्धः स्याच्छूद्रः पापात्प्रमुच्यते ॥ ६४ ॥

जो ब्राह्मण है सो वेदान्त का कथन करने वाला हो जाय अर्थात् श्रीसोता-रामजू के यथार्थ तत्त्व को जाने वाला हो जाय और क्षत्रिय है सो युद्ध में विजय करने वाला हो जाय और वैश्य है सो बहुत धनवान हो जाय और शूद्र है सो सम्पूर्ण पापों से रहित होकर शुद्ध हो जाय ।

श्रोतव्यम्परयाभक्त्या भक्ति मुक्ति समृद्धये ।

जप्तव्यमिदमाख्यानं सर्व काले विशेषतः ॥ ६५ ॥

भोग और मोक्ष की प्राप्ति के वास्ते पुरुष है सो बड़े आदर पूर्वक स्नेह संयुक्त इस माहात्म्य को श्रवन करे और सर्व काल में विशेष रूप से इस कथा को स्मरण करता रहे ।

श्राद्ध काले सदा जाप्यमिदमाख्यानमुत्तमं ।

द्विजानां भुज्यमानानां मध्ये पाठं करोति चेत् ॥ ६६ ॥

इस परम पवित्र कथा को श्राद्ध काल में सदा स्मरण करता रहे और यदि ब्राह्मण भोजन करने को बैठा हो और पंक्ति के मध्य में पाठ करें तो ।

पुण्यमष्टगुणं तस्य गेहे लक्ष्मीः सदा वसेत् ।

अलक्ष्मीर्नाशमायाति पुण्यं तस्य विवर्धते ॥ ६७ ॥

उस पुरुष के गृह में सदा काल लक्ष्मी निवास करती है और उनके पुण्य

को आठ गुणा वृद्धि होती है और उस पुरुष की विपत्ति नाश हो जाती है और
उसके पुण्य की विशेष वृद्धि होती है।

सम्प्राप्ते चासरे विष्णो रात्रौ जागरणान्वितः।

श्रुत्वाऽख्यानमिदम्पुण्यम्बैकुण्ठे वसतिं लभेत् ॥ ६८ ॥

एकादशी का दिन प्राप्त होने पर व्रत करके रात्रि में जागरण करता हुआ
पुरुष इस पवित्र कथा को श्रवण करे तो बैकुण्ठ लोक में निवास को प्राप्त होय।

माहात्म्यमेतत्कथितंपुरातनं, बाहमीकि गीतं सुखदं सुपुण्यदम्।

शृण्वन्ति ये वै कथयन्ति भक्त्या गच्छन्ति ते रामपद परं तत् ॥

यह श्रीवाल्मीकि भगवान् का कहा हुआ पुण्य को देने वाली सुख को देने
वाली प्राचीन जो यह माहात्म्य तिस को हमने कथन किया भक्ति करके संयुक्त जो
पुरुष श्रवण करता है अथवा कथन करता है वह पुरुष सर्वोपरि जो श्री सीताराम जू
का स्थान तिसको प्राप्त होते हैं।

इति श्रीबृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीये

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी

शरण कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा

टीका तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ १ ॥

इति श्रीबृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीये

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी

शरण कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा

टीका तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ १ ॥

इति श्रीबृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीये

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी

शरण कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा

टीका तृतीयोऽध्यायः ॥

इति श्रीबृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीये

चतुर्थोऽध्यायः।

श्रीसुतीक्ष्ण उवाच ।

कथं श्रीराजराजोऽसौ सप्तावरणं शोभिते ।

जानक्या सहितः श्रीमान् मन्दिरे रत्न भूषिते ॥१॥

श्रीसुतीक्ष्ण जी बोले महाराजा राजाओं के महाराज अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वासुदेव, महानारायणादि का स्वामी ऐसे जो श्रीमान रामचन्द्र जी श्रीजनक नन्दिनिज के सहित किस प्रकार से सात आवर्णों से शोभायमान नाना प्रकार के रत्नों से भूषित जो मन्दिर उस मन्दिर में ।

अभ्यन्तरे पर्वतस्य विहारं कुरुते सदा ।

एतद्विस्तरतो ब्रूहि संसारार्णवतारक ॥ २ ॥

पर्वत के भीतर में सदा काल विहार करते हैं संसार रूप समुद्र से तारने वाले श्री गुरु महाराज ! इस कथा को विस्तार पूर्वक कहिये ।

श्रीअगस्त्य उवाच ।

शृण्व तात प्रवक्ष्यामि विहारम्परमाद्भुतम् ।

कोटि कन्दर्प लावण्यमूर्ते रामस्य धीमतः ॥ ३ ॥

हे तात कोटि काम देव की सुन्दरता के लजावनेवाले मूर्ति नाम दिव्य विग्रह जिनकी ऐसे जो बुद्धादि को प्रकाश करने वाले श्रीसीतारामजी का आश्चर्यमय विहार है उसको हम वर्णन करेंगे सो तुम श्रवण करो ।

यथा० रा० श्याम शरीर सुभाइ सुहावन । शोभा कोटि मनोज लजावन ॥

यावक युतपद कमल सुहाये । मुनि मन मधुप रहत जहां छाये ॥

पीत पुनीत मनोहर धोती । हरत बाल रवि दामिन ज्योती ॥

कल किंकिण कटि सूत्र मनोहर । बाहु विशाल विभूषण सुन्दर ॥

पीत जनेउ महा छवि देई । कर मुद्रिका चोर चित लेई ॥

सोह व्याह साज सब साजे । उर आयत अति भूषण साजे ॥

पीत उपरना काखां सोती । दुह अचरान लगे मणि मोती ॥

नयन कमल कर कुण्डल काना । बदन सकल सौन्दर्य विधाना ॥

सुन्दर भृकुटी मनोहर नासा । भालतिलक सचि रुचिर निवासा ॥

सोहत मोर मनोहर माथे । मंगलमय मुका मणि गाथे ॥

इति ध्यानम् ।

सन्तानक वनं नाम पर्वत मध्य संस्थितं ।

मध्येसरोवरं तत्र विधिना निर्मितं पुरा ॥ ४ ॥

पर्वत के मध्य भाग में सन्तानक नाम का वन है उस वन के बीच मध्य में
सृष्टि के प्रथमहि ब्रह्मा करके निर्माण किया हुआ सरोवर है ॥४॥

सरोवरादुत्तरस्यां दिशि माणिक्य भूषितम् ।

मन्दिरम्बर्तते श्रीमद्विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ ५ ॥

सरोवर के उत्तर दिशा में विश्वकर्मा करके निर्माण किया हुआ मणियों करके
भूषित बहुत शोभा युक्त एक मन्दिर है ॥५॥

इन्द्रनील महानील पद्म रागादि निर्मितम् ।

चतुर्द्वार समायुक्तं नाना शिल्पोपशोभितम् ॥ ६ ॥

इन्द्र नीलमणि महा नीलमणि आदिक रत्नों से निर्माण किया हुआ जिस में
चार बड़े दरवाजे हैं और अनेक प्रकार का चित्र विचित्र तस्वीर आदिक शिल्प कर्मों
से शोभित है ॥६॥

द्वाःसुविद्रुम देहलया भांतरत्न कपाटकैः ।

कपाटैः संयुतं दिव्यै वज्ररत्न समन्वितम् ॥ ७ ॥

दरवाजे में मूगा नाम रत्न विशेष तिसकी चौखट इत्यादि बनाया हुआ प्रकाश-
मान है तथा रत्न जड़ित कपाटों से शोभायमान और दिव्य कपाटों करके संयुक्त है
वज्र सदृश रत्नों से संयुक्त ऐसा बहुत शोभायमान श्री सीताराम जी का विहार
मन्दिर है ॥७॥

शिखरेषु हेमकुम्भैर्मणि-माणिक्य-शोभितैः ।

गुह्यं विचित्रं वैतानैर्मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ ८ ॥

और जो उस मन्दिर के शिखर हैं उस शिखरों के विषय मणि माणिक्य
इत्यादि नाना प्रकार के रत्नों से शोभित है जो सुवर्ण का घट तिस करके भूषित
और जहां तहां सम भूमि में रेशम की डोरी में मुक्ता संयुक्त लटकाये हुये जो तम्बू
इन करके सेवित ॥८॥

हंसपरावत व्रातैर्मयूरैः कोकिलादिभिः ।

चारिका शुक वृद्धैश्च शोभितं कूजितं तथा ॥ ९ ॥

और हंस कपोतों के समूह करके और मयूर तथा कोकिला और तोता मैना
एत्यादि पक्षियों के समूह से शब्दायमान तथा शोभायमान ऐसा जो श्री सीताराम जू
महाराज जी का मन्दिर है ॥९॥

सहस्रस्तम्भ संयुक्तं वज्रभीति विनिर्मितम् ।

तन्मध्ये वेदिकारम्या दिव्यरत्न विनिर्मिता ॥ १० ॥

हज़ारों स्तम्भों करके संयुक्त वज्र के सदृश दिवालों से रचा हुआ ऐसे श्री
सीताराम जू महाराज के विहार का जो मन्दिर है तिस मन्दिर के मध्य में सुन्दर
दिव्य रत्नों से रची हुई वेदी है ॥१०॥

त्रैलोक्य सर्व वस्तूनां सारभूता द्विजोत्तम ।

शोभाश्रया सुवेशानां सर्वरत्न विनिर्मिता ॥११॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ त्रैलोक्य में जो पदार्थ हैं सब का सार भूत वह वेदिका है सब
रत्नों से रची हुई है सुन्दर जो वेश है अर्थात् शृंगार मूर्ति जो श्री कृष्ण हैं तिन की
जो शोभा तिन शोभा मानों आश्रय भूत है ॥११॥

फलरूपामुपेशानां ज्ञानदा ज्ञानिनां तथा ।

निवास रूपा तीर्थानां धातृणां ध्यान सिद्धिदा ॥१२॥

सर्व सौन्दर्य की फल रूपा है ज्ञानियों की ज्ञान देने वाली है अर्थात् जो कोई
पुरुष ज्ञान प्राप्ति का साधन मान करके इनकी उपासना करते हैं उनको अन्तःकरण
शुद्धि के द्वारा ज्ञान नाम अर्थात् जो स्वरूप भगवत्स्वरूप तिन को प्राप्त करने वाली हैं
और सम्पूर्ण तीर्थों का निवास भूता है और जो कोई पुरुष श्री सीताराम को ध्यान
करने वाले हैं उनको ध्यान रूप सिद्धि को देने वाली है ॥१२॥

दुर्निरीक्ष्या दुराराध्या भावनाहीन योगिनाम् ।

स्वप्नभाभिरनन्याभिः प्रकाशन्ती जगन्नयम् ॥ १३ ॥

जो पुरुष भावना से रहित यत्न करने वाले हैं उनको किसी प्रकार से देखने में
नहीं आते और जो पुरुष अन्य किसी साधन द्वारा साक्षात्कार करने की इच्छा करते
हैं उनके भी न प्राप्त होने वाली है ॥१३॥

भावना विहित का भाव यथा० गी० :—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्तिविपश्चितः ।

वेद वादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥

मूर्ख प्राणी जो पुष्पित अर्थात् वेद के रोचक वचन से बढ़कर दूसरा सुख साधन

न कहते हुए वेद के शैलक वचन ही में प्रीति रखते हैं। वही भावना हीन है—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयो व्यवसायिनाम् ॥

इस परमेश्वर के आराधन में निश्चयत्मिक बुद्धि एक ही होती है और काम्य कर्म में तो कामी पुरुषों की बुद्धियाँ भी अनेक भांति को अनेक हैं:—

भोगैश्वर्यं प्रसक्तानां तथापहृत चेतसाम् ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधी न विधीयते ॥

जिन पुरुषों का मन भोगैश्वर्य में आसक्त हो जाता है उनका चित्त एकान्त होने पर भी उनमें परमेश्वर के विषय निश्चयात्मिक बुद्धि नहीं होती ।

श्री भगवानुवाच—प्रतहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थमनोगतान् ।

आत्मान्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

जो पुरुष मनोगत सम्पूर्ण कामों को छोड़ कर अपनी आत्मा ही में मन से सन्तुष्ट होता है स्थितप्रज्ञ आत्मनिष्ठ कहा जाता है ।

दुःखः सनुद्दिग्गमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतराग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ममता, भय, क्रोध से रहित होने से दुःख प्राप्त होने पर चित्त व्याकुल नहीं होता इच्छा भी नहीं करे (स्थित प्रज्ञ कहा जाता है) । यः सर्वत्र ऽनभिस्त्नैहस्तत्तत्प्राप्य शुभाऽशुभम् । नाऽभिनन्दति न द्वेष्टि स्थितप्रज्ञस्तदुच्यते ॥ जो पुरुष संसारादिक के विषय स्नेह रहित के कारण जो २ शुभ अशुभ प्राप्त होवे उनके विषय न तो आनन्द मानता है न द्वेष, उसको ही बुद्धि ब्रह्मनिष्ठ है । यदा संहरते चायं कूर्माऽङ्गानोवसर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ जब योगी पुरुष शब्दादि विषयों से इन्द्रियों को सर्वत्र से खींच लेते हैं जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है उसी भांति करने से उस योगी की प्रज्ञा (बुद्धि) समाधि में स्थिर होती है । यततेह्यापि कीर्तेय पुरुषस्य विपश्चितः—इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मन ॥ हे अर्जुन, विचार और प्रयत्न करने वाले के भी मनको इन्द्रियाँ वहाँ से खींच लेती हैं । तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत्मत्परः ॥ वशेहि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ उन सब इन्द्रियों को विषयों से निवृत्ति करके योगी पुरुष को मैं ही परब्रह्म परमात्मा शेषी हम शेषहु इस भांति परमात्मा के ही दृष्टि करके सर्वकाल रहना चाहिये जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें रहती हैं उसकी बुद्धि निश्चय करके निश्चल होती है । नास्मि बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना । नचाभावयतः शान्तिरशान्तस्यकुतः सुखम् । हे अर्जुन, अजितेन्द्रिय पुरुष की बुद्धि शास्त्र और गुरु के उपदेश से आत्मा परमात्मा विषय स्थिर नहीं होती और उस पुरुष को आत्मज्ञान भी नहीं होता, उसे आत्म-

शान्ति भी नहीं प्राप्त होती अर्थात् भाव नहीं होता उस परम्परा ज्ञान के बिना शान्ति अर्थात् भगवत् प्राप्ति नहीं होती ।

चतुरस्रा चतुर्णां च कोणानां मध्यदेशतः ।

मणिभिर्वद्धसोपानै स्त्रिगुणैः स्त्रिगुणैः क्रमात् ॥१४॥

चार कोणा करके युक्त है और चारों कोणों के मध्य देश में क्रम से चारों दिशा में तीन २ सीढ़ी मणियों करके बनी है ॥१४॥

पूर्वस्यां दिशि वेद्यास्तु सोपानात्काण्डमानतः ।

मन्दारो राजते वृक्षो धामृणां हर्षयन्मनः ॥१५॥

वेदिका के पूर्व दिशा में सीढ़ी से तीन हाथ दूर में ध्यात करने वाले पुरुषों के मन को हर्षित करता हुआ मन्दार नाम का वृक्ष शोभा दे रहा है ॥१५॥

दक्षिणस्यां दिशि तथा सोपानात्काण्डमानतः ।

वर्तते पारिजातोऽयम्पारयन्संसृतेः जनान् ॥१६॥

उसी प्रकार से वेदिका से दक्षिण दिशा में सीढ़ी से तीन हाथ दूर में पुरुषों को मानों संसार रूपी समुद्र से पार उतारता हुआ पारिजात नाम का वृक्ष शोभा दे रहा है ॥१६॥

पश्चिमेदिङ्मुखे तस्यास्तत्प्रमाणास्तथा पुनः ।

सन्तानो राजते वृक्ष सन्तान फल दायकः ॥१७॥

उसी प्रकार से उसके पश्चिम दिशा में तीन हाथ दूर में सन्तान नाम का वृक्ष सन्तति रूप फल को देने वाला विराजमान है ॥१७॥

उत्तरस्यां दिशि तथा मनुष्याणां त्रितापजम् ।

दुःखं हरन् महाराज राजते हरिचन्दनम् ॥१८॥

उसी प्रकार से सीढ़ी से तीन हाथ दूर में उत्तर दिशा में मनुष्यों को वैदिक, दैविक, भौतिक दुःखों को हरण करने वाले सर्व वृक्षों का महाराज हरिचन्दन नाम का वृक्ष विराजमान है ॥१८॥

मध्य देशे वेदिकायाः कल्प वृक्षो द्रुमेश्वरः ।

त्रिदशैः सेव्यमानोऽसौ शोभते स्वरुचापरः ॥१९॥

वेदिका के मध्य भाग में देवतागण जिनको सेवन करते हैं सर्वोत्तम अपने तेज से प्रकाश करता हुआ सर्व वृक्षों का ईश्वर कल्पवृक्ष शोभा दे रहा है ॥१९॥

मन्दिरं योजनमितं व्याप्य सर्वं प्रतिष्ठिता ।

तथा यस्याचला छाया सर्वदा पापहारिणी ॥२०॥

जिस कल्प वृक्ष की अवल छाया है सर्व पापों को नाश करने वाली एक योजन (अर्थात् चार कोस) पर्यन्त जो मन्दिर तिन में व्याप्त होकर प्रतिष्ठित है ॥२०॥

वेदिके परिभागे च बहु विस्तार शोभिते ।

स्थितिं सिंहासनं दिव्यरत्न काञ्चन निर्मितम् ॥२१॥

बहुत विस्तार से शोभायमान वेदिका का जो ऊपर भाग तिस पर दिव्यरत्न और सुवर्ण से रचा हुआ सिंहासन स्थित है ॥२१॥

खचितं नव रत्नेषु इन्द्रनीलादिभिस्तथा ।

दिव्यस्तरण संयुक्तं कान्तं कशिपुभिः शुभैः ॥ २२ ॥

इन्द्रनीलादि नव रत्नों से जटित है जिस में दिव्य विस्तर से युक्त है ऊपर के आच्छादन वस्त्र से शोभायमान है अर्थात् नाना प्रकार फूलों की रचना से युक्त है ॥२२॥

पारिजातादि वृक्षाणां पुष्प वर्षैर्विराजितम् ।

वृष्टि वर्षोघन श्यामः श्रीरामो रस विग्रहः ॥ २३ ॥

और मंदार पारिजात सन्तान हरिचन्दन यह सब वृक्षों के वर्षा करके शोभायमान है और षोडश वर्ष की अवस्था करके संयुक्त मेघ के सदृश श्यामवर्ण और मानों शृङ्गारादि रस के साक्षात् विग्रह है ऐसे श्री राम जी ॥२३॥

तस्योपरि समासीनः सीतया सहितः प्रभुः ।

हार केयूर मुकुट कटि सूत्रादि शोभितः ॥ २४ ॥

करने में न करने में समर्थ तथा हारनाम गले का भूषण केयूर बाहु का भूषण और मुकुट कटि सूत्र आदिक नाना प्रकार के भूषणों करके शोभित ऐसे श्री राम जी हैं सो श्री जानकी देवी जी के सहित उस सिंहासन पर विराजमान हैं ॥२४॥

पीताम्बरधरः स्रग्धी कौस्तुभेन विराजितः ।

वनमाला शोभिताङ्गी मुक्ताहार विभूषितः ॥ २५ ॥

पीताम्बर को धारण किये हुये पुष्पों की माला करके शोभायमान हैं अङ्ग जिनका ऐसे और मुक्ता नाशा मोति तथा गजमोती का हार करके भूषित हैं ऐसे रामजी श्रीकिसोरीजू के सहित सिंहासन पर विराजमान हैं ।

वैजयन्त्याः स्रज्यायुष्टः कोटि कन्दर्प कान्ति भूत् ।

सेव्यमानो लक्ष्मणेन खञ्जचामरशोभितः ॥१६॥

वैजयन्ती की माला करके शोभित कोटि न कामदेव की शोभा को धारण करने वाले अर्थात् लज्जाने वाले श्रीलक्ष्मणजी करके सेवित खञ्ज चामर करके शोभित ऐसे श्रीसीतारामजू सिंहासन पर विराजमान हैं ।

सिंहासने समासीनो ध्यायन्निर्मल चेतसा ।

यावती सुषमालोके विद्यते स चराचरे ॥१७॥

शुद्ध मन से कही हुई शोभाओं से युक्त सिंहासन पर विराजमान श्रीसीतारामजू को ध्यान करे और लोक में जितने चर अचर हैं उनके विषे जो शोभा है ।

तच्छृष्टा जनितां विद्मिध तद्भासा भासितां पुनः ।

क्रमाद् ज्ञेया द्वारपाला विजयादिक षोडशः ॥१८॥

सो सब श्री सीताराम जू की शोभा से उत्पन्न हुई जानो पुनः श्रीसीताराम जू की शोभा दीप्ति दीपित जानो, और क्रम से विजय आदिक सोरह द्वारपालों को जानना चाहिये ।

नियोगकारिणस्तस्य दिव्य मूर्त्तिधराः पराः ।

हार केयूर कटकै मुक्ताहारै विराजिताः ॥१९॥

वह किङ्कुर परम उत्तम दिव्य विग्रह को धारण किये हुये गजमोतिन का हार पहिरे बाहु में भूषण धारण किये हुये नाना प्रकार के रत्नों की माला पहिरे हुये विराजमान है श्रीसीतारामजू की आज्ञा में वर्तमान है ।

सिंहासने समासीनं ब्रह्मेन्द्र यक्ष नायकं ।

जानक्या सहितं रामं ध्यायन्ति रघुनन्दनम् ॥२०॥

और ब्रह्मा इन्द्र नारायण विष्णु महाविष्णु वासुदेव महादेवादिक देवताओं के स्वामी रघुवंश के वृद्धि अर्थात् सप्त प्रकार जीवों के पालन करने वाले श्रीकिसोरी जू के सहित सिंहासन पर विराजमान हुये ऐसे श्रीरामजी को ध्यान कर रहे हैं यही श्री संप्रदाय का चिन्ह है ।

ध्यायेत्क्रमात्ततः सम्यक् वहीन्दु रविमण्डलम् ।

स्वकीयाभिः कलाभिश्च युक्तं षोडश द्वादशैः ॥२१॥

८२

तिन के अनन्तर अच्छे प्रकार कम से अग्रिमण्डल चन्द्रमण्डल सूर्यमण्डल अपनी अपनी जो कला अर्थात् पौडशकला युक्त चन्द्रमण्डल, द्वादशकला युक्त सूर्यमण्डल की ध्यान करना चाहिये ।

अन्तराले पर्वतस्य मन्दिरे रत्नभूषिते ।

सिंहासने समासीनं ध्यायन्ति रघूत्तमम् ॥३२॥

देव

पर्वत के भीतर में रत्नों करके भूषित जो मन्दिर है तिस के मध्य में सिंहासन पर बैठे हुये श्री सीतारामजी को जो कोई जीव ध्यान करते हैं ।

ते पापैः संप्रमुच्यन्ते त्रिविधैर्नात्र संशयः ।

मया ते कथितं सम्पक् मुमुक्षूणां सुमोक्षदम् ॥ ३३॥

जीव

वह जीव कायिक वाचिक मानसिक यह तीन प्रकार का जो पाप है तिससे छूट जाते हैं इसमें संदेह नहीं है यह अच्छी प्रकार से मुमुक्षुओं को भी मोक्ष देनेवाली कथा हमने तुम्हारे से कहा ।

कामिनां कामदातारं भक्ति ज्ञान विवर्द्धनं ।

तापत्रय विनाशाय ध्यानं ते कथितं मया ॥ ३४॥

के
है

सकाम पुरुषों के मनोरथ पूर्ण करने वाला निष्काम जीवों को भक्ति ज्ञानियों के ज्ञान की वृद्धि करने वाला है अर्थात् कर्म, ज्ञान, उपासना, शुद्ध भक्ति के देने वाले हैं, दैहिक दैविक भौतिक यह तीन प्रकार दुःखों को नाश करने के वास्ते यह ध्यान हमने तुम्हारे से कहा ।

ध्यायन्ति ये श्रीरघुवंश वर्धनं सिंहासनासीन मुदार वर्चसम् ।

नगस्य मध्ये सुविशाल मन्दिरे ते देववन्द्या भगवत्प्रियानराः ॥३५॥

पर्वत के मध्य में जो सुन्दर विशाल मन्दिर उस मन्दिर में परम उत्कृष्ट है तेज जिसका ऐसे रघुवंश की वृद्धि करने वाले सिंहासन पर बैठे हुये श्री सीतारामजी को जो कोई जीव ध्यान करते हैं उन जीवों को सब देवता वन्दना करते हैं ।

इत्यार्षे बृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये श्री सीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी-

शरण कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा

टीका चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

सुतीक्ष्ण उवाच ।

मण्डलं विमलादीनां कीदृशसंस्थितम्मुने ।

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि वद सर्वमशेषतः ॥ १ ॥

श्री सुतीक्ष्ण जी बोले हे मननशील विमला आदिक सखियों का मण्डल किस प्रकार से श्री सीताराम जी के समीप में स्थित है हम इस कथा को पुनः श्रवण करने की इच्छा करते हैं इस वृत्तान्त को समग्र कहें ॥१॥

श्री भगस्त्य उवाच ।

स्वाधिकारं वयो ज्ञात्वा ज्ञानिनो भक्तिसंयुताः ।

विहारं रामचन्द्रस्य वर्णयन्ति न संशयः ॥ २ ॥

श्री भगस्त्य जी कहने लगे कि अपने सेवा के अधिकार के योग्य अवस्था को ज्ञान कर के भक्ति करके संयुक्त जो भगवत्स्वरूप के ज्ञाता जीव हैं सो श्री सीताराम जी के विहार को वर्णन करते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥२॥

सिंहासने संस्थितस्य श्री रामस्य महात्मनः ।

विमलादि सखीवृन्दं प्रथमाऽवरणे स्थितं ॥ ३ ॥

सिंहासन पर विराजमान महात्मा अर्थात् जीवात्मा से परे, वासुदेव, महा विष्णु, नारायणादिकों के आत्मा अर्थात् परे परमात्मा श्री सीतारामचन्द्र जी विमलादि सखियों का समूह जो प्रथम आवरण में स्थित है तिनको सुनो ॥३॥

विमला सुप्रभाचैव कान्ताकान्तिमती तथा ।

लक्ष्मणालक्ष्णाभिज्ञा चन्द्रा चन्द्रमती तथा ॥ ४ ॥

प्रथम आवरण में विमला और सुप्रभा कान्ता और कान्तिमती लक्षा और लक्ष्णाभिज्ञा चन्द्रा और चन्द्रमती ॥४॥

रम्या राम प्रियाभिज्ञा ज्ञानाभिज्ञा प्रिया तथा ।

विभूतिदा हृद्धिदा च राम पाद प्रिया तथा ॥ ५ ॥

रम्या और रामप्रिया अभिज्ञा और ज्ञानाभिज्ञा प्रिया विभूतिदा और हृद्धिदा और राम पाद प्रिया ॥५॥

राम रम्या राम रता राम नाम परायणा ।

ज्ञानकी लक्षणाभिज्ञा ज्ञानकी पाद सेविका ॥ ६ ॥

रामरम्या और रामरता और राम नाम परायणा और ज्ञानकी लक्षणाभिज्ञा
और ज्ञानकी पाद सेविका ॥६॥

एवमादि सखी वृन्दम्प्रथमा वरणेस्थितम् ।

काचिद्वादयते वीणाम्मृदङ्गं च तथापरा ॥ ७ ॥

इस प्रकार से विमलादि सखियों का समूह प्रथम आवरण में स्थित है कोई
सखी वीणा नाम वाले बाजा को बजा रही है कोई सखी मृदंग बजाय रही है ॥७॥

काचित्तालं पूरयती काचिद्गानं करोति च ।

काचिन्नृत्यति नृत्यन्तीं हासयन्ति तथापराः ॥ ८ ॥

कोई सखी ताल बजाती है कोई सखी गान करती है कोई सखी नृत्य करती
है कितने एक सखी नृत्य करने वाली सखियों को हसाती हैं ॥८॥

साङ्गीतं नृत्यं कुरुते काचिद्रामा मनोरमा ।

काचिच्छ्रीरामचन्द्रस्य मुखपङ्कजनिःसृतम् ॥ ९ ॥

कोई सखी मन को रमण करवाने वाली संगीत शास्त्रोक्त नृत्य करती है और
कोई सखी श्री सीतारामचन्द्र जी के मुख कमल से निकला हुआ ॥९॥

ताम्बूल चर्वणं वक्त्रे चर्वती ध्यानं तत्परा ।

काचिन्नृत्यपरिश्रान्ता गानं कृत्वा मनोरमम् ॥ १० ॥

ताम्बूल के चर्वण को मुख कमल में चबाती है कोई सखी मन को रमण कराने
वाले गान को करके नृत्य से थकी हुई ध्यान में तत्पर हो रही है ॥१०॥

स्थिता श्रीरामचन्द्रस्य ध्यायन्ती रूपमुत्तमं ।

प्रथमावरणं चैव मयाते परिकीर्तितं ॥ ११ ॥

कोई सखी श्रीराम चन्द्र जी का उत्तम रूप का ध्यान करती हुई स्थित है हे
सुतीक्ष्ण यह प्रथम आवरण हमने तुमसे कथन किया ॥११॥

द्वितीयावरणे नित्याह्निमादि विभूतयः ।

संस्थिता कामरूपं तं ध्यायन्ति दिव्यमूर्तयः ॥ १२ ॥

द्वितीय आवरण में अग्निमा महिमा लघिमा गरिमा इत्यादि जो आठ सिद्धि हैं

यह दिव्य मूर्ति का धारण किये कोटि कामदेव को लजाने वाला रूप है जिनका ऐसे श्रीराम जी को ध्यान करती है ॥१२॥

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।

प्राप्तिः प्रकाममीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः ॥१३॥

अणिमा नाम सूक्ष्म हो जाना महिमा नाम महान् हो जाना गरिमा नाम गुरु हो जाना लघिमा नाम हलका हो जाना प्राप्ति नाम इच्छानुकूल पदार्थों की प्राप्ति हो जाना प्रकाम नाम इच्छा भंग न होना इशित्व नाम स्वामी हो जाना वशित्व नाम लोगों को वशीभूत कर लेना यह आठ प्रकार की सिद्धियाँ हैं ॥१३॥

नव निधि युता नित्या दिव्या भरण मूर्त्तयः ।

ध्यायन्ति जानकीशं तं परमानन्द तत्परा ॥१४॥

यह सब सिद्धि है सो नवनिधियों के सहित परमानन्द में निमग्न हुई दिव्य भूषण को धारण किये हुये श्री सीताराम जी को ध्यान कर रही हैं ॥१४॥

तृतीयावरणे माता वेदानां ध्यानतत्परा ।

गायत्री राजते देवी सर्वाभरण भूषिता ॥१५॥

तृतीय आवरण में वेदों की माता श्री गायत्री देवी सम्पूर्ण आभरणों से भूषित हुई श्री सीताराम जी के ध्यान में तत्पर हुई विराजमान है ॥१५॥

चतुर्वेद समायुक्ता ह्यष्टा दश पुराणकैः ।

मूर्त्तिमद्भिः संयुता च संहितागम सूत्रकैः ॥ १६ ॥

चारों वेदों के सहित और मूर्त्तिमान जो अठारह पुराण तथा संहिता और सूत्र इन सबों के सहित जो गायत्री देवी है सो श्री रामचन्द्र जी का ध्यान करती है और नाना प्रकार के स्तोत्रों के समूह करके स्तुति करती हुई स्थित है ॥१६॥

ध्यायन्ती रामचन्द्रं तं स्तुवन्ती स्तोत्र वृन्दकैः ।

चतुर्धावरणे सर्वे ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ॥ १७ ॥

संस्थिता रामचन्द्रस्य रूपं ध्यायन्ति सुन्दरम् ।

ब्रह्मा शम्भु स्तथादिन्या वसु साध्य मरुद्गणाः ॥ १८ ॥

चतुर्थ आवरण में सम्पूर्ण जितने देवताओं में श्रेष्ठ है, विष्णु, नारायण, वासु-देव ब्रह्मादिक वह सब स्थित हुये श्रीरामचन्द्र जी के सुन्दर रूप को ध्यान कर रहे हैं वह श्रेष्ठ देवता कौन कौन तिस पर कहते हैं ब्रह्मा और शिव के कहने से विष्णु

आदि ईश्वरों का बोधक जानेंगे और आदित्य जो कि अदिति देवी के गर्भ से उत्पन्न हुये तथा समुद्र से उत्पन्न हुये देवता यह यह है " भागवते " विश्वेश्वानर्यमा पूषा-
त्पन्थाऽधस्तवितामगः । धाता विधाता वरुणो मित्रा शक्रउरुकमः ॥ अष्ट वसु
ये हैं" द्रोणः प्राणोऽब्रूवोऽर्कोऽग्निर्दीपो वसुभिर्मावसुः ॥ और द्वादश साध्य ।

शशिवनी मधवा चन्द्रास्मिद्ध गन्धर्व चारणा ।

ध्यायन्ति जानकीवततं चतुर्धावरणे स्थिताः ॥१८॥

और शशिवनीकुमार इन्द्र चन्द्रमा सिद्धिगण गन्धर्व गण चारण लोग यह
सब चतुर्थ आवरण में स्थित हुये श्री रामचन्द्र जी को अहर्निश ध्यान करते हैं ॥१८॥

पंचमावरणे सर्वे वशिष्ठादि मुनीश्वराः ।

दिव्य देहधरा नित्यं ध्यायन्ति रघुनन्दनम् ॥२०॥

पंचम आवरण में सम्पूर्ण वशिष्ठादि मुनीश्वर है सुन्दर दिव्य देह को
धारण किये हुये श्री सीतारामजी को ध्यान करते हैं ।

ब्रह्मचर्यरताः सर्वे विरजाम्बर धारिणः ।

दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः कृताञ्जलिपुटाः स्थिताः ॥२१॥

सब मुनीश्वर ब्रह्मचर्य व्रत में तत्पर हैं पीत वस्त्र को धारण किये हैं शरीर में
दिव्य सुगन्धयुक्त चन्दन पीत श्वेत श्याम ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किये हुये हैं अर्थात्
श्रीसंमप्रदाय धर्म-युक्त हैं । यथा बृहन्नारदीय पुराणे, लस्तपीतपटा रम्या यत्रतिष्ठति-
वैष्णवाः । वैकुण्ठ लोक है जहां पीले, श्वेत वस्त्रों से शोभायमान वैष्णव निवास करते
हैं ।

संहिताभिः स्वकीयाभिस्तन्मुखेदत्तदृष्टयः ।

स्तुवन्तो नीलकण्ठाभं कैशोरं रघुनन्दनम् ॥२२॥

श्री रामजी के सम्मुख दृष्टि किये हुये अपने २ संहिताओं करके नील कमल के
सदृश कान्ति है जिनकी ऐसे श्री रघुवंश की समृद्धि करने वाले किशोर अवस्था वाले
श्री रामजी की स्तुति करते हैं । किशोर अवस्था उज्ज्वल रस के प्रकाशक हैं ॥२२॥

वशिष्ठो वामदेवश्च देवलो गौतमोऽसितः ।

वाल्मीकिरङ्गिरागर्गो गालवश्च्यवनो भृगुः ॥२३॥

वह कौन २ ऋषि हैं इस पर कहते हैं कि वशिष्ठ और वामदेव तथा देवल
और गौतम तथा असित वाल्मीकि और अङ्गिरा तथा गर्ग और गालव, च्यवन और
भृगु ॥२३॥

पुलस्त्यः पुलहो देवो विश्वामित्रोऽथ वामनः ।

शक्तिः पराशरो व्यासो बोधायनोऽथ वै तथा ॥२४॥

पुलस्त्य और पुलह विश्वामित्र और वामन शक्ति और पराशर व्यास और बोधायन ॥२४॥

रैभ्योऽत्रिर्याज्ञवल्क्याऽजो जातुकर्णोऽथसेतवः ।

वाजपेयोऽग्निवेशश्च कौण्डिन्योऽभगवत्परः ॥ २५ ॥

रैभ्यः, अत्रि, याज्ञवल्क्य, अज, जातुकर्ण, सेतु, वाजपेय, अग्निवेश, कौण्डिन्य ये सब श्री सीताराम परायण ऋषि गण हैं ॥२५॥

दुर्वासा च मुनिश्रेष्ठो सुचन्द्रः शुकसारणौ ।

हारीतः पर्वतरश्चन्द्रो भरद्वाजो मृगी सुतः ॥ २६ ॥

मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा, सुचन्द्र, शुक और सारण, हारीत और पर्वत और सोम ऋषि भरद्वाज, शृंग ऋषि ॥२६॥

माण्डव्योलिखितः सभ्यः सुरभ्यः पूति माषकः ।

रौपद्यश्चान्तरिक्षश्च मण्डो माण्डलिको बुधः ॥ २७ ॥

माण्डव्य और लिखित, सभ्य और सुरभ्य तथा पूतिमाष और रौपद्य अन्तरिक्ष तथा मण्ड और मानवान् माण्डलि ॥२७॥

मृकण्डक स्ततो योगी जाबालिर्जीजलिर्मृडः ।

शाण्डिल्यः सौभरिर्भानु रापस्तम्भः कुषारुक ॥ २८ ॥

मृकण्डु और चित्त की वृत्ति को निरोध करने वाले जाबालि और जोड़ली तथा मृड, शाण्डिल्य और सौभरि, भानु और आपस्तम्भ तथा कुषारुक ॥२८॥

सनत्कुमारो दालभ्यो दीर्घचक्षुरुद्दालकः ।

और्वो दीर्घतमा वत्सो वात्स्यायनोऽथ मुद्गलः ॥ २९ ॥

सनत्कुमार, दालभ्य और दीर्घ चक्षु तथा उद्दालक और दीर्घतमा वत्स वात्स्यायन मुद्गल ॥२९॥

मातङ्गो भागुरिर्भर्गो गार्ग्यायणश्च गोमिलः ।

जमदग्नि शतानन्दो जैमिनिर्गलकिञ्जलीः ॥ ३० ॥

मातङ्ग आरि, भागुरि तथा भर्ग माध्यायण, सोमिल, जमदग्नि, शतानन्द,
जैमिनि गलकिञ्जलि ॥३०॥

आसुरिः कणभुक्काणः काशीवो घृतकौशिकः ।

पैठीन शीरोभूतश्च सनारुः सनगः स्वभूः ॥ ३१ ॥

आसुरि कणभुक् काण काशीव घृत कौशिक पैठीन शिरोभूत सनारु सनग
स्वभू ॥३१॥

दध्यङ्गाधर्वणोवैजो वैश्वानरोऽथ कापिलः ।

पञ्चाशिखा परो जासो जासुरी रासुरिर्मरुः ॥ ३२ ॥

दध्यङ्गाधर्वण, वैज, वैश्वनर, कपिल, पंचशिखा, जास, जासुरी, वासुरी,
मरु ॥३२॥

एते मुख्य तमाचार्यः शत संख्या मुनीश्वराः ।

प्रत्येकमुनयो भूयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥

यह सब सैकड़ों मुनीश्वर प्रधान आचार्य हैं पुनः एक एक मुनीश्वरों के
सैकड़ों हजारों मुनि हैं सो ॥३३॥

शिष्य मुख्य तमाः शिष्या कोटिशः कोटिशः पुनः ।

असंख्याताः संयोजनी ध्यायन्ति रघुनन्दनम् ॥ ३४ ॥

प्रधान शिष्य हैं पुनः शिष्यों के भी शिष्य प्रशिष्य करोड़ों संयम नियम से युक्त
हुये श्री सीताराम जी का ध्यान करते हैं ॥३४॥

षष्ठावरणके सर्वा गंगाद्याः सरितः स्थिताः ।

दिव्यरूपधराः सर्वाः दिव्याभरणभूषिताः ॥ ३५ ॥

छठवें आवरण में गंगा आदिक जो नदी हैं वह दिव्य रूप को धारण किये हुये
दिव्य भूषणों करके भूषित हुई स्थित हैं ॥३५॥

जान्हवी यमुना चैव नर्मदा श्रीसरस्वती ।

कावेरी सरिता पुण्या भीमा भीमरथीतथा ॥ ३६ ॥

यह कौन २ नदी हैं सो कहते हैं श्री गङ्गा, भगीरथी जी, यमुना जी, नर्मदा,
सरस्वती, नदियों में परम पवित्र कावेरी भीमा तथा भीमारथी ॥३६॥

वीणा च कृष्ण वीणा च निर्विन्ध्या सूर्य तथा ।

मन्दाकिनी पयोष्णीच सावित्री विरजा तथा ॥ ३७ ॥

वीणा और कृष्ण वीणा निर्विन्ध्या सर्व मन्दाकिनी पयोद्वी सावित्री तथा
विरजा ॥३७॥

कौशिकी चन्द्रभागा च ताम्रपर्णी च गौतमी ।

एतानद्यो महापुण्याः श्रीरामं रस सुन्दरम् ॥ ३८ ॥

कौशिकी, चन्द्रभागा और ताम्रपर्णी और गौतमी यह सब परम पवित्र
मदियाँ हैं सो भृंगार रस तमपूर्ण सुन्दर जो श्री रामजी हैं ॥३८॥

ध्यायन्तो गायमानश्च स्वकीयावरणेस्थितः ।

सप्तमावरणे चैव स्थिता वानर सत्तमा ॥ ३९ ॥

वह श्री सीताराम जी को ध्यान करती हुई गान करती हैं और अपने छठवें
आवरण में स्थित हैं और सातवें आवरण में श्रेष्ठ जो वानर हैं सो स्थित हैं ॥३९॥

दिव्य देह धरा धीराः सुग्रीवादि कपीश्वराः ।

सुग्रीवो हनुमान् नीलो नलश्च पनसस्तथा ॥ ४० ॥

सुग्रीव आदिक कपीश्वर हैं सो युद्ध करने में बड़े धीर दिव्य देह को धारण
किये हुये स्थित हैं वे सब कौन २ हैं सो कहते हैं सुग्रीव च हनुमान् नील नल
पनस ॥४०॥

जाम्बवान्नङ्गदोमैन्दो तथा दधि मुखः कपिः ।

केसरीच सुपेणश्च गन्धमादन एवच ॥ ४१ ॥

जाम्बवान् भङ्गद मैन्द तथा दधि मुख वानर और केसरी सुपेण गन्ध-
मादन ॥४१॥

एते कपीश्वराः सर्वे सप्तमावरणे स्थिताः ।

दिव्य देह धरा धीरा वीरा वीर मनोहरा ॥ ४२ ॥

यह सब बड़े वीर और वीरों के मन को हरण करने वाले युद्ध में बड़े धीर
कपीश्वर लोग सब सप्तमावरण में स्थित हैं ॥४२॥

दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्य गन्धानुलेपनाः ।

दिव्यरत्न विचित्राङ्गा दिव्याभरण भूषिताः ॥ ४३ ॥

दिव्य माला और दिव्य वस्त्र को धारण किये हैं अर्थात् दिव्य पीतादि पुष्प-
तथा पीताम्बर को धारण किये हुये दिव्य सुगन्ध का लेपन किये हुये अर्थात् श्रीयुगल
सरकार के अंगों के अंग रागों से उत्पन्न जो पीत तिलक अर्थात् रामरज तिन का

जैमि

ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक धारण किये हैं अथवा श्री युगल सरकार के शेष जी सुसंधि
द्रव्यों करके तिलक अर्थात् केशर, कस्तूरी, कपूर, गोलोचनादि जो द्रव्य तिसके
ऊर्ध्व पुण्ड्र किये हैं । दिव्य रत्नों के धारण करने से विचित्र अङ्ग है जिन का दिव्य
आभूषण करके भूषित हैं ॥४३॥

रत्न प्रवेक संयुक्त किरीट मुकुटैर्युताः ।

स्वभू

दिव्य हाराङ्गदा कल्प ग्रैवेय निष्क कुण्डलाः ॥ ४४ ॥

श्रेष्ठ रत्नों करके संयुक्त जो किरीट मुकुट तिस करके संयुक्त हुये और दिव्य
हार अङ्गद नाम बाहु के भूषण उसकी शोभा से संयुक्त जो कण्ठ का भूषण और वक्षः
स्थल का आभूषण के सहित कुण्डल को धारण किये हुये ॥४४॥

मरु

यशस्विनो महासत्त्वाः सर्वज्ञा दीर्घ चक्षुषः ।

दर्शनीयाह्लादारच्छा रामसेवन तत्पराः ॥ ४५ ॥

बड़े यशस्वी बड़े बलवान् और सर्वज्ञ पुनः दीर्घदर्शी और बहुत सुन्दर हृदय
से बड़े उदार श्री सीताराम जी के सेवा में तत्पर हैं ॥४५॥

सैव

कामगाः कामरूपाश्च रामानन्दरसोत्सुकाः ।

गौर वर्णा श्याम वर्णा कर्पूराश्चैव चित्रकाः ॥ ४६ ॥

इच्छानुकूल गति वाले इच्छानुकूल रूप को धारण करने वाले श्री सीताराम
जी में जो आनन्द रूप रस तिस में उत्सुक कोई गौरवर्ण कोई श्यामवर्ण कोई
सुवर्ण के सदृश वर्ण वाले कोई आश्चर्य रूप हैं ॥४६॥

हरे

एतेमुख्याः कपीशानां संस्थिता मण्डलेस्वके ।

गणानां गण मुख्यानां कोटिशः कोटिशः पुनः ॥ ४७ ॥

यह सब वानरो में प्रधान हैं सो अपने अपने मण्डल में स्थित हैं पुनः वानर
गणों में प्रधान जो वानरगण हैं वह सब का कोट कोटान हैं ॥४७॥

दि

निर्मितं मण्डलं तत्र योजनं ह्येक विस्तृतम् ।

अखण्डं वतुर्लाकारं पार्वणं शशि सन्निभम् ॥ ४८ ॥

मण्डल एक योजन का विस्तार में है पुनः वह कैसा मण्डल है गोलाकार है
अखण्ड पूर्णमासी के चन्द्रमा के सदृश शोभा युक्त है । गोलाकार होने से उसके
अन्तर सखियाँ निवास करती हैं ताते गोपी भी कही जाती है श्री युगल सरकार
अंगरागी से सेवित हैं ताते रामरज तथा श्रीजानकीरज कहे जाते हैं गोपी चन्दन-
पीत वर्ण वेद रामायण तथा संहिता में प्रसिद्ध हैं ॥४८॥

स

तन्मण्ये जानकी जानिः सखीभि सहितो हरिः ।

सिंहासने राजमानः सर्वेषां पुरतः स्थितः ॥४८॥

तिन के मध्य में श्रीजानकीजू जिनके प्राण है वैसे श्रीरघुनन्दनजू सखियों के सहित भक्तों के क्लेश को हरण करने वाले सम्पूर्ण सखियों के सामने सिंहासन के ऊपर शोभायमान स्थित है ॥४८॥

कारयित्वा राम लीलां विहारं कुरुते सदा ।

एवमावर्ण्युक्तं यो ध्यायन्ति रघूत्तमम् ॥४९॥

इस प्रकार से रासलीला को करके सदा काल विहार करते हैं इस प्रकार आवर्णों करके युक्त जो जीव श्री सीताराम जू के ध्यान करते हैं ॥४९॥

अचलं चित्रकूटं च मनो वाञ्छा फलं लभेत् ।

अस्मिन् क्षेत्रे महापुण्ये धर्मकामार्थ मोक्षदे ॥५०॥

और जो चित्रकूट पर्वत को भी ध्यान करते हैं वह जीव मन की कामनाके प सिद्धि को प्राप्त होता है और अर्थ धर्म काम मोक्ष को देने वाले इस परम पवित्र क्षेत्र में ॥५०॥

विपत्तिर्नाशमग मत्पार्यानां द्विजसत्तम् ।

हे द्विजों में श्रेष्ठ कुन्ती के पुत्रों की अर्थात् पाण्डवों की विपत्ति है सो नाश को प्राप्त हो गई ।

शाण्डिल्य उवाच ।

कथं पार्यस्तपश्चर्या चकार द्विजसत्तम ॥५१॥

एतत्संक्षेपतो ब्रूहि धर्मराज कथानकम् ।

शाण्डिल जी बोले हे पक्षियों में श्रेष्ठ इस श्रीचित्रकूट क्षेत्र में पृथा के पुत्र युधिष्ठिर ने किस प्रकार से तप को करते भये । इस धर्मराज के कथा के समारम्भ को संक्षेप से कहो ॥५१॥

भुशुण्डिरुवाच ।

कुरुभिर्हृतराजस्तु पार्यो भ्रातृ समन्वितः ॥५२॥

श्रीभुशुण्डिजी बोले, जिस समय कुरु नाम दुर्योधनादिकोंने छल से राज्य को हरण कर लिया तब युधिष्ठिर ने अपने भ्राताओं के सहित ॥५२॥

धौम्येन गुरुणा मुक्तोः कुन्त्या द्रुपद कन्यया ।

चित्रकूटे शुभं क्षेत्रे श्रीरामपद भूषिते ॥ ५४ ॥

और धौम्य नाम के जो गुरु हैं उनके सहित और माता कुन्ती तथा पत्नी द्रौपदी के सहित श्री सीताराम जी के चरणों करके भूषित सुन्दर परम पवित्र चित्रकूट क्षेत्र में ॥५४॥

तपश्चचार विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

स्नात्वा मन्दाकिनी नीरे प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥५५॥

धर्मराज युधिष्ठिर महाराज विधि पूर्वक तप करते भये प्रथम श्रीमन्दाकिनी जी के जल में स्नान करके इसके अनन्तर प्रदक्षिणा करते भये ॥५५॥

दानं ददौ स विधि वच्छ्री कृष्ण प्रीति हेतुकम् ।

तीर्थराज प्रभावेण स्नानदानानुकूलतः ॥५६॥

यह श्रीयुधिष्ठिर महाराज हैं सो श्रीकृष्णजी के विषे स्नेह की वृद्धि के निमित्त विधि पूर्वक दान देते भये और स्नान दान के अनुकूल तीर्थराज श्रीचित्रकूट के प्रभाव से ॥५६॥

विपत्तिर्नाशमगमत्तस्य राज्ञो महात्मनः ।

सर्वे सपत्नाः संशीणा भारते जयमाप्नुवान् ॥५७॥

उस महात्मा राजा युधिष्ठिर जी की विपत्ति है सो नाश को प्राप्त होगई सम्पूर्ण शत्रु हैं सो नाश होगये महाभारत में जय को प्राप्त हुये ॥५७॥

चित्रकूट प्रभावेण वासुदेवो जनार्दनः ।

साहाय्यमकरोत्तस्य पाण्डवस्य परात्परः ॥५८॥

श्रीचित्रकूट के प्रभाव से वसुदेव के पुत्र भगवान् कृष्णचन्द्र जी ने भक्तों की रक्षा करने वाले ब्रह्मादिकों से भी परे अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश नारायण महानारायादिकों के स्वामी श्रीकृष्ण भगवान् हैं सो वह पाण्डु के पुत्र श्रीयुधिष्ठिर महाराज की सहायता करते भये ॥५८॥

सारध्याम्पार्षदत्वं च दौत्यं सेवनमेव च ।

सर्वं चकार भगवान् तपसा तोषितो हरिः ॥५९॥

भक्तों के श्लेश को हरने वाले भगवान् उस तप से प्रसन्न हुये सारधिपना पार्षदपना दूतपना सेवा यह सब करते भये, यह अत्यन्त गुण रहस्य आचार्य द्वारा जानागे ॥५९॥

ध्यानं कुर्वन्ति यस्यांग्रेः ब्रह्माद्या मुर मृतमाः ।

स एव भगवान् कृष्णः पाण्डवानाम्बुस्थितः ॥६०॥

ब्रह्मा विष्णु नारायण शिवादि श्रेष्ठ जो देवता समूह जिनके चरण कमल का ध्यान करते हैं वही यह श्रीकृष्ण भगवान परब्रह्म पाण्डवों के बस में स्थित हुये, इसका भाव गुरुद्वारे लाभ करेंगे अति दुस्समः ॥६०॥

एवम् प्रभावो भगवान् चित्रकूट गिरीश्वरः ।

यस्य दर्शन मात्रेण हरिश्चित्तं समाविशत् ॥६१॥

इस प्रकार के प्रभाव वाले श्रीभगवान् पर्वतों के राजा श्रीचित्रकूट जी है जिन के दर्शन मात्र से श्रीभगवान् चित्त में प्रवेश करते हैं ॥६१॥

मध्य पर्वत राजस्य बहु योजन विस्तृते ।

वनानिनन्दनादीनिभावयेन्मुक्ति तत्परः ॥६२॥

श्रीगिरिराज का मध्य जो बहुत योजन का विस्तार उसके मध्य में मुक्ति नाम लौकिक वैदिक पञ्च सम्बन्ध शांति, दास सखि, घातसत्य शृंगार से युक्त होकर सम्पूर्ण संसार विषय से निवृत्त होकर श्री सीतारामजी के केवल चरण कमल की प्राप्ति तिस में तत्पर हुआ जीवात्मा सो नन्दन आदिक वनों को ध्यान करे ॥६२॥

येषु राजाधिराजोऽपि सीतया सहितः सुधी ।

सखीभिः संयुतः श्रीमान् विहारं कुरुते सदा ॥६३॥

जिस नन्दनादिक वनों में श्रीकिसोरी जू के सहित राजाधिराज अर्थात् ब्रह्मा विष्णु महेश नारायण वासुदेव महानारायणादिकों के स्वामी श्री सीताराम जी सखियों के सहित सदा काल विहार करते हैं ॥६३॥

इति श्रीमद्भृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी

शरण कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा

टीका पंचमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः ।

श्री सुतीक्ष्ण उवाच ।

कथं श्रीजानकी जानिः सखीभीः परिवेष्टितः ।

वनेषु कुरुतेलीलां ब्रूहि मे द्विजसत्तम ॥१॥

श्रीभगवत्पूज्यजी के प्रति सुतीक्ष्णजी बोले:— हे भगवान् ! किस प्रकार से श्री-जानकी जान अर्थात् जिनके जानकीजू प्राण हैं वैसे श्रीरघुनन्दनजू सखियों करके आवृत हुये वनों के मध्य में लीला करते हैं हे योगेश्वरों के स्वामी आप इस कथा के वर्णन कीजिये ।

श्री भगवत्पूज्य उवाच ।

मन्दिरं रामचन्द्रस्य चतुर्गोपुर संयुतं ।

प्राकारेणावृतं सम्यङ् मणिमण्डल मण्डितम् ॥२॥

श्रीभगवत्पूज्यजी बोले श्रीसीतारामजी का मन्दिर चार गोपुर करके संयुक्त (गोपुर नाम मकान अथवा नगर के बाहर का बड़ा दरवाजा का नाम है) बाहर के कोट कर के घेरा हुआ अच्छी प्रकार मणियों करके शोभायमान ।

पूर्वदिग्गोपुरेरम्ये नानाधातु विचित्रिते ।

ध्येयः पुरन्दरो देवो देवमण्डलमण्डितः ॥३॥

पूर्व दिशा का जो अनेक धातुओं करके जो रचना किया हुआ बहुत रमणीक गोपुर है तिस के विषे देवताओं के मण्डल करके अलंकृत इन्द्र देवता का ध्यान करना चाहिये ।

द्वार देश स्थितः श्रीमान् रक्षां सम्यक् करोति च ।

सरस्वती शतद्रूच द्वेनद्यौ लोक पूजिते ॥४॥

द्वारस्योभयपार्श्वस्थे नन्दनं तत्र संस्थितम् ।

अनेक वृक्ष खण्डैश्च शोभितं द्विजसत्तम ॥५॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ वह इन्द्र देवता स्थित हुये पूर्व द्वार की रक्षा करते हैं और सम्पूर्ण लोक में पूजित हुई सरस्वती और शतद्रु यह दो नदी द्वार के दोनों भाग में स्थित हैं और यहां पर अनेक वृक्षों के समूह करके शोभित नन्दन नाम का वन है ।

प्रियालं चंपकाशोक रमालसुरदारुभिः ।

हरिताल तमालैश्च कृतमाल रमालकैः ॥ ६ ॥

शिंशुपाशाल कुट्टाल कदम्बमधुकादिभिः ।

चूतैर्नीपैः पारिजातैर्मन्दारैश्चोपशोभितम् ॥ ७ ॥

प्रियाल चम्पा अशोक आम देवदारु हरिताल तमाल कृतमाल रमाल शोशी साखू कुट्टाल कदम्ब मधूक और चूत नाम आम की जाति विशेष और नीप नाम कदम्ब जाति विशेष और पारिजात मन्दार इन वृक्षों करके यह नन्दन वन अच्छी प्रकार से शोभित है ।

तस्मिन् श्रीजानकीनाथो विहारं कुरुते सदा ।

प्रातःकाले राज राजः सखी वृन्द समन्वितः ॥ ८ ॥

उस नन्दन नाम के वन में श्रीसीतारामजी सदा काल विहार करते हैं प्रथम प्रातः काल में राजाधिराज श्रीसीतारामजी सखियों के समूह के सहित ।

नन्दने देवराजेन सेवितो भक्त वत्सलः ।

भक्तों के दोष को न देखने वाले ऐसे श्रीसीतारामजी उस नन्दन वन में इन्द्र देवता करके सेवित होते हैं ।

दक्षिणे गोपुर धर्मो नाना धातु विचित्रिते ॥ ९ ॥

संस्थितस्तत्र नद्यौ स्थिते लोकैकपूजिते ।

कृतमाला ताम्रपर्णी ब्रह्महत्या विनाशिनी ॥ १० ॥

नाना प्रकार की धातुओं करके शोभायमान दक्षिण जो द्वार है वहां धर्म-राज विराजमान हैं वहां पर लोक में पूजित हुई दो नदियां स्थित हैं । ब्रह्महत्या को नाश करने वाली है जिन में से एक का नाम कृतमाला और दूसरी ताम्रपर्णी है ।

वैश्रम्भिकं नाम वनं तत्र द्वारे प्रतिष्ठितम् ।

कदम्ब किंशुकं कोल लवंगमधु पाण्डुरैः ॥ ११ ॥

पटलाशोक वकुलैः कुन्दैः कुरवकैरपि ।

स्वर्णार्ण शतपत्रैश्च वरवेणुक जातिभिः ॥ १२ ॥

उस दक्षिण द्वार में वैश्रम्भिक नाम का वन है और कदम्ब पलाश कंकोल

सर्वग महिमा पाण्डुर । कटहर अशोक सकल कुन्द कोरईया स्वर्ग अर्ण शतपत्र वीर
जूही इत्यादि वृक्षों से प्रतिष्ठित है ।

मध्याह्ने जानकी जानिः सखी सङ्गेन शोभितः ।

विहारं कुरुते सम्यग् ज्ञानिनां ज्ञान दायकः ॥ १३ ॥

उस वैभ्रमिक नामक वन में ज्ञानियों के ज्ञान के दाता अर्थात् उज्ज्वल रत्न
प्रद श्रीजानकी जान सखियों के समूह करके शोभित हुये मध्याह्न काल में विहार
करते हैं ।

पश्चिमे गोपुर रम्ये जलेशोयतमानसः ।

भावनीयो यथा शक्त्या लोकेशो रामसेवकाः ॥ १४ ॥

लोक के पालन करने वाले जल अधिष्ठाता देवता विष्णु को एकाग्र किये हुये
श्रीसोतारामजी के सेवक यरुण नाम के देवता को पश्चिम के द्वार में यथा शक्ति
भावना करना चाहिये ।

पुष्प भद्रं नाम वनं तत्र द्वारे प्रतिष्ठितम् ।

अनेक द्रुम खण्डैश्च नाना पल्लव शोभितैः ॥ १५ ॥

उस पश्चिम द्वार में पुष्पभद्र नाम का वन है अनेक प्रकार के पल्लवों करके
शोभित जो अनेक वृक्षों के समूह ।

कर्णिकार करञ्जैश्च ह्याम्रजम्बुकजातिभिः ।

काश्मीर पूगभिरुडीर रसाल शर शिंशुभिः ॥ १६ ॥

कर्णिकार, करञ्ज, आम, जामुन, जूही, केसर, सोपारी, भिण्डीर, रसाल,
स्तम्ब शीशी ।

न्यग्रोधाश्वत्थ भस्मात विल्व चिंचक सेलुभिः ।

पाटलाशोक बन्धूक कर्कन्धू कुटजादिभिः ॥ १७ ॥

वट पीपल भेला वा बेल अमिली कसेलु कटहर अशोक बन्धूक वीर कोरईया ।

इत्यादि वृक्षैः शोभाढ्यैः शोभितं पुण्यवर्धनम् ।

सायाह्ने जानकीनाथस्तस्मिन् क्रीडावने शुभे ॥ १८ ॥

शोभा करके युक्त जो यह सब वृक्ष इन वृक्षों करके शोभित पुण्य के वृद्धि
करने वाली जो पुष्पभद्र नाम का वन है उस सुन्दर रमणीय क्रीडावन के विषे श्री-
जानकी नाथजी सायंकाल में ।

रमते रमया युक्तो योगिनां योग सिद्धिदः ।

चन्द्रभागा कौशिकी च नद्यौ तत्राभिपूजिते ॥ १९ ॥

योगियों को सिद्धि देने वाले धोजनकनन्दनोज के सहित रमण करते हैं और लोक पूजित चन्द्रभागा और कौशिकी नाम की नदी स्थित हैं ।

उत्तरे गोपुरे रम्ये लोकेशो नरवाहन ।

सिद्धि वृन्दैरनेकैश्च सहितो द्वार रत्नकः ॥ २० ॥

रमणों को जो उत्तर द्वार है तिस के विषे अनेक सिद्धि के समूह के सहित लोक पालक कुबेरजी द्वारपाल हैं ।

सरयू यमुना चैव नद्यौ लोकैकपूजिते ।

क्रीडार्थं जानकीशस्य द्वार देशे समाश्रितौ ॥ २१ ॥

और धोजानकी रमणजी के जल क्रीड़ा के वास्ते लोक में एक ही पूजित हुई ऐसी सरयू और यमुना दो नदियां द्वार के दोनों भाग में स्थित हैं ।

चैत्ररथं नाम वनं द्वार देशे प्रतिष्ठितम् ।

हरीतकी चामलकी धात्री खजूरी भूर्जिका ॥ २२ ॥

और द्वार के समीप में चैत्ररथ नाम का वन प्रतिष्ठित है और हड़बहेदा अथवा खजूर (छोहारा) भोजपत्र ।

केतकी मालती कुन्द मन्जुका प्रतिका तथा ।

वासन्तिका चम्पकश्च नाग चम्पक एव च ॥ २३ ॥

केतकी, मालती, कुन्द और मालती, जूही, वासन्ती लता, चम्पा, नागचम्पा यह सब पुष्पों के वृक्ष और पुष्पों की लता वहां पर लगी हुई हैं ।

दाडिमैः पारिजातैश्च सन्तान हरिचन्दनैः ।

इन्दीवरोत्पलाम्भोज कलहार शतपत्रकैः ॥ २४ ॥

और अनार पारिजात सन्तान हरिचन्दन यह सब वृक्षों से यह वन शोभित है और जो इन्दीवर उत्पल अम्भोज कलहार शतपत्र इत्यादि जो कमल के भेद हैं इन करके ।

वापी कूप तडागादि शोभितं तत्र काननम् ।

शैत्यमान्द्यसुगन्धैश्च जल विन्दुभिरन्वितं ॥ २५ ॥

बावड़ी कुप सरोवर शोभित हो रहे हैं इस प्रकार वहां वन है और शीतल मन्द सुगन्ध और जल के बिन्दुओं करके युक्त है अर्थात् नाना प्रकार के फुहारें चल रहे हैं।

प्रवाति यत्र पवनः श्रीरामपद सेवकः ।

मकरन्दैश्च पुष्पाणां मताः षट्चरणादयः ॥ २६ ॥

श्रीसीतारामजू के चरण की सेवा करने वाले इस प्रकार के वायु यहां पर चल रहे हैं और पुष्पों के रसों से भ्रमर मतवाले हो रहे हैं।

पक्षि वृन्द युता नित्यं गायन्ति रघुनन्दनम् ।

तत्र श्रीजानकीनाथः सखी संच समन्वितः ॥ २७ ॥

और पक्षियों के समूह एकत्र हो करके नित्य प्रति श्रीरघुनन्दनजू अर्थात् रघु संज्ञा समूह जीवों को आनन्द के देने वाले ऐसे श्री युगल सरकार को गान करते हैं इस प्रकार की वाटिका में सखियों के समूह के सहित श्रीजानकी कान्तजू।

निशीथे रमते नित्यं कोटि चन्द्र सुकान्तिभृत् ।

चतुर्षु द्वार देशेषु चैव श्रीरघुनन्दनः ॥ २८ ॥

कोटियों चन्द्रमा की सुन्दर कांति को लजावाने वाले तथा धारण करने वाले नित्य प्रति अर्धरात्रि में रमण करते हैं इस प्रकार से चारों द्वारों के विषे श्रीसीतारामजू।

समये समये श्रीमान् विहारं कुरुते सदा ।

सिंह शार्दूल हर्यक्ष मृगादनतरुसुभिः ॥ २९ ॥

समय समय में सदा कील विहार करते हैं और सिंह शार्दूल, बानर, श्वस और मृग भक्षण करने वाला चिता, तेंदुआ।

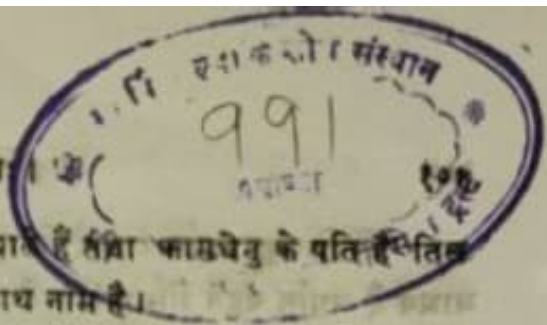
गवयैः कीश गोपुच्छ मर्कटैर्महिषादिभिः ।

त्वक्तवैरैः सदा तत्र सेव्यते रघुनन्दनः ॥ ३० ॥

नीलगौ, कीश, गोलांगुल, मर्कट यह सब तीनों बानरकी जाति विशेष है और महिषा नाम बनैला भैंसा यह सब उस वन में शत्रुता को छोड़ कर श्रीसीताराम जी को सेवन करते हैं।

कामदः सर्व जन्तूनां काम धेनोः पतिस्तथा ।

तेनायं चित्रकूटोऽसौ कामद नाथ संचकः ॥ ३१ ॥



सम्पूर्ण जन्तुओं की कामना को देने वाले हैं तिस कामधेनु के पति हैं तिस हेतु से यह श्रीचित्रकूट गिरिराज का कामदनाथ नाम है ।

धर्मार्थ काम मोक्षाणां प्रदाता सर्व पालकः ।

तेनायं चित्रकूटोऽसौ सर्व सम्पत्ति दायकः ॥ ३२ ॥

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, भक्ति, शुद्धाभक्ति इन पदार्थ हैं तिनको देने वाले हैं सम्पूर्ण जीवों को पालन करने वाले हैं तिस हेतु से यह श्रीचित्रकूट सर्व सम्पत्ति के दाता कहे जाते हैं ॥

अत्रैवपुण्याचरणान्तपश्चर्या प्रभावतः ।

चित्रकूट प्रभावेण श्री गङ्गा स्नान पुण्यतः ॥ ३३ ॥

इसी क्षेत्र में पवित्र आचरण करने से और तप के प्रभाव से श्रीचित्रकूट के प्रभाव से श्रीगङ्गा स्नान के पुण्य से ॥

दमयन्ती पतिर्वीरो राज्यम्प्राप हताशुभः ।

मन्दाकिनी पुण्यतमा गङ्गा त्रैलोक्य विश्रुता ॥ ३४ ॥

दमयन्ती के पति जो बड़े वीर नल महाराज हैं सो पाप से छूट करके पुनः अपने राज्य को प्राप्त हुये और तीनों लोक में प्रसिद्ध परम पवित्र मन्दाकिनी गङ्गा है ॥

तदुत्पत्तिं द्विजश्रेष्ठ शृणुष्व गदतो मम ।

पापानामुपपापानां श्रवणान्नाशकारिणी ॥ ३५ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ उस गङ्गा की उत्पत्ति हम कहते हैं तुम ध्यान करो किसी वह गङ्गा की उत्पत्ति है पाप नाम ब्रह्म हत्या गो हत्या इत्यादि ज्ञान पूर्वक और उपपाप नाम, पञ्च शून्य तथा पद के नीचे पिपीलिका आदिक का मरण इत्यादि जो अज्ञान पूर्वक इन सब को ध्यान मात्र से नाश करने वाली है ॥

श्री चित्रकूटं मुनिवृन्द सेवितं,

शोभाश्रयस्पुण्यकरं नराणां ।

तस्य प्रभावः कवितो द्विजाग्र्यते,

शृणुष्व गङ्गाप्रभवं यथाभवत् ॥ ३६ ॥

श्री चित्रकूट पर्यंत राजा है सो मुनियों के समूह से सेवित है और शोभा का
आभाव है अर्थात् बहुत शोभायमान है जीवों को पुण्य करने वाले हैं हे द्विजों मैं श्रेष्ठ!
उनका प्रभाव हमने तुमसे कहा अब गंगा जी की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई उस कथा
को श्रवण करो ॥३६॥

इति श्री बृहद्रामायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीभीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारो शरण

कृत ब्रह्मतत्व प्रकाशिका भाषा टीका

षष्ठोऽध्यायः ॥



अथ सप्तमोऽध्यायः ।

श्री सुतीक्ष्ण उवाच ।

अनुक्रोशोमयि यदि योग्योऽस्मि श्रवणे यदि ।

तदा कथय मे नाथ गङ्गोत्पत्तिं शुभप्रदा ॥१॥

श्री सुतीक्ष्ण बोले—हे नाथ ! यदि हमारे ऊपर कृपा है और मैं श्रवण करने के योग्य हूँ तो मंगल को देने वाली श्री गंगा जी की उत्पत्ति मेरे से कथन करो ॥१॥

कस्मिन् काले विष्वद्गङ्गा आगता भुवि पुण्यदा ।

ब्रह्मा विष्णु रुद्रश्च त्रयो देवाः सुरेश्वराः ॥२॥

किस समय पुण्य को देने वाली आकाश गङ्गा है सो पृथिवी में आई है और ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव देवताओं के ईश्वर यह तीन देवता है ॥२॥

अत्रि गृहे द्विजश्रेष्ठ उत्पन्ना इति शुश्रुम ।

मन्दाकिन्याश्च माहात्म्यं विस्तरेण महामुने ॥३॥

श्री अत्रि जी के गृह में उत्पन्न हुये हैं हे द्विजों में श्रेष्ठ हमने ऐसा सुना है हे महामुने ! विस्तार पूर्वक श्री मन्दाकिनी जी के माहात्म्य को ॥३॥

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि वद सर्वमशेषतः ।

यस्य श्रवणमात्रेण जन्म योग्यफलं लभेत् ॥ ४ ॥

हम फिर भी श्रवण करने की इच्छा करते हैं सम्पूर्ण कथा को कहिये जिसके श्रवण मात्र से जीव जन्म के योग्य फल को प्राप्त होता है ॥४॥

ऋषिरुवाच ।

गृणु तात कथाम्पुण्यां कथ्यमानाम्मयाऽधुना ।

मन्दाकिन्याः समुत्पत्तिं यथासीत्तन्निबोध मे ॥५॥

श्री अगस्त्य जी बोले हे तात हम इस समय में पवित्र कथा को कथन करते हैं तुम श्रवण करो जिस प्रकार से मन्दाकिनी उत्पत्ति हुई सो कथा तुम हमारे से श्रवण करो ॥५॥

एकदा शम्भुरीशाने ब्रह्मविष्णु सहायवान् ।

अषीणां दर्शनं कर्तुं पृथिव्यामागतास्त्रयः ॥ ६ ॥

एक समय में ब्रह्मा और विष्णु के सहित श्री महादेव जी यह तीनों देवता इसी ऋषियों के दर्शन करने के लिये पृथिवी तल में आये ॥६॥

ते वभ्रमुस्त्रयो देवा दिव्य वर्ष सहस्रकम् ।

आगता दण्डकं दिव्यं वनं मुनि गणाग्रयम् ॥ ७ ॥

यह तीनों देवता पृथिवी तल में देवताओं में हजार वर्ष पर्यन्त फिरते हुये इसके अनन्तर फिरते हुये मुनियों के समूह जिसमें निवास करते हैं ऐसा दिव्य दण्डक नाम के वन में आये ॥७॥

दण्डकादुत्तरे भागे मन्दरो नामपर्वतः ।

तपस्तेपे महाबुद्धिरत्रिर्नाम महातपाः ॥ ८ ॥

दण्डक वन से उत्तर भाग में मन्दर नाम का पर्वत है उस पर्वत के विषे बड़े श्रेष्ठ बुद्धिमान् महा तपस्वी श्री अत्रि नाम के ऋषि तप करते हुये ॥८॥

पतिव्रताख्य धर्मेण युक्तया भार्ययासह ।

अनसूया द्विवज श्रेष्ठ तपस्तेपे यशस्विनी ॥ ९ ॥

पतिव्रता धर्म करके युक्त जो अपनी भार्या अनसूया देवी तिसके सहित तप करते हुये और हे द्विजों में श्रेष्ठ अनसूया देवी भी तप करने लगी ॥९॥

योगेनात्मानमाविश्य योगधर्मपरायणः ।

ध्यायन् भगवतो रूपं पुत्रोत्पत्ति प्रकाशयया ॥ १० ॥

यह ऋषि योग धर्म में तत्पर हुये योग करके अपने आत्मा में प्रवेश किये हुये अर्थात् समाधि चढ़ाये हुये पुत्र की उत्पत्ति की इच्छा से श्री भगवान के रूप को ध्यान करते हुये ॥१०॥

अग्नेःपृथिव्यावायोश्चक्षुःश्रन्तरिक्षस्य वा विभुः ।

धैर्येण सम्मतः पुत्रो मम भूयादिति प्रभुः ॥ ११ ॥

अग्नि और पृथिवी वायु और आकाश के सदृश धैर्य वाला योगबल से सर्व व्यापक और समर्थ ऐसा पुत्र हमारे होय ॥११॥

सङ्कल्पेनायसोऽनेन दुःप्रापेणाजितात्मभिः ।

वरयामास देवेशमास्थाय व्रतमुत्तमम् ॥ १२ ॥

जिन जीवों ने इन्द्रियों को नहीं जीता है ऐसे जीवों को न प्राप्त होने वाला

जो यह सङ्कल्प इस सङ्कल्प करके और उत्तम व्रत का आश्रय करके श्री परमात्मा को ध्यान करने लगे ॥१२॥

अतिष्ठन्मरुताहारः शतंकिल समाः प्रभुः ।

आराधयन् महाविष्णु सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१३॥

वह परम समर्थ श्री अत्रि ऋषि हैं सो सौ वर्ष पर्यन्त वायु का आहार करते हुये स्थित रहे सर्व लोक अर्थात् ब्रह्मा विष्णु महेशादि सर्व लोकाधिपति जिन को नमस्कार करते हैं ऐसे महा विष्णु को आराधन करते हुये ॥१३॥

तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे राजर्षयस्तथैव च ।

लोकपालाश्च साध्याश्च रुद्राश्च वसुभिः सह ॥१४॥

वहाँ पर जितने ब्रह्मऋषि हैं वह सब तथा सम्पूर्ण राजऋषि और इन्द्रादिक लोक पाल और साध्यगण और आठ जो वसुगण तिन के सहित रुद्रगण ॥१४॥

आदित्याश्चैव दैतेया दिवाकर निशाकरो ।

ते सर्वे मरुतश्चैव सागराः सरितस्तथा ॥१५॥

द्वादश आदित्य और प्रह्लाद आदिक जो दैत्य हैं वह भी और सूर्य और चन्द्रमा मरुदुगण और नदी और समुद्र ॥१५॥

अश्विनौ देव गन्धर्वास्तथा नारद पर्वतो ।

विश्वावसु स्तुम्बुरुथ सिद्धाश्चाप्सरसास्तथा ॥१६॥

अश्विनी कुमार देवता और गन्धर्व तथा नारद ऋषि और पर्वत ऋषि और गान विद्या में प्रवीण विश्वावसु और तुम्बुरु नाम गन्धर्व और सिद्ध गण तथा अप्सरा इत्यादि सब जितने हैं ॥१६॥

तस्मिन् दिव्ये वरेरस्ये देव देवर्षि सङ्कुले ।

आजग्मुर्दर्शनं कर्तुं मुनेस्तस्य महात्मनः ॥१७॥

देवता ऋषियों करके संयुक्त दिव्य रमणीक उस श्रेष्ठ आश्रम के विषय वह महात्मा मुनि के दर्शन करने के वास्ते आते भये ॥१७॥

नच तस्य तपश्चतुर्विधः कोऽपि व्यजायत ।

त्रयाणामपि लोकानां तद्दद्भुतमिवाभवत् ॥१८॥

तप करने वाले महारमा अत्रिजी को कोई भी विघ्न न हुआ तीनों लोक को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥१८॥

जटाश्च तेजसा तस्य वैश्वानर शिखोपमाः ।

प्रउलसत्यः समद्रुश्यन्ते युक्तस्यामित तेजसः ॥१८॥

वह अग्नि महाराज की जटा है सो उनके तेज करके अग्नि के शिखा के समूह जलती हुई दीखती हैं कैसे वह महात्मा हैं कि परम तेजस्वी हैं और तप करके युक्त हैं ॥१८॥

अग्निवर्णा जटायस्य प्रकाशन्ते महात्मनः ।

एवं विधां तपश्चर्यां चकार भगवान्मुनिः ॥२०॥

वह महात्मा अग्निजी की जटा अग्नि के समान प्रकाशमान हो रही हैं वह मनन शील भगवान् अग्नि जी इस प्रकार से तपश्चर्या करते हुये ॥२०॥

आगतास्तत्र ते देवा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः ।

दृष्ट्वा मुनिम्प्रसन्नास्ते वरं दातु समुद्यताः ॥२१॥

इसके अनन्तर वह ब्रह्मा विष्णु महादेव वह तीनों देवता उस आश्रम में आये और मुनि को देखकर बहुत प्रसन्न हुये वरदान देने को तत्पर हुये ॥२१॥

गृहीत्वाऽञ्जाम्भगवतः शिवो वाचा प्रसन्नधीः ।

वरं वरय भद्रं ते वरदेशा वयञ्चयः ॥२२॥

श्री विष्णु भगवान् की आज्ञा को ग्रहण करके प्रसन्न चित्त से शिव जी बोले हे ऋषि तुम्हारा मङ्गल हो तुम वर दान मांगें वर दान देने वालों के अविष्टाता हम तीनों आये हुये हैं ॥२२॥

आगतास्ते वरं दातुं वृणीष्व मुनिपुङ्गव ।

हे मुनियों में श्रेष्ठ हम तीनों तुम्हारे वर दान देने के निमित्त ही आये हैं ।

अत्रिरुवाच ।

भूमिर्यथा सहिष्णुत्वे तेजस्त्वेतु विभावसुः ॥२३॥

यह सुन करके अग्निजी बोले हे भगवन्तः ? सहन करने में जिस प्रकार पृथिवी देवी है और तेज में जिस प्रकार अग्नि देवता है ॥२३॥

वायुर्यथासर्वगतो ह्येवम्पुत्रा भवन्तु मे ।

एवं श्रुत्वा वचस्तस्य महर्षेरमितीजसः ॥ २४ ॥

जिस प्रकार वायु देवता सर्व व्यापक हैं इसी प्रकार के हमारे पुत्र होंय वह परम तेजस्वी महर्षि के इस वाक्य को सुन कर ॥२४॥

प्रत्युवाच महातेजास्त्वयम्भकः प्रहसन्निव ।

एवं विधास्ते तनया भविष्यन्ति न संशयः ॥२५॥

यह परम तेजस्वी महादेव जी हँसते हुये बोले हे मुनि आप के इसी प्रकार से पुत्र होंगे इस में सन्देह नहीं ॥२५॥

दत्तात्रेयोऽहरेरंशाच्चन्द्रमा ब्रह्मणस्तथा ।

समांशाश्चैव दुर्वासा भविष्यन्ति न संशयः ॥२६॥

विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा और हमारे अंश से दुर्वासा यह तीन पुत्र तुम्हारे होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥२६॥

तेजसा व्याप्य लोकांस्त्रीनृपशः प्राप्स्यन्ति ते सुताः ।

अपने तेज से तीनों लोक को व्याप्त होकर तुम्हारे पुत्र यश को प्राप्त होंगे ।

अगस्त उवाच ।

सप्तब्ध्वा परमं देवाद् वरमत्रिर्महातपाः ॥२७॥

अगस्त जू बोले हे सुतीक्ष्ण ! वह परम तेजस्वी अत्रिजी महादेव से वरदान प्राप्त हो करके ॥२७॥

स्वभार्यामनसूयाख्यामाव्हानमकरोत्तदा ।

अथ रूपं परं दिव्यं विभ्रती स्वेन तेजसा ॥२८॥

अनसूया नाम की जो भार्या, उसको बुलाते हुये इसके अनन्तर वह अनसूया देवी अपने तेज से उत्तम रूप को धारण करती हुई ॥२८॥

आजगाम द्विजश्रेष्ठ पातिव्रत परायणा ।

घृताचीमेनकारम्भ ऊर्वशी च तिलोत्तमा ॥२९॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ पतिव्रत धर्म में तत्पर हुई आकर के प्राप्त हुई और घृताची, मेनका, रम्भा, ऊर्वशी, तिलोत्तमा ।

स्तांश्चाप्सरसांश्चेष्टाः यस्याग्रे नर्तनोत्सुकाः ।

गन्धर्वाः किन्नराश्चैवमृदङ्गपण्य वादिकान् ॥३०॥

यह सब जितनी अप्सराओं में प्रधान है उस महाराज अत्रिजी के सामने नृत्य करने में तत्पर है और गन्धर्व तथा किन्नर लोग मृदङ्ग और पणव आदि जो बाजा है ।

वीणा मुरजतालादीन् वादयन्तो विचित्रकान् ।

खञ्जरीटारश्च भृङ्गारश्च विचित्रा वन जन्तवः ॥३१॥

और वीणा मुरज करताल इत्यादिक विचित्र बाजा बजाने लगे और खञ्जरी भृङ्ग यह सब विचित्र जो वन के जीव हैं ।

यशस्तस्य प्रगायन्ति जटा ध्वनि परायणा ।

चित्रवर्णा मयूराश्च कैकाशत विराजिताः ॥३२॥

जटा के मार्गमें तरपर हुये अर्थात् जटा के समीप में उड़ने हुये जो भंकर शब्द करते हैं मानो उन ऋषि के यश को गान करते और विचित्र वर्ण वाले मयूर हैं सो सैकड़ों अपने दिव्य शब्दों करके शोभायमान हो रहे हैं ।

राज हंस समूहाश्च कृष्णाः पद्मभृतस्तथा ।

शुकसारिक वृन्दश्च नित्यं तत्र बने स्थितम् ॥३३॥

और राज हंसों के समूह तथा श्यामा पक्षी तोता मैना इत्यादि पक्षियों के समूह नित्य प्रति उस वन में रहते हैं ।

पक्षिराजो वैनतेयो नित्यं यत्र समाश्रितः ।

चत्वारो लोकपालाश्च देवाः सर्पिगणास्तथा ॥३४॥

स्वयम्पक्षियों के राजा वैनतेय के पुत्र गरुड जो नित्य प्रति जिस वन में निवास करते हैं और इन्द्र वरुण यम कुबेर यह चारों लोकपाल और ऋषियों के सहित सब देवता ।

तत्र नित्यं समायान्ति मुनि दर्शन कारिणः ।

ऋषिणा यत्र पुत्राय तपस्तप्तं महात्मना ॥३५॥

उस आश्रम में नित्य प्रति मुनि के दर्शन की इच्छा से आते हैं और जिस आश्रम में महात्मा ऋषि ने पुत्र के वास्ते तप किया ।

बालखिल्यादयः सर्वे तत्र सर्वे दिवौकसः ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च यत्र तत्र समागताः ॥३६॥

वहां पर बाल खिल्य सम्पूर्ण और देवता लोग और ब्रह्मा विष्णु महादेव यह सब जहां तहां पर आये हुये हैं ।

आगता मुनिपत्नी सा पातिव्रत परायणा ।

स्वर्णपात्रं करे कृत्वा मणिरत्न विभूषितम् ॥३७॥

इसके अनन्तर मणि और नाना प्रकार के रत्नों से भूषित सुवर्णका पात्र हाथ में लिये पतिव्रत धर्म में तत्पर हुई वह मुनि को पत्नी श्री अनसूयादेवी आकर प्राप्त हुई ।

दुर्वा तुलसिका युक्तं धूप दीप विराजितम् ।

मालती वृचिकाशोक कुन्द मन्दार चम्पकैः ॥३८॥

कैसा वह सुवर्ण का पात्र हाथ में लिये है सो कहते हैं दूध और तुलसी करके युक्त और धूप दीप के सहित शोभायमान और मालती तथा जूही अशोक और कुन्द मन्दार चम्पा यह सब पुष्पों के सहित ।

वकुलैः पारिजातैश्च केतकी कुसुमैर्वृतम् ।

पूजयामास विधिवत्सा देवी देवनायकान् ॥३९॥

और भी वकुल नाम मोरछली पारिजात केतकी इत्यादि पुष्पों के सहित जो सुवर्ण के पात्र में समग्र पूजन की सामग्री तैयार करके वह अनसूयादेवी ने तीनों देवाधिप ब्रह्मा और विष्णु महादेव को पूजन करती हुई ।

श्रीदेव्युवाच ।

उवाच वचनं चित्रं देवी विस्मय कारकम् ।

भो भो कृपानिधे शम्भो जगत्संहारकारक ॥४०॥

सब जीवों को आश्चर्य कराने वाली विचित्र वाणी श्री अनसूया देवी हैं सो बोली हे शम्भो ! आप जगत् के संहारकर्ता हैं और कृपा के समुद्र हैं ।

त्रयो देवाश्च मे गर्भे पुत्रा भवितु मर्हथ ।

द्वितीयेन वरेणासौ गंगा पापप्रणाशिनी ॥४१॥

आप सब तीनों देवता हमारे गर्भ में पुत्र रूप से उत्पन्न होवें और दूसरा बरदान हम यह मांगती हैं कि यह जो समग्र पाप के नाश करने वाली विष्णुपत्नी गंगा है ।

प्रसरत्वत्र सततं लोकनां हित काम्पया ।

श्रीदेव्या वचनं श्रुत्वा तत्तद्वयं ते वरं ददुः ॥४२॥

सो यहां श्रीचित्रकूट में लोक का उपकार करने की इच्छा से निरन्तर बहती रहै इस प्रकार श्रीअनसूयादेवी के वाक्य को श्रवण करके वह तीनों देवता हैं सो दोनों वर को दिया ॥ ४२ ॥

दत्ता वरं भयोदेवा ह्यन्तर्धानिगताः सृणात् ।

अनसूया जनयामास पुत्रांश्च त्रिदशोपमान् ॥४३॥

वह तीनों देवता वरदान देकर क्षणमात्र में अन्तर्धान हो गये इस के अनन्तर कुछ काल व्यतीत होने पर अनसूयादेवी ने वह तीनों देवताओं के सदृश तीन पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥

अस्वकांशांश्च दुर्वासा धातुरंशांश्च चन्द्रमा ।

दत्तात्रेयो हरेरंशादेवं पुत्राभवन् शुभा ॥४४॥

श्रीमहादेवजी के अंश से दुर्वासा और ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा और विष्णु के अंश से दत्तात्रेय जी इस प्रकार यह सुन्दर तीन पुत्र होते भये ॥ ४४ ॥

ततोऽनसूया संहृष्टा विचार्य पुनरागता ।

जाह्नवीप्रार्थयामास दिव्यस्तोत्रेण सा तदा ॥४५॥

इस के अनन्तर वह अनसूया देवी तीनों पुत्रों के ऐश्वर्य को विचार कर बहुत प्रसन्न हुई और पुनः सुन्दर दिव्य स्तोत्र करके श्रीगंगा देवी की प्रार्थना करने लगी ॥४५॥

श्रीदेव्युवाच ।

मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः ।

नमः स्रैलोक्यभूषिण्यै त्रिपथायै नमो नमः ॥४६॥

श्री अनसूयाजी बोली है महारानी आप मन्दगमन वाली हो आपको नमस्कार है आप सकाम जनों को स्वर्ग देने वाली हो आपको नमस्कार है आप तीनों लोक को भूषित करने वाली हो आपको नमस्कार है आप विष्णु पद से ब्रह्म लोक को प्राप्त हुईं और पुनः ब्रह्मलोक से शिव जटा में प्राप्त हुई पुनः शिव जटा से पृथिवी तल में प्राप्त हुई इस हेतु आपका त्रिपथगा नाम है ऐसी आपको नमस्कार है ॥४६॥

नमस्ते विष्णु रूपिण्यै ब्रह्मसूत्यै नमो नमः ।

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शांकर्यै ते नमो नमः ॥४७॥

सात्त्विक निष्काम जीव आपको जो सेवन करते हैं तिन को आपापरिशुद्धान्तः करण करके संसार से निवृत्ति का कारण जो शुद्ध सत्त्वमय ज्ञान तिस को देती हो इस हेतु आप साक्षात् विष्णुरूपा हो इससे आपको बारम्बार नमस्कार है और राजस जीव आपको सेवन करते हैं तिन को आप नाना प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त कराती हो

इस हेतु आप साक्षात् मूर्तरूपा हो ऐसी आपको बारम्बार नमस्कार है और जो तामसी जन आप को सेवन करते हैं तिन को आप तत्तद्वासना की पूर्ति रूप तत्तत्फलों की प्राप्त करती हो इस हेतु साक्षात् रुद्र रूपा हो ऐसी आप को बारम्बार नमस्कार है इस हेतु आप सर्व प्राणी मात्र की यथाधिकार सर्वथा कल्याण करने वाली हो आप को बारम्बार नमस्कार है ॥४७॥

सर्व देव स्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये ।

सर्वस्य सर्व व्याधीनां भिषक् श्रेष्ठा नमो नमः ॥४८॥

आप सम्पूर्ण फलों को देती हो इस हेतु आप सर्व देव रूपा हो और सर्व प्राणी मात्र की जो सर्व प्रकार की व्याधि तिस के लिये औषधि रूपा और श्रेष्ठ वैद्य रूपा आप ही हो ऐसी आपको बारम्बार नमस्कार है ॥४८॥

शान्ति सन्तोष कारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये ।

सर्व संशुद्धि कारिण्यै नमः पापारि मूर्तये ॥४९॥

नाना प्रकार की जो आशा तृष्णा करके व्याकुल जो जीव हैं तिन को आप शान्ति और सन्तोष को करने वाली हो ऐसी आप को बारम्बार नमस्कार है आप स्वयं शुद्ध विग्रह हो सर्व प्राणी मात्र की शुद्धि करने वाली हो आपको जो जीव सेवन करते हैं तिन को मानो पाप के शत्रु को साक्षात् विग्रह आप हो ऐसी आप को बारम्बार नमस्कार है ॥४९॥

भुक्ति मुक्ति प्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः ।

भोगोप भोग दायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः ॥५०॥

नाना प्रकार का जो भोग तथा संसार से निवृत्ति रूप जो मोक्ष तिस को आप देने वाली हो आप साक्षात् मङ्गल को देने वाली हो ऐसी आप को बारम्बार नमस्कार है तथा भोग जो स्वर्गादि सुख और उपभोग जो लौकिक सुख तिस को आप देने वाली हो आप स्वयं भोगमय हो ऐसी आप को बारम्बार नमस्कार है ॥५०॥

त्रिहुताशन संस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः ।

नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः ॥५१॥

गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, प्रणीताग्नि, यह जो तीन प्रकार की अग्नि है तिन के मध्य में उत्तेजक रूप से आप स्थित हो आप तेजोमयी हो ऐसी आपको बारम्बार नमस्कार है यथा गर्भोपनिषत् ॥ अग्नयो ह्यत्र त्रियन्ते ज्ञानाग्निर्दर्शनाग्निः कोष्टाग्निरिति । तत्र कोष्टाग्निर्नामाशितपीत लेह्यवोष्यपचतो । दर्शनाग्नी रूपानां दर्शनं

११२

बृहद् विप्रकृत माहात्म्यम् ।

करोति । ज्ञानाग्निः शुभाशुभं च कर्म धिन्दति ॥ त्रीणि स्थानानि भवन्ति मुखे
आहवनीय उदरे गार्हपत्यो हृदि दक्षिणाग्निः इति ।

आप साक्षात् मङ्गल रूपा हो और मङ्गल को देने वाली हो ऐसी आप को
बारम्बार नमस्कार है ॥५१॥

शान्तायै च वशिष्ठायै दुरितघ्न्यै नमो नमः ।

ब्रह्मण्यायै ब्रह्मणादि दुरितघ्न्यै नमो नमः ॥५२॥

आप शान्त रूपा हो अपने ऐश्वर्य से प्राणी मात्र को वश करने वाली हो पाप
को नाश करनेवाली हो ऐसी आप को बारम्बार नमस्कार है आप ब्रह्म रूपा होकर
सरावर में स्थित हो ब्रह्मणादि चतुर्वर्णों के पाप को नाश करनेवाली हो ऐसी आप
को बारम्बार नमस्कार है ॥५२॥

शरणागत दीनार्ति परित्राण परायणे ।

सर्वस्यार्ति हरे देवी नारायणि नमोऽस्तुते ॥५३॥

आप के शरणागत हुये जो दीन जन हैं तिन के रक्षा में आप तत्पर हो सम्पूर्ण
प्राणीमात्र के दुःख को आप हरण करनेवाली हो आप दिव्य रूपा हो आप स्वयं विष्णु
रूपा हो ऐसी आप को बारम्बार नमस्कार है ॥५३॥

इति स्तुता तदा देवी श्रीदेव्या करुणार्तया ।

निःसृता सा तदागङ्गा मन्दराचल मूलतः ॥५४॥

करुणा करके आर्त हुई अतस्तथा देवी ने जब इस प्रकार से स्तुति की तब
श्रीगङ्गा देवी मन्दराचल के मूल भाग से निकलती आई ॥५४॥

गङ्गोदकेन विधिवत्तर्पयेत्पितृ देवताः ।

आद्ध पिण्डप्रदानं च स विधिञ्च इहोच्यते ॥५५॥

जो पुरुष श्री गङ्गाजी के जल से विधि पूर्वक देवता तथा पितरों को तर्पण
करते हैं तथा आद्ध करते हैं पिण्ड प्रदान करते हैं वही पुरुष अच्छे विधान को जानने
वाले कहे जाते हैं ॥५५॥

एषते सर्व माख्याता कथा पाप प्रणाशिनी ।

मन्दाकिन्याश्च माहात्म्यं तव प्रश्नानुसारतः ॥५६॥

सापूर्ण पापों को नाश करने वाली यह कथा हमने तुम्हारे प्रति कहा और
तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मन्दाकिनी जी के माहात्म्य को भी हमने कहा ॥५६॥

य इदं पठति स्तोत्रं नृणुषाञ्छुद्धान्वितः ।

स तदा मुच्यते पापैः काय वाचन सम्भवैः ॥ ५७ ॥

जो पुरुष इस स्तोत्र को पाठ करते अथवा श्रद्धायुक्त श्रवण करते हैं वह जीव तत्काल ही शरीर से और वाणी से उत्पन्न हुये पापों से छूट जाते हैं ॥ ५६ ॥

मन्दाकिन्यां समासाद्य सकृत्पिण्डान् ददाति यः ।

उद्धृताः पितर स्तेन भवाम्भोधेस्तिलोदकैः ॥ ५८ ॥

श्रीमन्दाकिनी जी में प्राप्त हो कर एक बार जो कोई पितरों को पिण्ड दान करते हैं और तिल और जल से तर्पण करते हैं, तो मानो उन जीवों ने संसार समुद्र से अपने पितरों का उद्धार कर दिया है ॥ ५८ ॥

यावत्तश्च तिलान् मर्त्या गृहीत्वा पितृ तर्पणे ।

तावदब्द सहस्राणि पितरः स्वर्गं वासिनः ॥ ५९ ॥

श्रीगङ्गा जल के साथ जितने संख्या का तिल ग्रहण करके जीव पितरों का तर्पण करते हैं उतने ही हजार वर्ष उसके पितर जन स्वर्ग में वास करते हैं ॥ ५९ ॥

तस्यां श्रीयज्ञ वेद्यां तु ब्रह्मा लोक पितामहः ।

चकार यज्ञं विधिवद्वाचव प्रीतिहेतवे ॥ ६० ॥

उसी गंगाजी के तट पर सम्पूर्ण लोकों के पितामह श्री ब्रह्माजी ने यह वेदी में श्री सीतारामजी के प्रसन्नता के निमित्त विधि पूर्वक यज्ञ करते भये । सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासौ दिवमुत्पतन्ति । ये वै तत्त्वं विसृजन्ति धोरास्ते जनासौऽमृतं भजन्ते ॥ इति मनु० । जहां गंगा व यमुना जू के संगम हुआ है वहां जो प्राणी स्नान करते हैं वह स्वर्ग को जाते हैं जो प्राणी अपने शरीर को त्यागते हैं मोक्ष का लाभ करते हैं ऐसे ही वेद में प्रमाण है । यथा, गंगे यमुने सरस्वति शतद्र । गङ्गाजू को वेदों में भी माना है क्योंकि (तीर्थ्यतेऽनेनेति तीर्थम्) जिससे पापी भी तर जाते हैं उन्हें तीर्थ कहते हैं । कोई कोई गङ्गाजू को चला जाना कथन करते हैं । यथा, कले-र्दश सहस्रान्ते विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीम् । तदर्धजाह्नवीनाय तदर्धं ग्राम देवताः ॥ इस सनत्कुमार संहिता के वचन से जो लोग कहते हैं कि पांच हजार वर्ष के व्यतीत होने पर गंगाजू चली जायंगी सो सबथा असंगत है । क्योंकि बृहद्विष्णु पुराण में कहा है कि (पृथिवी गंगयाहीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ ॥ तदैव विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीं नरपुंगव) इस वचन द्वारा जाना जाता है जब कलियुग तीन चरणगत हो जायंगे व एक चरण बाकी रहेंगे अर्थात् आखिरी । कलियुग में गंगाजी प्रयाण करेंगी

ऐसे ही प्रायश्चित्त तत्त्व में भी कहा है । (यावद्धरिण्यां तुलसी प्रपूज्यते गुरुर्न भस्मो-
दिवि कल्पपादपः । यावत्समुद्रे बह्वानलश्च वसामि राजंस्तवचक खाते ॥ गङ्गाजू ने
भागीरथ राजा से प्रतिष्ठा कर वचन कहा कि जब तक भूमण्डल में तुलसी की पूजा
रहेगी व आकाश मण्डल में बृहस्पतिज, स्वर्ग में कल्पवृक्ष व समुद्र में बह्वानल
रहेंगे तब तक हे राजन् मैं तुम्हारे इस रथचक के गड़हे में वास करूंगी इस वचन
के द्वारे पूर्व सनत्कुमार संहिता के वाक्य का भ्रमाव हुआ । पुनः ऐसे ही संमोहन
तन्त्र में जानेंगे यथा, (संसार सागरोत्तोरण कारणाय नृणां सदा । श्रोगंगाद्रव रूपेण
त्रैलोक्यं व्याप्य तिष्ठति) संसार सागर से मनुष्यों के तारने के लिये तीनों लोकों
को व्याप्त कर द्रवरूप से गंगाजू सदैव स्थिर रहती है इससे गंगाजू सदा सर्वकाल
बनी रहेंगी, यह भागीरथी गंगा के विषय जाने'गे । सरयू, मन्दाकिनी को क्या बाते'
हैं वह तो नित्य सर्वदा है यथा, मन्वन्तर सहस्रेषु काशी वासेन यत्फलम् । तत्फलं सम
वाप्नोति सरयू दर्शने कृते ॥ मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि । तत्फलादधिकं प्रोक्तं
सरयू दर्शने कृते ॥ यथा पद्म पुराणेः— अष्टि वर्ष सहस्राणि काशि वासेषु यत्फलम् ।
तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दासरथी पुरीम् ॥ अर्थात् एक रस नित्य है ताते तत्वाचर्य
ने विनय में कथन किया हैः— अब चित चेत चित्रकूटहि चलु, सब सोच विमोचन
चित्रकूट ॥६०॥

इति श्रीबृहद्रामायणे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये सीतारामीय परमहंस

परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण कृत

ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



अष्टमोऽध्यायः ।

श्रीसुतीक्ष्ण उवाच ।

देव देव कृपासिन्धो जगन्मङ्गल कारक ।

कस्मिन् काले विधाता च कृतवान् यज्ञमुत्तम ॥ १ ॥

श्रीसुतीक्ष्णजी श्रीभगवत्जी के प्रति बोले—हे देवों के देव ! हे कृपा के समुद्र !
हे जगत् के मङ्गल करने वाले ! श्रीब्रह्माजी ने श्रीसीतारामजी के प्रसन्नता के निमित्त
किस समय उत्तम यज्ञ किया है ॥ १ ॥

श्रीभगवत्प्रोवाच ।

पुराकृतयुगस्यादौ ब्रह्मालोकपितामहः ।

तपस्तेपे पुरा तत्र यज्ञार्थं दारुणं प्रभुः ॥ २ ॥

सर्व लोकों के पितामह श्रीब्रह्मा जी ने प्रथम ही सतयुग के आदि में यह भूमि
के निश्चय के वास्ते श्रीचित्रकूट में बड़ा घोर तप करते भये ॥ २ ॥

अयुतैर्वर्षसहस्रैस्तपसे कृत निश्चयः ।

ततः प्रादुरभूद्देवो वरदानाय राघवः ॥ ३ ॥

वह श्रीब्रह्माजी दश हजार वर्ष पर्यन्त तप करने में निश्चय किया इसके
अनन्तर श्रीसीतारामजी वरदान देने के वास्ते प्रगट होने भये ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

वरं वरय भद्रंते वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ।

स्थानानि पुण्यतीर्थानि पृथिव्यां सन्ति तेप्रभो ॥ ४ ॥

श्रीरामजी ने ब्रह्मा जी से कहा कि हम वरदान देने के वास्ते तुम को प्राप्त हुये
है तुम्हारा मङ्गल हो तुम अपने इच्छानुसार वरदान मांगो यह सुन कर ब्रह्माजी बोले
कि हे प्रभो पृथिवी तल में आप के बहुत से पवित्र स्थान हैं तथा पुण्य तीर्थ है ॥ ४ ॥

शतमष्टोत्तरं स्थानं तच्छ्रेष्ठं च वदस्व मे ।

इस एक सौ आठ १०८ आप के प्रधान स्थान है उसके मध्य में जो श्रेष्ठ स्थान
आप का होय उसको कहिये ।

श्रीभगवानुवाच ।

गिरिः श्रीचित्रकूटाख्यो यत्न मन्दाकिनी नदी ॥ ५ ॥

११४

देसे ।

दिवि

भागी

रहेंगे

रहेंगे

के ३

सम्प

ब्रह्मे

को

धन

है

य

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

ह

यह सुन कर श्रीरघुनन्दनजी बोले श्रीविष्णुकूट नाम का पर्वत है जहां पर मन्दाकिनी नाम की नदी है ॥ ५ ॥

तयोर्मध्ये सुविस्तीर्णा त्रिंशद्धनुषमायता ।

धनुषाकार संयुक्ता धनुषोपरि संस्थिता ॥ ६ ॥

वह पर्वत और नदी दोनों के मध्य में बड़े विस्तार करके युक्त तीस धनुष पर्यन्त लम्बी और धनुष के आकार करके संयुक्त है और धनुष के ऊपर स्थित है ॥ ६ ॥

एतत्क्षेत्रं प्रियतमं न कस्मैचित्प्रकाशितम् ।

तत्र त्वं धनुष क्षेत्रे यज्ञं कुरु पितामह ॥ ७ ॥

यह परम प्रिय क्षेत्र हमारा है हमने आज तक अभी किसी को भी प्रकाश नहीं किया है । हे सूर्य लोक के पितामह ! उस धनुष क्षेत्र में आप यज्ञ करो ॥ ७ ॥

इति दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवान्तर्दधे हरिः ।

धाता चकार विधिवच्छत यज्ञमखण्डितम् ॥ ८ ॥

भक्तों के फलेश शोक हरने वाले श्रीरामजी इस प्रकार से ब्रह्मा को वरदान देकर उसी जगह पर अन्तर्धान हो गये पुनः ब्रह्माजी ने श्रीरामजी की कही हुई भूमि पर निर्विघ्न साङ्गोपाङ्ग सौ यज्ञ करते भये ॥ ८ ॥

मरीचिरज्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः ऋतुः ।

वशिष्ठश्च महातेजा तथा चित्रशिखण्डिकः ॥ ९ ॥

इसके अनन्तर मरीचि तथा अत्रि, अङ्गिरा और पुलस्त्य, पुलह और ऋतु तथा परम तेजस्वी श्री वशिष्ठजी और चित्र शिखण्डी ॥ ९ ॥

एते मुनीश्वराः सर्वे तथा स्वायम्भुवोमनुः ।

एतैर्यज्ञः कृतः पूर्वं सर्व पाप प्रणाशनः ॥ १० ॥

यह सब जितने मुनीश्वर हैं तथा स्वायम्भुव मनु भी इन सबों ने संपूर्ण पाप के नाश करने वाले यज्ञ को इस भूमि पर प्रथम किया है ॥ १० ॥

बाल खिल्यादयस्तत्र नारदादि मुनीश्वराः ।

ब्रह्मवेदी प्रभावेण नारायण कलां गताः ॥ ११ ॥

बाल खिल्यादि जो मुनिगण हैं और नारदादिक जो मुनीश्वर हैं सो सब इस ब्रह्मा वेदिका के प्रभाव से श्रीभगवान् की कला को प्राप्त हुये हैं ॥ ११ ॥

प्रणामं ये प्रकुर्वन्ति सम्प्रदृष्ट तनूरुहाः ।

यताश्चमेधिकं पुष्यन्ते प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ १२ ॥

इस यज्ञ वेदी के प्रभाव को श्रवण करके जिन पुरुषों की प्रसन्नता के मारे रोमावलि खड़ी हो जाती है ऐसे जीव यदि प्रणाम करते हैं तो वह जीव एक सौ १०० अश्वमेध यज्ञ के बराबर पुण्य को प्राप्त होते हैं इस में संदेह नहीं है ॥ १२ ॥

श्री सुतीक्ष्ण उवाच ।

संक्षेपात्कथिता देव कथा पाप प्रणाशिनी ।

विस्तारेण भमाख्याहि सर्वभूत दयाकर ॥ १३ ॥

सुतीक्ष्ण जू बोले हे देव सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली इस कथा को आपने संक्षेप से कहा इस हेतु सर्व प्राणियों के ऊपर दया करने वाले अब आप कृपा करके इस कथा को मेरे से विस्तार पूर्वक कहिये ॥ १३ ॥

किमाह देवो भगवान् ब्रह्माणं प्रपितामहम् ।

आराधयामास हरिं देवं नारायणम्परम् ॥ १४ ॥

दिव्य-वर्ष-सहस्रैश्च सर्वैस्तैर्मुनिभिः सह ।

मराच्यादिक ऋषियों के सहित ओपितामह ब्रह्माजी दिव्य हजार वर्ष पर्यन्त प्रकृति से परे दिव्य रूप जगत् के कारण भक्तों के कष्टों को हरण करने वाले श्री सीतारामजी को आराधना को किया पुनः प्रसन्न होने पर वह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक दिव्य रूप श्री रामजी ने पितामह श्री ब्रह्माजी से क्या कहा ॥ १४ ॥

इदानीं शीतुमिच्छामि देव देव समागमम् ॥ १५ ॥

एतदाख्याहि मे तात श्रद्धधानाय विस्तृतम् ।

हे तात ! मैं अब श्री रामजी का और ब्रह्मा जू के समागम की कथा को श्रवण करने की इच्छा करता हूँ सो हे भगवन् इस कथा के श्रवण करने की मेरी बड़ी भारी श्रद्धा है आप कृपा करके मेरे से कहिये ॥ १५ ॥

एतत्प्रश्नं समाकर्ष्य नमस्कृत्य रघूत्तमम् ॥ १६ ॥

प्रत्युवाच महातेजास्तन्मुनिं दीप्त तेजसम् ।

वह परम तेजस्वी श्री अगस्त्यजी ने इस प्रश्न को सुन करके श्री सीताराम जू को नमस्कार करके प्रज्वलित है तेज जिन का ऐसे मननशील श्री सुतीक्ष्णजी से बोले ॥ १६ ॥

श्री अगस्त्योवाच ।

मुने शृणु कथामेतां सर्व पातक नाशिनीम् ।

अशेष विघ्न शमनीं महा श्रेयो विवर्द्धनीम् ॥ १७ ॥

अगस्त जी बोले-हे मननशील सम्पूर्ण बापों को नाश करने वाली और सम्पूर्ण पिघून को नाश करने वाली परम कल्याण की वृद्धि करने वाली इस कथा को तुम सुनो ॥१७॥

श्रुत्वा धर्मार्थं कामानां फलम्प्राप्नोति मानवः ।

अत्र ते कथयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम् ॥ १८ ॥

इस कथा को सुन कर पुरुष है सो त्रैवर्गिक अर्थ धर्म काम रूप फल को प्राप्त होता है ॥१८॥ इस कथा के अन्तर्गत एक बड़ी भारी उत्तम कथा को हम तुमसे कहेंगे ।

महाकल्प सहस्राणि महाकल्प शतानि च ।

समतीतानि विप्रेन्द्र सर्गाश्च पूलयं गताः ॥ १९ ॥

एक हजार एक सौ महाकल्प व्यतीत हो गया और सृष्टियां प्रलय को प्राप्त हो गईं उस समय का यह वृत्तान्त है ॥१९॥

सर्गस्वादौ स्मृतौ ब्रह्मा पूजा सर्गकरः प्रभुः ।

चतुर्विंशत्सहस्रैश्च ऋषिभिः सहितोऽनघ ॥ २० ॥

दूषण से रहित परम समर्थ प्रजा की सृष्टि को करने वाले श्रीब्रह्माजी ने प्रथम सृष्टि के आदि में चौबीस हजार ब्रह्म लोक निवासी ऋषियों के सहित उठकर श्री सीतारामजी को स्मरण किया ॥२०॥

स्तुतिं चकार भगवान्-ब्रह्मालोकपितामहः ।

यस्याः श्रवणं मात्रेण मनोवाञ्छा फलं लभेत् ॥ २१ ॥

पुनः सर्व लोक के पितामह भगवान् ब्रह्माजी श्री सीतारामजी की स्तुति करने लगे ॥२१॥ जिस स्तुति के श्रवण मात्र से जीव है सो मनोकामना की पूर्ति रूप फल को प्राप्त होता है ।

ब्रह्मोवाच ।

नमो हिरण्यगर्भाय सर्व सृष्टि विधायिने ।

हिरण्यरेतसे तुभ्यं सुहिरण्य प्रदायिने ॥ २२ ॥

श्रीब्रह्मा जी बोले-हे भगवान् आप सृष्टि करने का इच्छा से मेरे अन्तर्यामी रूप होकर प्रेरणा करते हो तथा सृष्टि करने की सामर्थ्य देते हो इस हेतु आप हैं सो हिरण्य गर्भ नाम ब्रह्मा आप ही हो इस हेतु आपको बारम्बार नमस्कार है यथा—यो

यै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । जिस परमात्मा ने प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न किया और जिस परमात्मा ने उस ब्रह्मा को प्रथम वेद प्रदान किया । हे भगवन् ! भूत भविष्य वर्तमान यह तीनों ही काल में यह जगत् की सृष्टि आप के मध्य में स्थित रहती है इस हेतु सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले तथा पालन करने वाले आप ही हो ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार है । यथा श्वेताश्वतरेः, यो देवा नामधिपो यस्मिंल्लोका अधिध्रिताः । स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्व भूतेषुगूढः ॥ जो परमात्मा देवताओं का स्वामी है अर्थात् नारायण महानारायण वासु-देव ब्रह्मा, विष्णु शिवादि जिनको ध्यावते हैं जिस परमात्मा के विषे सर्व लोक में स्थित है अर्थात् नारायण वासुदेवादि लोकों के कारण है । वही परमात्मा सर्व काल में सम्पूर्ण लोक के रक्षक है अर्थात् सम्पूर्ण लोक के अधिष्ठाता है, अर्थात् स्वामी है । सम्पूर्ण प्राणी मात्र के हृदय में अन्तर्यामी रूप से छिपे हुये हैं । अर्थात् नेत्र तथा, नख के नेत्रे करके व्याप्त है । हे भगवन् आप ही हिरण्यरेता है । अर्थात् याचद्वस्तु मात्र का जो प्रकाश है उस प्रकाश का भी प्रकाश और वस्तु मात्र को प्रकाश करने वाले आप ही हो । यथा "तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वं मिदं विभाति" जिस परमात्मा के प्रकाश करने पर यह सर्व जगत् प्रकाश हो रहा है उसी परमात्मा के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है यथा "तेजस्तेजस्विता महम्" तेजवान् पदार्थ के तेज हम हैं । यहाँ श्री परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण चन्द्र जू महाराज जू के वचन से सिद्ध हुआ कि जितने नारायण महानारायणादि परमात्मा कहे जाते हैं सब का चैतन्य करता मैं हूँ तिन श्रीकृष्ण चन्द्र सर्व शिरोमणि तिन का प्रकाश कर्त्ता श्री रघुनन्दन जू हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं और हिरण्य प्रदायी नाम प्राणी मात्र में जो कुछ चलना फिरना कार्य करने की जो शक्ति, उस शक्ति को प्रदान करने वाले आप ही हैं ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार है ॥२२॥

नमो मत्स्यादि रूपाय नमः कौस्तुभवक्षसे ।

नमो वेदान्त वेद्याय नमः श्रीवत्स धारिणे ॥२३॥

हे भगवन् सम्पूर्ण जगत् का प्रलय हो जाने पर अपने अंश करके अर्थात् चरण चिन्ह आदि अंशों से मत्सरूप को धारण करके परम धर्म का उपदेश करते हुये ऋषियों के सहित आपने वैवस्वत मनु की रक्षा किया ऐसे मत्स्य रूप आप को बार-बार नमस्कार है ।

इसी प्रकार से तीन तीन कार्य्यों के वास्ते आप ने कच्छपादि रूप को धारण किया है ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार है और हे भगवन् आप के वक्षस्थल में

कौस्तुभमणि विराजमान हैं ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार हैं और हे भगवन् आप चक्षुरादि इन्द्रियाँ और मन बुद्धि चित्त अहङ्कार इन सबों से आप नहीं जाने जाते, ज्ञानी पुरुष आपको केवल वेदान्त शास्त्र के द्वारा आप के स्वरूप को किंचित जानते हैं अर्थात् यथार्थ रूप से अपनी कृपा से ही निज भक्तों को हृदय में जानते हो, ऐसे हैं अर्थात् यथार्थ रूप से अपनी कृपा से ही निज भक्तों को हृदय में जानते हो, ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं और हे भगवन्! आपने अपनी इच्छा से ही श्री वत्स चिन्ह को धारण किया है अर्थात् श्री किशोरी जू के बिना एक क्षण मात्र भी नहीं रहते ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं " यथा:—

श्री वत्स कौस्तुभोऽस्कांमुक्ताहारोपशोभितम् ।

श्री वत्स और कौस्तुभ तथा मुक्ताहार इस करके शोभायमान हैं ॥२३॥

नमस्ते पद्मनाभाय पाञ्चजन्य धराय च ।

वासुदेव नमस्तुभ्यं देवकीनन्दनाय च ॥ २४ ॥

हे भगवन्! आप के अंशों ने सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा को उत्पन्न करने के वास्ते नामी से कमल को उत्पन्न किया इस हेतु आप पद्मनाभ हैं ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार हैं पुनः हे भगवन् आप वैद्यों को उद्धार करने के वास्ते पञ्च जन नाम वाले दैत्य को मारकर उसका भङ्ग जो पाञ्चजन्य नाम शङ्ख तिसको धारण किया ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं और हे भगवन् सम्पूर्ण जगत आप के मध्य में वास करता है और आप सब जगत् के विषे अन्तर्यामी रूप से वास करते हो इस हेतु आप वासुदेव कहे जाते हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं पुनः हे भगवन् आप अपने एक अंश से देवकी देवी के गर्भ से प्रादुर्भाव हुये इस वास्ते आप देवकी नन्दन कहे जाते हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं ॥२४॥

नमोदैत्य महारण्य दाव वह्निस्वरूपिणे ।

दैत्य द्रुम कुठाराय नमस्ते शार्ङ्गपाणये ॥२५॥

हे भगवन्! आप दैत्य रूप जो महाघोर वन हैं तिसको भस्म करने के वास्ते वन के अग्नि का स्वरूप हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं पुनः हे भगवन् दैत्य रूप जो महान वृक्ष हैं तिसको जड़ से काटने के वास्ते आप कुठार स्वरूप हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं पुनः हे भगवन् आप भक्तों की रक्षा के वास्ते सदा काल शार्ङ्ग नाम का धनुष को धारण करते हैं इस वास्ते आप शार्ङ्गपाणि हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हैं ॥२५॥

नमः कौमोदकी व्युग्र कराग्राय गदाधर ।

महादनुज नाशाय नमो नन्दक धारिणे ॥२६॥

हे भगवन् अत्यन्त उग्र जो कौमोदको नाम की गदा वह आपके हस्त कमल में विराजमान है अर्थात् आपके अंश कला विभूतियों में शोभित है इस हेतु आप गदाधर कहे जाते हैं अथवा आप के चरण के विषे गदा का चिन्ह है वह समस्त गदाधारियों का कारण है ताते आप गदाधर कहे जाते हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् ! महान् जो दानव हैं तिनको आप अपने अंशों के द्वारे नाश करने वाले हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है " पुनः हे भगवन् आप नन्दक नाम के षड्ग को धारण किये हुये हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२६॥

नमस्ते श्रीपते तुभ्यं नमश्चक्रधराय च ।

धराधराय वाराह-रूपिणे परमात्मने ॥२७॥

हे भगवन् आप श्री नाम शोभा अर्थात् शृङ्गार तिनके अधिदेव अर्थात् श्री कृष्ण चन्द्र तिनके भी पति हैं अथवा श्री नाम शृङ्गार अर्थात् उज्ज्वल रस मवानु-रक्त भक्त जनों करके की हुई आप की सेवा उस सेवा को प्रसन्नता पूर्वक अङ्गीकार करने वाले पति आप हैं अथवा श्री नाम सम्पति तिसको जो देवता तिसके भी पति हैं । अथवा श्री नाम जो लक्ष्मी तिन के मुख्य पति आप ही हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है, पुनः आप भक्तों के रक्षा निमित्त सुदर्शन नाम के चक्र को धारण करते हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् आप अपने अंश कला से समुद्र के मध्य से वाराह रूप होकर हिरण्यवक्ष नाम दैत्य को मारकर पृथ्वी का उद्धार किया ऐसे वाराह रूप आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् ! आप जीवात्मा से परे जो परमात्मा है उनके भी आत्मा हैं ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार है ॥२७॥

गदिने चक्रिणे तुभ्यं दैत्य चक्रविमर्दिने ।

वलाय वलभद्राय वलाराति प्रियाय च ॥२८॥

हे भगवन् आप गदा और चक्र को धारण किये हुये दैत्यों की सेनाओं को नाश करने वाले हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् वल नाम पुरुषों के अन्तर्गत जो पुरुषार्थ से आप ही हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् वलभद्र नाम श्री कृष्णचन्द्र जू के ज्येष्ठ भ्राता दुष्टों के नाश करने वाले वलराम प्रबल से भी आप ही हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है । पुनः हे भगवन् वलाराति प्रिय नाम इन्द्र के प्रिय छोटे भ्राता उरेन्द्र अर्थात् वाच भगवान् आप हैं अर्थात् यह सब आपही के अंश, कला, विभूति हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२८॥

रावणारे नमस्तुभ्यं विभीषणवरपूद ।

अजाय जयरूपाय रणाङ्गण विहारिणे ॥२८॥

हे भगवन् एक आप ही महत् विशिष्ट रूप से प्रतापी नाम रावण को मार कर विभीषण को अभय प्रदान करने वाले हैं ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् आप अज हैं । क्षण भर भी नित विहार को नहीं त्यागते अथवा, शुभाशुभ कर्म के अधोन होकर जन्म नहीं होता आप स्वतन्त्र हैं ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् आप पुण्य युद्ध रूप आग में विहारी विहार करने वाले, अथवा युद्ध रूप आंगने में विहार करने वाले जय रूप कीर्ति के स्वरूप हैं ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार है ॥२८॥

अण्डजाय नमस्तुभ्यं स्वेदजाय नमोनमः ।

जरायुज स्वरूपाय नमोद्भिजस्वरूपिणे ॥३०॥

हे भगवन् जड़ भूत जो पक्षी आदि से उत्पन्न हुआ अण्डा उसके मध्य में नेत्र, नखादि तेजों के द्वारा प्रवेश करके चैतनशक्ति प्रदान द्वारा तीन तीन योनि के जीवों को उत्पन्न करने वाले ऐसे अण्डज रूप आप को बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् स्वेद नाम पसीना मनुष्यादि शरीर से उष्णता करके उत्पन्न हुआ जल का बिन्दु तिसके विषे प्रवेश करके चैतन शक्ति प्रदान द्वारा जूआं मत्कुण आदिक (चीलर खटमल आदिक) जीवों को उत्पन्न करने वाले ऐसे स्वेदज रूप आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् स्त्री तथा गौ आदिक के गर्भ में प्रवेश करके चैतन शक्ति प्रदान द्वारा मनुष्य तथा पशु समूह को उत्पन्न करने वाले ऐसे जरायुज स्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् वृक्षादि वीजों में प्रवेश करके तीन तीन जाति के वृक्षों को उत्पन्न करने वाले ऐसे उद्भिज स्वरूप आप को बारम्बार नमस्कार है ॥३१॥

नमस्ते परमानन्द दनुजेन्द्र निषूदन ।

नमो गोपाल रूपाय वेणुवादनकारिणे ॥ ३१ ॥

हे भगवन् आप प्रधान दैत्यों को नाश करके स्वयं परमानन्द में स्थित हैं अर्थात् महद् प्रधान द्वितीये विग्रह से दैत्यों को नाश करते हो आप तो स्वयं परमानन्द ही में सर्वदा रत रहते हो । ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है पुनः हे भगवन् आप एक अंश से गोपाल रूप हो वेणु की ध्वनि को करने वाले हो ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार है । गोपाल शब्द को विस्तार से देखना हो तो ऊर्ध्व पृष्ठ मीमांसा में देख लेंगे । (गोपाल शब्द के एक अंश होने में प्रमाण) कृष्णः शृङ्गार

मूर्तिः स्यादुबुन्दावन विभूषणः । बुन्दावन को विभूषित करने वाले श्री कृष्णजी हैं
 सो श्री रघुनन्दन जू के शृङ्गार मूर्ति हैं ॥३२॥

सर्वेषां च हृषीकाणामीशत्वं परमेश्वर ।

हृषीकेशेति विख्यातो यः सर्वत्र संस्थितः ॥३३॥

हे भगवान् ईश्वर नाम अनन्त अवतार, महानारायण, नारायण, वासुदेव,
 ब्रह्मा विष्णु शिवादिक इनके भी परमेश्वर आप ही हैं पुनः हे भगवान् हृषीक नाम
 जो सम्पूर्ण इन्द्रिय वर्ग तिन का अपने २ विषयों में प्रवृत्त होने से आपका हृषी
 केश यह नाम प्रसिद्ध है पुनः आप अपने महा तेज कर सम्पूर्ण में सर्व व्याप्त हैं ॥३३॥

इति स्तुत स्ततो धाता गोविन्दो गरुड ध्वजः ।

पूत्युवाच ततः प्रीतो वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥३४॥

जब इस प्रकार से ब्रह्माने स्तुति की तब गरुड है ध्वजा में तिनके ऐसे
 इन्द्रियों तथा ब्रह्माण्डों के नियन्ता महा विष्णु तथा विष्णु तिन को आनन्द देने वाले
 भक्तवत्सल भगवान् श्रीरघुनन्दन जू प्रसन्न हुये श्रीब्रह्माजी के प्रति बोले हे ब्रह्मन् ! हम
 तुम्हारे इच्छित वरदान को देने वाले प्राप्त हैं ॥३४॥

श्री भगवानुवाच ।

इदं स्तोत्रं वरं यस्तु पठिष्यति समाहितः ।

त्रिसन्ध्यं मनुजस्तस्य पापं यास्यति संशयम् ॥३५॥

और जो कोई प्राणी एकाग्रचित्त से इस सर्वोत्तम स्तोत्र को प्रातः मध्याह्न
 सायंकाल यह त्रिकाल पाठ करेगा उस प्राणी का सम्पूर्ण पाप है सो नाश को प्राप्त
 होगा ॥३५॥

न तस्य सदनं लक्ष्मी परित्यक्ष्यत्यसंशयः ।

न जनन्या वियोगश्च तद्वन्धु कलहोदयः ॥३६॥

यह निश्चय है कि उस प्राणी के गृह को लक्ष्मी कभी परित्याग न करेगी और
 उन के वन्धु वर्ग में कलह तथा माता वियोग कभी न होगा ॥३६॥

ब्रह्म स्तुतिरियं पुण्या महापातक नाशिनी ।

ब्रह्महाऽपि विशुध्येत का कचेतर पापिनाम् ॥३७॥

यह परम पवित्र ब्रह्म स्तुति है सो महापापों को नाश करने वाली है इस ब्रह्म
 स्तुति के करने से और पापियों का तो क्या वार्ता है किन्तु ब्रह्म हत्या करने वाला
 भी पुरुष शुद्ध हो जाता है ॥३७॥

महा पुण्यस्य जननी महा सम्पत्ति दायिनी ।

स्वर्गलोक प्रदात्री च महा व्याधि विनाशिनी ॥३८॥

महान पुण्य को उत्पन्न करने वाली है और महा सम्पत्ति को देने वाली है पुनः
स्वर्ग लोक के प्राप्त करने वाली है महान रोगों को नाश करने वाली है ॥३८॥

यस्यास्ति परमा भक्ति मयि निर्मल चेतसः ।

ब्रह्म स्तुतिरियं तस्य यथा मत्प्रीति कारिणी ॥३९॥

जिस निर्मल अन्तःकरण वाले पुरुष को हमारे विषय उत्तम भक्ति उसी पुरुष
के लिये यह ब्रह्म स्तुति है सो हमारे विषय यथार्थ प्रीति कराने वाली है ॥३९॥

समस्त तीर्थ स्नानेन यत्फलं लभ्यते नरः ।

तत्फलं समवाप्नोति पाठ मात्रान्न संशयः ॥४०॥

सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने से प्राणी है सो जो फल को प्राप्त होता है उस
फल को इस ब्रह्म स्तुति के पाठ मात्र से प्राणी प्राप्त हो जाता है ॥४०॥

सन्तिस्तोत्राण्यनेकानि मम प्रीति कारिण्य च ।

ब्रह्मस्तुतेर्न चैतस्याः कलामर्हन्ति षोडशीम् ॥४१॥

यद्यपि हमको प्रसन्न करने के वास्ते बहुत से स्तोत्र हैं तथापि वे सब
स्तोत्र इस ब्रह्म स्तुति के सोलहवीं कला को भी नहीं प्राप्त हो सकते हैं ॥४१॥

इति श्री बृहद्रामायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद बिहारी शर्मा

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

नामाष्टमोऽध्यायः ॥



नवमोऽध्यायः ।

श्री अगस्त्य उवाच ।

अथ ब्रह्मा समामाद्य बहुगौरव पूर्वकम् ।

उवाच वचनं देवं लक्ष्मी नारायणं हरिं ॥१॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा जू बड़े आदर पूर्वक हाथ जोड़े हुये समीप में प्राप्त होकर वह दिव्य रूप वाले तथा भक्तों के वलेश को हरण करने वाले शोभा विशिष्ट श्री सीताराम जी के प्रति यह वाक्य बोले कि आप लक्ष्मी, नारायण के कष्ट को दूर करने वाले हो । यथा—

कि मैनाक कि खगपति होई,

मम बल जान सहित पति सोई ।

ताते श्री सीताराम जू को सर्वोपरि जानिये ।

क्योंकि स्तुति श्री सीताराम जी की कीर्तन रूपा उपासना करना ब्रह्माजी का सिद्ध होता है बिना श्रीसीताराम जू के, बिना कोटि कल्प पर्यन्त नाना प्रकार के साधन करने पर भी श्री रघुनन्दन जू को कदापि प्रसन्नता नहीं होती किन्तु संसार छूटने में संदेह नहीं ताते उपासना दर्शाया । शिव वाल्मीकि आदिक ऋषियों के सिद्धान्त पूर्व कथन कर चुके हैं स्पष्ट है ताते यहां श्री सीताराम द्विभुज सनातन एक रस सिद्धान्त जानेंगे । अथ नारायण शब्द का अर्थ श्रवन कीजिये यथा—नर तीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः ॥ नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणोति विदुर्वुधाः । तान्य दस्यायनपूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ श्री रघुनन्दन जू में नर नाम सनातन परमात्मा में अयन नाम निवास स्थान करने से नारायण कहे जाते हैं इस वास्ते द्विभुज नर वही यहां पर नारायण हैं और नर श्रीराम जी ही को कहते हैं क्योंकि श्री वाल्मीकि रामायण के बाल काण्ड के प्रथम सर्ग में लिखा है श्री नारदजी ने वाल्मीकि प्रति कहा किः—

वहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणः । मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तै युक्तः श्रूयतां नरः ॥ इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ हे मननशील जो जो गुण आपने कीर्तन किया तीन २ गुणों करके युक्त पुरुष बहुत से होना तो दुर्लभ है किन्तु ज्ञान चक्षु से देख करके हम कहेंगे । तुम सुनो तीन तीन गुणों करके युक्त पुरुष केवल नर है अर्थात् जहां तक प्रभो ! सुने जाने जाते हैं सो सब नारी हैं अर्थात् आधीन हैं न कि स्वतन्त्र हैं, ताते

परमात्मा है अर्थात् सब का आरमा है जो कि इस्वाकु महाराज के वंश में प्रगट हुये हैं सर्व लोक में प्रसिद्ध है अर्थात् सर्वलोक पति का इष्ट है अर्थात् सब ध्यान करते हैं सब के अभीष्ट का पूर्ण प्रदाता है श्रीराम ऐसा मधुर नाम है इससे नर पद करके श्रीरामजू केवल कहे जाते हैं । यदि कोई कहे नारायण पद से लक्ष्मीकांत विष्णु कहे जाते तो इसको पूर्व भी व्याख्या कर चुके हैं तथा थोड़ा ध्रुवण कीजिये । यह कहना कैसे बन सकता है श्रीरामजू के महा प्रस्थान के समय में ब्रह्माजी और श्रीरामजू के सम्वाद है (ब्रह्माजी ने कहे हैं) भ्रातृभिः सहदेवामैः प्रविशस्वस्विकां तनुम् । यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम् ॥ वैष्णवीं वा महातैजो यद्वाकाशं सनातनम् । त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित्प्रजानते ॥ दिव्य तेज करके युक्त जो आप के भ्राता हैं इन भ्राताओं के सहित आप अपने शरीर में प्रवेश कीजिये । यद्यपि यह सम्पूर्ण जगत् आप ही का शरीर है तथापि जिस शरीर में आप प्रवेश करने की इच्छा करते हो उस शरीर में आप प्रवेश कीजिये । अथवा आकाश नाम सनातन जो माया से परे निर्विकार दिव्य गुण विशिष्ट जो आप का स्वरूप है उसमें आप प्रवेश कीजिये तथा विष्णु के शरीर में प्रवेश कीजिये । यह सब अनुभव कहा तथापि यथार्थ न जाना पुनः कहा सो आगे स्पष्ट है । हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण लोक के गति नाम प्राप्त, गति गमन, गति होय, गति ज्ञान, योग्य तत्त्व पदार्थ है आप के स्वरूप को यथार्थ कोई भी नहीं जानता, ताते आप सब के बीजरूप हैं ताते सर्व संबन्धित हैं ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच ।

यदि देव प्रसन्नोऽसि मम प्रीति विवर्धन ।

वरमेकं प्रदातव्यं तच्च निर्वाण कारकम् ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले हे देव आप दर्शन देकर मेरे को परमानन्द की वृद्धि किया और यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तो सर्व प्राणियों को संसार रूप दुःखों से निवृत्त करने वाला एक वरदान दीजिये ॥ २ ॥

मूर्ति मे देहि देवेन्द्र स्थापनार्थं प्रयत्नतः ।

प्रतिमां स्थापयिष्यामि नराणां हितकाम्यया ॥ ३ ॥

हे देवेन्द्र आप अपनी विग्रह स्थापन करने हेतु दीजिये प्राणियों का हित करने की इच्छा से हम आप की विग्रह को प्रयत्न से स्थापन करेंगे ॥ ३ ॥

श्रुत्वा विधातुर्वचनं परं निर्वाण कारकम् ।

उवाच वचनं तत्र सर्व लोक हिताय च ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्र को प्राप्त करने वाली ब्रह्मजु के वाक्य को सुन कर यह श्रीरघु-
नन्दनजु सर्व लोक के हित करने हेतु यह बोले ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

समेयं प्रतिमा तात द्वादशाङ्गुल सम्मिता ।

स्वयं व्यक्तो भविष्यामि यज्ञवेद्यां न संशयः ॥ ५ ॥

श्रीरघुनन्दनजु बोले हैं तात इस तुम्हारे यज्ञ वेदी के विषे हम स्वयं व्यक्त
प्रगट होंगे अर्थात् मूर्ति बनाने का प्रयोजन नहीं हम स्वयं मूर्ति हो जायगे इसमें
संदेह नहीं यह बारह अङ्गुल की प्रमाण वाली हमारी प्रतिमा लोजिये ॥ ५ ॥

स्थापनां कुरु मन्मूर्तेर्हितं तव भविष्यति ।

येनेदं निश्चल स्थानं यज्ञ वेद्याम्भविष्यति ॥ ६ ॥

तुम्हारा मंगल होगा इस हमारी मूर्ति की स्थापना करो जिसे करके इस
यज्ञ वेदी के विषे हमारा अवल स्थापन होगा ॥ ६ ॥

नार्यावर्तं समो देशो न ब्रह्मसदृशी पुरी ।

न राघव समोदेवः क्वापि ब्रह्मायुध गोलके ॥ ७ ॥

आर्यवर्त देश के सदृश और कोई देश नहीं है और ब्रह्मपुरी के सदृश कोई
पुरी नहीं है (जिस भूमि में यज्ञ वेदी है उसको ब्रह्मपुरी कहते हैं) और कहीं भी
इस ब्रह्माण्ड में श्रीरामजी के सदृश और कोई देवता नहीं है ॥ ७ ॥

सन्ति स्वर्गा बहुविधाः सुखेतर विवर्जिताः ।

सुकृतैकफलाः सर्वे युक्ताः सर्व समृद्धिभिः ॥ ८ ॥

दुःख से रहित पुण्य का एक फल रूप ऐसे स्वर्ग अनेकों प्रकार के हैं और
सम्पूर्ण ऐश्वर्य करके युक्त हैं ॥ ८ ॥

स्वर्लोकादधिकं रम्यं नास्ति ब्रह्मायुध गोलके ।

सर्वे यतन्ते स्वर्गाय तपो दान जपादिभिः ॥ ९ ॥

इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत स्वर्ग लोक से अधिक रमणीय और कोई भी नहीं
है यह स्वर्ग, वैकुण्ठ के वाचक जानेंगे, सम्पूर्ण लोक है सो तप करके दान करके
जप करके स्वर्ग लोक के वास्ते यत्न करते हैं ॥ ९ ॥

स्वर्लोकाद्रमणीया च पुरी ब्रह्म प्रतिष्ठिता ।

सन्ध्या शेषेत्वनुप्राप्ते चेताया द्वापरस्य च ॥ १० ॥

ब्रह्मा से प्रतिष्ठित हुई ब्रह्मपुरी है सो स्वर्ग लोक से भी रमणीक है और
प्रेता और द्वापरयुग मध्य में अवशिष्ट जो सन्धि तिसके प्राप्त होने पर ॥ १० ॥

अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः ।

त्वदादयोऽपि ये देवा भविष्यन्ति वनौकसः ॥ ११ ॥

सम्पूर्ण जगत् को पालन करने वाले हम श्रीदशरथ पुत्र राम होकर अवल्लरण
होंगे और तुम्हारे सहित जो प्रधान देवता है सो जानर होंगे ॥ ११ ॥

महाबला महावीर्याः शक्रतुल्य पराक्रमाः ।

ते सहाया भविष्यन्ति सुरकार्ये स्वयम्भुवः ॥ १२ ॥

वह बड़े बलवान् और बड़े २ वीर्य शाली इन्द्र के सहस्र पराक्रम वाले जानर
तुम्हारे देवताओं के कार्य में सहायक होंगे ॥ १२ ॥

पितु राज्ञाम्पुरस्कृत्य कैकेयी वरदानतः ।

जानकी लक्ष्मणोपेतो वसाम्पत्र न संशयः ॥ १३ ॥

कैकेयी के वरदान से पिता की आज्ञा को मान करके श्रीजानकी लक्ष्मणलालजू
के सहित इस यज्ञ वेदी के चिये निवास करेंगे ॥ १३ ॥

पुण्या लीलां करिष्यामि यां श्रुत्वा मोक्षमाप्नुयात् ।

ततो रक्षःपति रौरपौलस्त्य कुलपांसनम् ॥ १४ ॥

और ऐसी पवित्र लीला करेंगे कि जिस को सुन कर प्राणी मोक्ष को प्राप्त
होंगे इसके अनन्तर पौलस्त्य ऋषि के वंश में महा नीच लोक को भयङ्कर राज्ञसों
का पति ॥ १४ ॥

हनिष्यामि न सन्देहो रावणं लोककण्टकम् ।

पर्यास्विनी ब्रह्म कुण्डाद्भविष्यति नदी परा ॥ १५ ॥

ऐसे सर्व लोक का कंटक रावण नाम राज्ञस को हनन करेंगे इस में सन्देह
नहीं और ब्रह्मकुण्ड से पर्यास्विनी नाम की नदी उत्पन्न होगी ॥ १५ ॥

ममरूपा महा भागा परम निर्वाण दायिनी ।

पुरीमध्ये समुत्पन्ना गायत्री नाम सा सरित् ॥ १६ ॥

वह पर्यास्विनी नाम साक्षात् मेरी ही रूप है और परम मोक्ष पद को देने
वाली है, और पुनः पुरी के मध्य में से एक नदी उत्पन्न होगी जिस का गायत्री
ऐसा नाम है ॥ १६ ॥

शीतांशात्सा समुत्पन्ना भविष्यति न संशयः ।

पयस्विनी देवगङ्गा गायत्रीति सरित्रयम् ॥ १७ ॥

यह गायत्री नदी भी जनक नन्दनी जू के अंश से उत्पन्न होगी इसमें सन्देह नहीं पयस्विनी तथा मन्दाकिनी और गायत्री यह सब तीनों नदी है सो ॥१७॥

तासां सुषंगमं पुण्यं तीर्थं घृन्द सुषेवितम् ।

प्रयागं राघवं नाम भविष्यति न संशयः ॥ १८ ॥

संपूर्ण तीर्थों करके सेवित परम पवित्र इन सब नदियों का सङ्गम ओ राघव प्रयाग नाम का होगा इसमें सन्देह नहीं ॥१८॥

घृतकुल्या मधुकुल्या दधिकुल्या तथैव च ।

कुल्याशर्करायाश्च भविष्यन्ति चतस्रतः ॥ १९ ॥

घृत कुल्या, तथा मधु कुल्या, और दधि कुल्या, तथा शर्करा कुल्या, यह सब चार कुल्या होंगी ॥१९॥

चत्वारस्तु तत् वेदा भविष्यन्ति तदानघ ।

ऋग्यजुः सामाचर्वाख्या भविष्यन्ति प्रतिष्ठिताः ॥ २० ॥

नदी भूता पुण्यतमा मन्दाकिन्यां च संगता ।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम वेद, अथर्वण, वेद यह सब चारों वेद हैं सो परम पवित्र नदी रूप से उत्पन्न होंगे और वहाँ पर प्रतिष्ठित होंगे और मन्दाकिनी में सङ्गम हो जायेंगे ॥२०॥

कामधेनुरिदं क्षेत्रम्परं निर्वाण कारकम् ॥ २१ ॥

दापयिष्यन्ति ये तात पितृणां तृप्तिहेतवे ।

पिण्ड प्रदानं तेषां तु पितरः स्वर्ग वासिनः ॥ २२ ॥

परम मोक्ष को देने वाली यह क्षेत्र साक्षात् काम धेनु रूप है और हे तात जो पुरुष पितरों की तृप्ति के हेतु पिण्ड प्रदान देवों में उनके पितर स्वर्गवासी होंगे ॥२२॥

दशाश्वमेधिकं नाम तत्तीर्थम्पाप नाशनम् ।

तस्य दर्शन मात्रेण सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ २३ ॥

पुनः वहाँ पर दशाश्वमेध तीर्थ है वह तीर्थ सर्व पापों को नाश करने वाला है इसके दर्शन मात्र से प्राणी सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है ॥२३॥

संस्पर्शाचमनाभ्यां च राजसूय फल पुदम् ।

फलगुतीर्थे नरः स्नात्वा संतर्प्य पितृ देवताः ॥ २४ ॥

यह तीर्थ स्पर्श, आचमन करने से राज सूय यज्ञ के फल को देने वाले हैं और वहाँ पर फल्गु, तीर्थ है जिसमें प्राणी स्नान कर देवता और पितरों का तर्पण करते हैं ॥२४॥

तत्फलं समवाप्नोति यदत्र श्राद्धकर्मणि ।

गुरुपुष्ये च द्वादश्या व्यतीपातो यदा भवेत् ॥ २५ ॥

जो अभ्युषे तीर्थ के श्राद्ध करने से फल होता है वही फल है सो फल्गु तीर्थ में देवता और पितरों के तर्पण से होता है और गुरुवार के दिन पुष्य नक्षत्र में अथवा द्वादशी के दिन यदि व्यतीपात होय तब ॥२५॥

तदा श्राद्धः प्रकर्तव्यो दत्त्वा कोटि गुणं लभेत् ।

यत्फलं समवाप्नोति पितृन् संतर्प्य पुष्करे ॥ २६ ॥

तत्फलं कोटि गुणितं प्रयागे राघवाभिधे ।

संतर्प्य देवता पितृन्दत्त्वादानं स्वशक्तितः ॥ २७ ॥

उस समय में वहाँ पर श्राद्ध करना चाहिये और दान देना चाहिये जिस दान करके कोटि गुण फल प्राप्त होता है और पुष्कर क्षेत्र में पितरों को तृप्त करने से जो फल होता है उसका कोटि गुण फल ओ राघव प्रयाग के विषे देवता तथा पितरों के तर्पण से और यथा शक्ति दान देने से होता है ॥२६॥

प्रातः स्नात्वा जलं पीत्वा ह्यवगाहन्ति ये नराः ।

एकादशी व्रतं कृत्वा पिवन्ति प्रसृति त्रयम् ॥ २८ ॥

जो प्राणी प्रातःकाल में स्नान करके और जल मात्र को पान करके पुनः स्नान करके एकादशी का व्रत रहते हैं पुनः द्वादशी को तीन बिलुआ जल पान करते हैं ॥२८॥

तेषां चित्ते प्रविशति मम मूर्तिर्न संशयः ।

उपास्य सन्ध्यां विधि वदत्पापं काल लोपजम् ॥ २९ ॥

संशयेन तदपाकृत्य ज्ञानवान् जायते द्विजः ।

उनके हृदय में हमारी मूर्ति निवास करती है इसमें संदेह नहीं । और जो

बहुत काल से उत्पन्न हुआ प्राचीन पाप है उस पाप को श्री राघव प्रयाग पर सन्ध्योपासना करने से क्षण मात्र में दूर करके ब्राह्मण जानवान् हो जाता है ॥२६॥

चतुर्णामपि वेदानांपुण्यमध्ययनेन यत् ॥ ३० ॥

अष्टाङ्ग योगाभ्यासेन यत्पुण्यमुपजायते ।

चारों वेदों के पाठ करने से जो पुण्य होता है और अष्टाङ्ग योग के अभ्यास करने से जो पुण्य होता है ॥३०॥

स्नानेन सर्व तीर्थानां यत्स्यात्सुकृतसंचयः ॥ ३१ ॥

तत्पुण्यं समवाप्नोति त्रिरात्रमुषितो नरः ।

प्रयागं राघवंप्राप्य सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ३२ ॥

और सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान से जो पुण्य का सञ्चय होता है । उस पुण्य के सञ्चय को संपूर्ण तीर्थों में उत्तम से उत्तम जो पुण्य है सो श्री राघव प्रयाग तिसको प्राप्त होकर पुरुष तीन रात्रि निवास करने से प्राप्त होता है ॥३२॥

यत्किञ्चित्क्रियते कर्म तदक्षयमिहोच्यते ।

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ॥ ३३ ॥

और जो प्राणी श्री राघव प्रयाग के विषे स्नान तथा दान अथवा जप होम जो कुछ कर्म करता है वह कर्म का फल नाश नहीं होता ॥३३॥

दशाश्वमेधिके तीर्थे सकृत्कृत्वा नरोत्तमः ।

सन्ध्योपास्यां तर्पणीं च श्राद्धं पितृ समर्चनम् ॥ ३४ ॥

तत्र ब्रह्मेश्वरं दृष्ट्वा ब्रह्म लोके महीयते ।

सन्ध्योपासन तर्पण श्राद्ध पितरों की पूजा यह सब कर्म दशाश्वमेध तीर्थ के विषे एक बार जो कोई प्राणी करता है तथा ब्रह्मेश्वर नाम महादेव का दर्शन करता है वह प्राणी ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥३४॥

होमं कृत्वा विधानेन देहत्यागं करोति च ॥ ३५ ॥

स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचापि न गोचरम् ।

विधि पूर्वक हवन कर के और शरीर को परित्याग करता है वह प्राणी ऐसे फल को प्राप्त होता है जो कि वाणी से भी न कहा जाय ॥३५॥

इह तस्य फलस्यान्तः पूलयेऽपि न जायते ॥ ३६ ॥

इस लोक में उसके फल का नाश प्रलय काल में भी नहीं होता ॥३६॥

चित्तशठ्यं परित्यज्य ब्राह्मणान् भोजयेत्तु यः ।

तेन दत्तो भवेन्मेरुर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ३७॥

धन की कृपणता को परित्याग करके जो कोई प्राणी ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं उस प्राणी ने मानो मेरु का प्रदान किया यह निश्चय है इसमें कुछ विचार नहीं करना अर्थात् उसका पुण्य मेरु पर्वत के सदृश अधिक होगया ॥३७॥

वापी कूप तडागादि शक्त्या योऽत्र प्रकाशयेत् ।

अन्यत्र करणात्तस्य पुण्य कोटि गुणाधिकम् ॥ ३८ ॥

पुनः इस भूमि में बावड़ी कूप तालाब इत्यादि जो कोई प्राणी अपने शक्ति के अनुसार खोदावते हैं उन पुरुषों को और जगह से कोटि कोटि गुण अधिक पुण्य होता है ॥३८॥

इत्यार्यमत्र यः कुर्यात्सुरभ्यां पुष्पवाटिकाम् ।

पुष्पे पुष्पे फलं तस्य सुवर्णं कुसुमाधिकम् ॥ ३९ ॥

जो कोई प्राणी भगवत् पूजन के निमित्त सुन्दर रमणीक पुष्प बाटिका लगवाते हैं उन प्राणी को एक एक पुष्प के विषे सुवर्ण का पुष्प दान देने से अधिक पुण्य होता है ॥३९॥

अत्र ब्रह्मपुरीं कृत्वा यो विप्रेभ्यः प्रयच्छति ।

वर्षाशनेन संयुक्तां तस्य पुण्य फलं शृणु ॥४०॥

जो कोई प्राणी एक वर्ष के भोजनादिक से निर्वाह के सहित ब्रह्मपुरी निर्माण करके ब्राह्मणों को दान देता है उन पुरुषों के फल को सुनो ॥४०॥

स्यो न तस्य पुण्यस्य मम लोके महीयते ।

मठानपि तपस्विभ्यः कारयित्वा ददाति यः ॥४१॥

उसके पुण्य के फल का कभी नाश नहीं होता वह प्राणी हमारे लोक में सदा पूजित रहता है और जो कोई प्राणी मन्दिर बनवा कर तपस्वी जन अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियों को निरोध करने वाले श्री सीताराम जू के चरणारविन्द में मन को लगाये है ऐसे माहात्मा को देते हैं ॥४१॥

जीवनोपायं संयुक्तान् सोऽपि पूर्वफलाश्रयः ।

और उसमें जीविका भी प्रदान करते हैं वह प्राणी भी श्री सीताराम जी के लोक में सत्कार को प्राप्त होते हैं ।

अपिहवाच ।

स्वयम्भुवं समादिश्य जगाम गाम् गरुणध्वज ॥४२॥

श्री भगवन् जी बोले—इस प्रकार से श्री भगवान् गरुणध्वज” अर्थात् गरुण है जिनके ध्वजा में ऐसे जो विष्णु तिन करके चरण सेवित जो श्री रघुनन्दन जू ब्रह्मा जू को उपदेश करके चले गये ॥४२॥

इदं च महदारुणानं यः पठेत्पाठयेद्य ।

सविष्णु लोकमाप्नोति जायते विष्णु बल्लभः ॥ ४३ ॥

जो प्राणी इस परम उत्तम कथा को पाठ करते हैं अथवा पाठ करवाते हैं वह प्राणी श्री विष्णु के लोक में पूजित होते अर्थात् श्री विष्णु भगवान् पूजन करते, भगवत् भागवत् के अभेद बुद्धि करके और श्री विष्णु भगवान् के अति प्रिय होते हैं” उसके पश्चात् अपने इष्ट धाम को प्राप्त होते हैं ॥४३॥

पितामहस्य चरितं प्रसङ्गेन स्मरन्ति ये ।

न पापैरभिभूयन्ते महत्पुण्यमवाप्नुयुः ॥ ४४ ॥

इस ब्रह्मा जी के चरित्र को जो कोई प्राणी क्रम से स्मरण करते हैं उन पुरुषों को पाप का भय नहीं होता अत्यन्त श्रेष्ठ पुण्य को प्राप्त होते हैं ॥४४॥

इति श्री बृहद्रामायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

नवमोऽध्यायः ॥



अथ दशमोऽध्यायः ।

श्री सुतीक्ष्ण उवाच ।

किं चकार ततो ब्रह्मा सर्वं लोकं नमस्कृतः ।

एतन्मे वाञ्छितं तात सफलं कर्तुमर्हसि ॥ १ ॥

श्री सुतीक्ष्ण जी बोले—हे तात जब श्री रामजी चले गये इसके पीछे श्री ब्रह्मा जी ने क्या किया आप कृपा करके यह हमारे प्रश्न रूप मनोरथ को सफल कीजिये ॥१॥

श्री अगस्त्य उवाच ।

ततः स्वयं भुवो देवः सर्वलोकं नमस्कृत ।

क्षेत्रपालं च तत्क्षेत्रे कर्तुं चैव मतो दधौ ॥ २ ॥

श्री अगस्त्य जी बोले—श्री राम जी के चले जाने पर संपूर्ण लोक अर्थात् चतुर्दश लोक जिनको नमस्कार करते हैं ऐसे श्री ब्रह्मा जी ने श्री धनुष क्षेत्र में क्षेत्रपाल बनाने का निश्चय किया ॥२॥

महल्लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य शम्भवं भूरि भावनः ।

मत्तगेन्द्रेति नामेदं क्षेत्रपालं समादधे ॥ ३ ॥

बड़े स्नेह करके युक्त श्री ब्रह्मा जी ने एक शिवजी के बड़े भारी लिङ्ग को स्थापन करके उनको क्षेत्रपाल रूप निश्चय करते भये जिसका मत्तगेन्द्र ऐसा नाम है ॥३॥

स्तुतिं चकार भगवन् नृषिभिः सहितः सुधीः ।

नमः शिवाय सोमाय रुद्राय वरदाय च ॥ ४ ॥

परम ज्ञानवान् श्री ब्रह्मा भगवान् ऋषियों के सहित स्तुति करते भये ब्रह्मा जी बोले महाराज आप मङ्गल रूप हैं ऐसे आपको नमस्कार है पुनः आप चन्द्रमा रूप हैं ऐसे आप को नमस्कार है पुनः आप भयङ्कर रूप हैं ऐसे आपको नमस्कार है पुनः प्रसन्न होने पर आप वरदान भी देते हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥४॥

पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ।

नमः शान्ताय चोराय मुशान्ततपमीडुषे ॥ ५ ॥

हे भगवन् संसार रूप बन्धन में विशेष रूप से फंसे हुये जो जीव सो पशु हैं तिनको आप पालन करते हो ऐसे आपको नमस्कार है पुनः नित्य उग्र नाम स्वरूप से आप तमो गुण के अधिष्ठातृ देवता हो ऐसे आपको नमस्कार है पुनः कपर्दी नाम जटा बन्धन से आप युक्त हो पुनः आप शान्त रूप हो पुनः घोर रूप हो ऐसे आपको नमस्कार है पुनः आप सुन्दर शान्त जो तेज विशेष उस करके उत्पन्न हुई वृष्टि द्वारा लोक रक्षक हो ऐसे आपको नमस्कार है ॥५॥

गणेश जनकायैव वीरभद्र प्रियाय च ।

नमः काम प्रमथन रामचन्द्र प्रियाय च ॥ ६ ॥

हे भगवन् आप गणेश जी के पिता हो तथा वीरभद्र को परम प्रिय हो अथवा आपको वीरभद्र परम प्रिय हैं ऐसे आप को नमस्कार है पुनः आप कामदेव को नाश करने वाले हो तथा श्री रघुनन्दन जू आपको परम प्रिय हैं अथवा श्री रघुनन्दन जू के आप परम प्रिय हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥६॥

दक्ष यज्ञ विनाशाय यज्ञ सन्धान हेतवे ।

नमः काशीश्वरायै पार्वती वहलभायच ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! आप दक्ष प्रजापति के यज्ञ को नाश करने वाले हो पुनः उस यज्ञ को उद्धार करने वाले हो ऐसे आपको नमस्कार है पुनः आप काशी जी के पति हो पुनः पार्वती के प्राणप्रिय हो ऐसे आपको नमस्कार है ॥७॥

नमस्ते जगदीशाय चन्द्रचूडाय ते नमः ।

नमस्ते नीलकण्ठाय त्रैलोक्यपतये नमः ॥ ८ ॥

हे भगवन् आप जगत के स्वामी हैं ऐसे आपको नमस्कार है पुनः चन्द्रमा आपका चूडामणि है ऐसे आपको नमस्कार है पुनः श्री राम नाम के प्रभाव से आपने हलाहल विष को पान किया जिस करके आप नीलकण्ठ हो ऐसे आपको नमस्कार है, उस विष को पान कर सब लोक को रक्षा किया ऐसे आपको नमस्कार है" तीन उपलक्षण हैं किन्तु चौदहों लोक की रक्षा किया ।

गङ्गाधराय शर्वाय नमः कैलास वासिने ।

कालिका पतये तुभ्यं नमोऽङ्कार स्वरूपिणे ॥ ९ ॥

हे भगवन् आप ने मस्तक पर गंगाजी को धारण किया । आप सम्पूर्ण जगत् को लय करने वाले हो पुनः आप कैलास पर्वत पर निवास करते हो ऐसे आप को नमस्कार है पुनः आप कालिका के पति हो पुनः आप प्रणव स्वरूप हो ऐसे आपको नमस्कार है ॥९॥

आशु तोषाय नाथाय देवानां वरदाय च ।

कपर्दिने नमस्तुभ्यं योगदेशाय ते नमः ॥१०॥

हे भगवन् आप बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हो सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी हो आप वरदान के देने वाले हो ऐसे आपको नमस्कार है आप ने मुण्ड की माला को धारण किया है पुनः आप योग मार्ग के प्रवर्तक हैं ऐसे आप को नमस्कार है ॥१०॥

अद्भिधदाय नमस्तुभ्यं सिद्धिदाय नमोनमः ।

स्वभक्त पक्षपातेन परपक्ष विनाशिने ॥ ११ ॥

अद्भि तथा सिद्धि को देने वाले आप को बारम्बार नमस्कार है और अपने भक्त के पक्षपात करके पराये पक्ष को नाश करने वाले हो ऐसे आपको नमस्कार है ॥११॥

नमस्तुभ्यं महेशाय महते भूरितेजसे ।

एवं स्तुतो जगद्धात्रा ग्राह देवो महेश्वरः ॥१२॥

हे भगवन् ! सम्पूर्ण देवताओं में आप महेश्वर हैं सब के महान् हैं साक्षात् ज्योति स्वरूप हैं ऐसे आपको नमस्कार है । संसार की रचना करने वाले श्रीब्रह्माजी ने जब इस प्रकार से स्तुति किया तब श्री महादेवजी बोले ॥१२॥

श्रीमहादेव उवाच ।

क्षेत्रं श्री चित्रकूटाख्यां पालयिष्यामि सर्वदा ।

अस्मिन् मृतान् जीव गणान् बैकुण्ठं प्रेषयामि च ॥१३॥

श्री महादेवजी बोले, यह श्रीचित्रकूट नाम का जो क्षेत्र है तिस को हम सदा काल पालन करेंगे और इस क्षेत्र में जो कोई भी जीव गण प्राण परित्याग करेंगे तिन को हम बैकुण्ठ लोक को भेजेंगे ॥१३॥

ये नराः प्रातरुत्थाय तीर्थे कैलास संज्ञके ।

स्नात्वा लिङ्गं समर्चन्ति मतगेन्द्रेति नामकम् ॥१४॥

जो प्राणी प्रातःकाल में उठ करके यह कैलास नाम का जो तीर्थ है इस तीर्थ के विषे स्नान करके मतगेन्द्र नामक लिङ्ग की पूजा करते हैं ॥१४॥

स्तोत्रेण त्वत्कृते नैव स्तुतिं कुर्वन्ति ये नराः ।

तेषामृद्धिं प्रदास्यामि स्थानस्य स्थिरतां तथा ॥१५॥

और जो कोई तुम्हारे किये हुये स्तोत्र करके स्तुति करते हैं उन प्राणियों को महा समृद्धि हम देते हैं और उनके स्थान को बहुत काल तक स्थिर कर देते हैं ॥१५॥

जो मे
कीजि

स्वा
है ॥

बोह
ऐसे
प्रस

पुत्र पौत्रादि सम्पत्तिमायुरारोग्यमेव च ।

एवमुक्त्वा विधातारं स्थितं चक्रे महेश्वरः ॥ १६ ॥

और पुत्र पौत्रादि के सहित सम्पत्ति तथा आयु की वृद्धि और आरोग्यता यह सब उस को हम देते हैं श्री महादेवजी ब्रह्मा से इस प्रकार कह कर वहां पर अपनी स्थिति करते भये ॥१६॥

चकार रक्षां तीर्थस्य महर्षीणां तथैव च ।

प्रातरुत्थाय यः स्नात्वा लिङ्गमभ्यर्च्य शास्त्रभवम् ॥ १७ ॥

और उस श्री चित्रकूट तीर्थ की तथा महर्षियों को रक्षा करते हुये जो कोई प्राणी प्रातःकाल उठकर स्नान करके श्री शिव लिङ्ग का पूजन करता है ॥१७॥

नारी वा पुरुषो वापि मनसेप्सितभाग्भवेत् ।

त्रिजन्म जनितं पार्यं हित्वा पुण्यमयो भवेत् ॥ १८ ॥

स्त्री अथवा पुरुष कोई भा हो वह मनोरथ पूर्ति का भागी होता है । तीन जन्म से उत्पन्न हुये पाप को छोड़ कर वह पुण्यमय हो जाता है ॥१८॥

दर्शनात्पूजनात्सद्यो वैकुण्ठ फल दायकः ।

इति ते कथिता तात तवप्रश्नानुसारतः ॥ १९ ॥

यह श्री शिवजी तत्काल ही दर्शन से तथा पूजन से वैकुण्ठ रूप फल के अधिकार के दाता होते हैं । अगस्त्यजी बोले हे तात तुम्हारे प्रश्न के अनुसार यह कथा हमने तुम से कहा ॥१९॥

अतः परं द्विजश्रेष्ठ किं वदामीति तद्वद ।

हे द्विजों में श्रेष्ठ इस से आगे अब कौन सी कथा कहें सो कहो ।

सुतीक्ष्ण उवाच ।

ब्रह्मकुण्डस्य चोत्पत्तिं तथा माहात्म्यमुत्तमम् ॥ २० ॥

आख्यानं श्रोतुमिच्छामि वद सर्वमशेषतः ।

सुतीक्ष्ण जी बोले—भगवन् जिस प्रकार से ब्रह्मकुण्ड की उत्पत्ति हुई और जिस प्रकार का उनका माहात्म्य है सो कथा को हम श्रवण करने की इच्छा करते हैं उस कथा को सम्पूर्ण कहिये ॥२०॥

पयस्विन्याः समुत्पत्तिः कस्मिन् काले बभूव ह ॥ २१ ॥

तदशेषं महाप्राज्ञ वदस्व करुणाकर ।

हे महाप्राण परस्विनी की उत्पत्ति किस समय में हुई । हे करुणानिधान इस कथा को समझ कहिये ॥२१॥

श्री भगवत्स्य उवाच ।

शृणु पुत्र कथामेतां सर्व पापहरां पराम् ॥ २२ ॥

पुरा कृत युगे देवो देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सह ।

चकार यज्ञान् विधिवत्कुरुष्व कृत्वा प्रसन्नधी ॥ २३ ॥

भगवत्स्यजी बोले—हे पुत्र सम्पूर्ण पाप को हरण करने वाली इस कथा को सुनो ॥२२॥ प्रथम सत्ययुग में बड़े प्रसन्न चित्त हुये ब्रह्माजी ने ब्रह्म ऋषियों के सहित कुण्ड बना कर विधि पूर्वक बहुत से यज्ञ किया ॥२३॥

महत्समाजोऽस्य भवद्देवानां तत्र पुत्रक ।

तस्मिन् देव समाजे च ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २४ ॥

हे पुत्र वहाँ पर देवता और महात्माओं का समाज हुआ उस देवताओं के समाज में सर्व लोक के पितामह श्री ब्रह्माजी ने ॥२४॥

चकार पूजां विधिवद्विष्णोरतुल तेजसः ।

कमण्डलु जलेनैव प्रक्षाल्याद्भिघ्नमुदारधीः ॥ २५ ॥

नहीं तुलने योग्य है प्रभाव जिनका ऐसे सर्व व्यापक परमात्मा श्रीरघु नन्दन जी विधि पूर्वक पूजन किया उदार बुद्धि वाले श्रीब्रह्माजी ने प्रथम अपने कमण्डलु के जल से श्री रघुनन्दन जी के चरणों को प्रक्षालन करके ॥२५॥

पूजनं कृतवान् सम्यक् सर्वलोक हिताय च ।

नारायणस्य चरणात्पयोरूपा परस्विनी ॥ २६ ॥

सर्व लोक (शब्द जीव वाचक है) अर्थात् सम्पूर्ण जीव मात्र के हित के हेतु विधि पूर्वक पूजन किया इसके अनन्तर नारायण करके सेवित जो चरण श्री सीतारामजी के चरण से दुग्ध रूप होकर परस्विनी नाम की जड़ी है सो ॥२६॥

देवानां पर्यतां तत्र समुद्भूता च पुण्यदा ।

तदा जयेति त्रिबुधैर्ध्वनिरुज्झारिता शुभा ॥ २७ ॥

देवताओं के देखते हुये लोक के पुण्य देने वाली अर्थात् पवित्र करने वाली सम्यक् प्रकार से उत्पन्न हुई उसी समय में देवताओं ने जय २ ऊँचे स्वर से मातृलीक शब्द को उच्चारण किया ॥२७॥

पयस्विनी नाम गंगा ब्रह्मकुण्डे समागता ।

तदा विधातुः कुण्डेति नाम्ना ख्यातित्वमागतः ॥ २८ ॥

पुनः पयस्विनी नाम के गङ्गा ब्रह्मकुण्ड में आकर प्राप्त हुई तब ब्रह्मकुण्ड नाम की प्रसिद्धि को प्राप्त हुई ॥ २८ ॥

पुराचेता युगे तात देवीदासेति ब्राह्मणः ।

कुरुक्षेत्र निवासी च तस्य पुत्रोऽभवत्किल ॥ २९ ॥

हे तात प्रथम चेतायुग में एक देवी दास नाम के ब्राह्मण रहे वह कुरुक्षेत्र भूमि के रहने वाले रहे उनको एक पुत्र हुआ ॥ २९ ॥

जन्म मात्रं द्विवज्रत्वं च चौर कर्म रतस्सदा ।

महापराध संयुक्तः पापी जीव विहिंसकः ॥ ३० ॥

वह केवल जन्म मात्र से तो ब्राह्मण रहा परन्तु चोरी कर्म में सदा तत्पर रहता था महा घोर पापों करके युक्त रहा और जीवों की हिंसा करने वाला महा पापी रहा ॥ ३० ॥

सुदामा नाम दुर्वृद्धिः सर्व सत्त्व विहिंसकः ।

स गत्वा विंध्यस्याटवीमाखेटक परायणः ॥ ३१ ॥

सुदामा नामक वह दुष्टात्मा सम्पूर्ण जीवों की हिंसा करने वाला रहा वह एक समय मृगया परायण हुआ विन्ध्य गिरि के वन में जाय पहुँचा ॥ ३१ ॥

स पापमूर्तिर्दुष्टात्मा तदा सर्पेण दंशितः ।

तस्यास्थि गंगा जलेन ब्रह्म कुण्डे समागतम् ॥ ३२ ॥

जब वह पाप का विग्रह दुष्टात्मा विन्ध्यावन में गया तब उसको सर्प ने काट लिया इस से मृत्यु को प्राप्त होगया उस को हट्टी गङ्गा जल के प्रवाह में पड़ कर बहती हुई ब्रह्मकुण्ड में आकर प्राप्त हुई ॥ ३२ ॥

तस्य कुण्ड प्रभावेन विमानमगमत्तदा ।

देव लोकं गतः श्रीमान् तदा देवैः प्रपूजितः ॥ ३३ ॥

उस सुदामा को ब्रह्मकुण्ड के प्रभाव से विमान आकर प्राप्त हुआ और परम शोभा को प्राप्त हुआ देवताओं करके पूजित हुआ देव लोक को गया ॥ ३३ ॥

ब्रह्म कुण्ड प्रभावश्च राजासीत्पृथिवीपतिः ।

जानको नाम धर्मात्मा मिथिलाधिपसत्तमः ॥ ३४ ॥

१३८

को सः

पुनः कालः व्यतीतः होने पर वह पृथिवी के पति राजा हुये वह मिथिला देश के प्रधान राजा हुये जनक जी के वंश में उत्पन्न होने से जनक उनका नाम हुआ बड़े धर्मात्मा हुये ॥ ३४ ॥

इति कुण्डस्य माहात्म्यं कथितं द्विजसत्तम ।

यस्य संसर्गमात्रेण द्विजः पापात्ममोचितः ॥ ३५ ॥

हे द्विजों में भ्रेष्ठ इस प्रकार से कुण्ड का माहात्म्य हम ने तुम से कहा जिस के सम्बन्ध मात्र से वह ब्राह्मण पाप से छुट गया ॥ ३५ ॥

हुण्डो ।

हुण्ड

किंपुनः श्रद्धया भक्त्या ये स्नास्यन्ति द्विजोत्तम ।

तेषांपुत्रादि सम्पत्तिर्धनधान्य समृद्धयः ॥ ३६ ॥

हे द्विजों में उत्तम जो प्राणी श्रद्धा और भक्ति से स्नान करते हैं उनको फिर क्या कहना है उन पुरुषों को पुत्र पौत्रादि की वृद्धि तथा धन धान्य की समृद्धि ॥ ३६ ॥

भविष्यन्ति न सन्देहः स्नानदानप्रभावतः ।

प्रयागे राघवे रामः सीता लक्ष्मण संयतः ॥ ३७ ॥

स्नान दान के प्रभाव से सम्पूर्ण होगी इसमें सन्देह नहीं और श्री राघव प्रयाग के विषे श्रीसीता और लक्ष्मणजी के सहित श्रीराम जी ने ॥ ३७ ॥

को ।

जल

वन्यानि कन्दमूलानि गृहीत्वा द्विजसत्तम ।

श्राद्धं चकार विधिवत्पित्रे दशरथाय च ॥ ३८ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ वन में उत्पन्न हुये कन्दमूल को ग्रहण करके पिता श्रीदशरथ जी के निमित्त विधि पूर्वक श्राद्ध करते भये ॥ ३८ ॥

विधि

राम

प्रयागे राघवे तावन्न स्नास्यन्ति द्विजोत्तमाः ।

तावन्न जानकी नाथे भक्तिरुत्पद्यतेऽनघ ॥ ३९ ॥

जब तक श्री राघव प्रयाग के विषे द्विजन्माजन, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा वैष्णव मात्र, जब तक स्नान नहीं करेंगे तब तक श्रीसीताराम जी के विषे शुद्ध भक्ति नहीं उत्पन्न होगी ॥ ३९ ॥

सः

शः

श्रीभृगुण्डिकवान् ।

इदमाख्यानमाकार्ष्य सुतीक्ष्णे द्विजसत्तमः ।

अपिभि सहितः श्रीमान् तीर्थ यात्रार्थमुद्यतः ॥ ४० ॥

भृगुण्ड जी बोले शाण्डिल्य जी से—कि हे द्विजों में श्रेष्ठ श्रीमान् सुतीक्ष्ण जी इस कथा को सुन कर अपिप्यों के सहित तीर्थ यात्रा के वास्ते उद्यत हुये ॥४०॥

य इदं शृणुषान्नित्यं पश्चादपि च कीर्तयेत् ।

भवत्यरोगो द्युतिमान् बल रूपसमन्वितः ॥ ४१ ॥

जो कोई प्राणी नित्य प्रति श्रवण करता है तथा पीछे भी इसको कीर्तन करता है वह प्राणी रोग से रहित हो जाता है और बड़ा कान्तिवान् बल और रूप करके युक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं भक्तो भक्तिगतिं व्रजेत् ।

इदमाख्यानमाकार्ष्य गच्छेद्देशान्तरं नरः ॥ ४२ ॥

जो प्राणी भगवत् स्वरूप के जिज्ञासु है उनको ज्ञान प्राप्त होता है और जो भक्त है वह भक्त गति अर्थात् श्रीसीताराम जी के चरण कमल को प्राप्त होते हैं और जो प्राणी इस कथा को सुन कर देशान्तर को जाते हैं ॥ ४२ ॥

चौर व्याघ्र पिशाचाद्यैर्नाभिभूयेत कुत्रचित् ।

अपुत्रो लभते पुत्रान् कन्या चैवेप्सितं पतिं ॥ ४३ ॥

वह प्राणी को चौर, व्याघ्र और पिशाच यह सब कदापि कहीं भी पराभव नहीं कर सकते और पुत्र से होन प्राणी पुत्रों को प्राप्त होता है और कन्या है सो अपने योग्य पति को प्राप्त होती है ॥ ४३ ॥

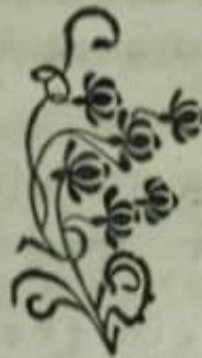
लग्नगर्भा विमुच्येत गुर्विणी जनयेत्सुतं ।

वन्ध्या प्रसवमाप्नोति पुत्रं पौत्रं समृद्धिनी ॥ ४४ ॥

जिस स्त्री का गर्भ सक हो गया अर्थात् फलेश करके युक्त हुई गर्भ से बाल को बाहर करने में असमर्थ हो रही हो वह स्त्री इस कथा के प्रभाव से दुःख से छूट जाती है और जो स्त्री गर्भ वाली है वह स्त्री इस कथा के प्रभाव से सुन्दर पुत्र को

वश्यम् करती है और जो बन्ध्या स्त्री है वह सुन्दर प्रसव की प्राप्ति हुई पुत्र पीत्रादि
सुख ऐश्वर्य वाली हो जाती है ॥ ४५ ॥

इति श्रीबृहद्रामायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीतारामीय
परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण
कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका
नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



एकादशोऽध्यायः ।

शांडिल्य उवाच ।

कथं श्रीरामचन्द्रस्य भक्तिरुत्पद्यते नृणाम् ।

सर्वं पापं प्रशमनी तद्वदस्व कृपानिधे ॥ १ ॥

श्रीशांडिल्य जी बोले—हे भगवन् प्रणियों को श्रीसीताराम जी की भक्ति कैसे उत्पन्न होती है हे कृपानिधे । जिस भक्ति करके सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है ऐसे भक्ति के स्वरूप को आप कहिये ॥ १ ॥

भुशुण्डिरुवाच ।

साधु पृष्टं त्वया तात सर्वं लोक हिताय च ।

भक्ते रहस्यं वक्ष्यामि यथा रुद्रमुखाच्छ्रुतम् ॥ २ ॥

श्रीभुशुण्डि जी बोले—हे तात ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया जिस प्रकार का भक्ति का रहस्य हमने शिव के मुख से सुना है वैसे ही हम तुम्हारे से कहेंगे ॥ २ ॥

एकदा पार्वती देवी योगिध्येयपदाम्बुजम् ।

अस्तर्निमीलिताक्षं तं पर्यपृच्छत्प्रियं सती ॥ ३ ॥

एक समय में पार्वती देवी ने योगी जन जिन के चरण कमल को ध्यान करते हैं ऐसे ध्यानावस्थित हुये नेत्र को बन्द किये हुए बैठे श्रीशिव जी से पूछा ॥ ३ ॥

पार्वत्युवाच ।

देव देव जगन्नाथ जगदुत्पत्ति कारक ।

भक्ते रहस्यं मे स्वामिन् कथयस्व विचार्य च ॥ ४ ॥

श्री पार्वती जी बोली—हे देवों के देव आप जगत् उत्पत्ति करने वाले हैं और जगत् के स्वामी हैं हे स्वामिन् आप कृपा करके भक्ति के रहस्य को विचार करके कहिये ॥ ४ ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि भक्तेर्माहात्म्यमुत्तमम् ।

इति पृष्टस्तदा देवः पार्वत्या करुणाकरः ॥ ५ ॥

हे भगवान् मैं इस समय उत्तम जो भक्ति का माहात्म्य तिस को अवलोक करने की इच्छा करती हूँ जब पार्वती जी ने इस प्रकार से पूछा तब कदगा के निधान श्रीशिव जी ने ॥ ५ ॥

श्री महादेव उवाच ।

उवाच तां परं तत्त्वं मेघ गम्भीरया गिरा ।

धन्यासि कृत पुण्यासि कृतार्थासि वरानने ॥ ६ ॥

प्रशंसा करते हुये श्री शिव जी कहने लगे—तुम धन्य हो तुमने बहुत सा पुण्य किया है तुम कृतार्थ हो ऐसा कह कर मेघ के सदृश गम्भीर वाणी से परम तत्त्व को कहते भये ॥ ६ ॥

श्रीरामोपासनायांते यज्जाता बुद्धिरीदृशी ।

अर्बुद कोटि वर्षं तु भवत्युद्भिज जातिषु ॥ ७ ॥

पुनः कहने लगे—श्रीसीताराम जी की उपासना में तुम्हारी इस प्रकार की बुद्धि है सो तुम धन्य हो यह जीव है सो कोटि अर्बुद वर्ष पर्यन्त उद्भिज जाति नाम अर्थात् वृक्ष जाति में उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

भ्रमते कर्मभिर्जीवो तत्रप्राणप्रिये सति ।

ततो निःसृत्य सततं याति स्वेदजतां पुनः ॥ ८ ॥

यह जीव इस प्रकार अपने कर्मों करके भ्रमण करता है । हे प्राणप्रिये, हे स्त्री इसके अनन्तर स्थावर योनि से निकल कर स्वेदज नाम जूका मक्कुणादि योनि में जाता है ॥ ८ ॥

दैवाधीनात्ततो देवि प्रयात्यण्डजतां पुनः ।

जीवस्तत्र फलं भुङ्क्ते ह्यभद्रकर्मभिर्युतः ॥ ९ ॥

हे देवी देव के आधीनता से पुनः पक्षी आदि योनियों में जाता है यह जीव उस योनि में भी अनेक जन्मों के पाप रूप कर्मों से युक्त हुआ तीन तीन फलों को भोग करता है ॥ ९ ॥

निःसृत्य सततो जीवो भूयो याति जरायुजः ।

केनचित्पुण्ययोगेन गोयानिं लभते पुनः ॥ १० ॥

हे देवी पुनः अण्डज योनि से निकल कर यह जीव जरायुज अर्थात् गोमनुष्यादि योनि में जाता है पुनः पूर्ण जन्म के कोई एक पुण्य के योग से यह जीव गो योनि का प्राप्त होता है ॥ १० ॥

ततोऽपि मायया मुह्यन् शूद्राज्जन्म प्रजायते ।

तत्र प्रारब्ध योगेन यदि पुण्यं प्रजायते ॥ ११ ॥

इस के अनन्तर भगवान् की माया करके मोहित हुआ शूद्र से जन्म होता है पुनः उस योग में प्रारब्ध योग से यदि पुण्य हुआ ॥ ११ ॥

तर्हि वैश्यगृहे जन्म सम्प्राप्नोति न संशयः ।

ततः पुण्यवशाद्देवि क्षत्रियाणां कुले भवेत् ॥ १२ ॥

हे देवि पुनः वैश्य के गृह में जन्म को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं पुनः पुण्य के वश से क्षत्रियों के कुल में उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥

राजर्षितां स पुरुषः प्राप्नोति प्राणवहस्रभे ।

ततो यदृच्छया देवि ब्राह्मणाज्जायते जनः ॥

यदि चेत्त साधुः स्याद्ब्रह्मर्षिः पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥

हे प्राण वहलभे क्षत्रिय होने पर सत्कर्म करने से वह राज ऋषि कहा जाता है पुनः पुण्य योग से वह ब्राह्मण से उत्पन्न होता है यदि ब्राह्मण जन्म होने पर सत्कर्मों के अनुष्ठान से साधु नाम पुरुष हुआ तब वह ब्रह्मर्षि कहा जाता है ॥ १३ ॥

यावत्पाप क्षयं पुंसां न भवेज्जन्म संचितम् ।

तावद्ग जायते भक्तिर्वासुदेव जानार्दने ॥ १४ ॥

जब तक प्राणी का अनेक जन्मों करके एकत्र हुआ पाप का नाश नहीं होता तब तक सम्पूर्ण जगत् का निवास भूत तथा सम्पूर्ण जगत के अन्तर्धामी रूप से निवास करने वाले भक्तों के रक्षक श्री कृष्ण जी के विषे भक्ति नहीं होती है ॥ १४ ॥

पाप क्षयश्च भवति या जनाध्ययनेन च ।

अग्नि होत्रादिना देवि भक्ति एनौ प्रजायते ॥ १५ ॥

पुनः ब्रह्मर्षि होने पर यज्ञ करने कराने से वेद पाठ करने से पाप का नाश हो जाता है और अग्नि होत्र करने से अग्नि के विषे भक्ति होती है ॥ १५ ॥

स करोति ततो विप्रो भक्तिं चाग्नौ समाहितः ।

तुष्टे हुताग्ने तत्र भक्तिर्भवति भास्करे ॥ १६ ॥

तब वह ब्राह्मण तत्पर होकर अग्नि के विषे भक्ति करता है पुनः अग्नि के प्रसन्न होने पर सूर्य के विषे भक्ति होती है ॥ १६ ॥

पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजः ।

॥ प्रसन्ने भास्करे तत्र भक्तिर्भवति शंकरे ॥ १७ ॥

जिसके अनन्तर वह ब्राह्मण नित्य प्रति सूर्य की सेवा करता है पुनः सूर्य के प्रसन्न होने पर शिव जी के विषे भक्ति होती है ॥१७॥

सेवां करोति सततं स च शम्भोः प्रयत्नतः ।

॥ तुष्टे चिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे ॥ १८ ॥

पुनः वह पुरुष प्रयत्न के सहित नित्य प्रति शिव जी की सेवा करते हैं शिव जी के प्रसन्न होने पर पुनः केशव करके चरण सेवित जी श्री रघुनन्दन जू के विषे भक्ति होती है यह भाव अत्यन्त गुह्य है । आगे स्पष्ट है ॥१८॥

विदिते परमे तत्त्वे तदा मुक्तिः पूजायते ।

॥ ताल वृंतेन किं कार्यं लब्ध्वा मलयमारुतम् ॥ १९ ॥

श्री वासुदेव अर्थात् परात्पर ब्रह्म कृष्णचन्द्र की भक्ति हुई उसके साथ ही परम तत्व के लाभ अर्थात् श्री सीताराम जू के नित विहार परम तत्व का लाभ होने पर संसार निवृत्त होता है श्री सीताराम जू के भक्ति प्राप्त होने पर अन्य साधनान्तर का प्रयोजन नहीं रहता जिस प्रकार से किसी पुरुष को शीतल, मन्द, सुगन्ध, मलयाचल की वायु के प्राप्त होने पर पङ्का के वायु की आवश्यकता नहीं रहती इसी प्रकार सहकर्म साधन के सम्पूर्ण नित्य विहार श्री रघुनन्दन जू के प्राप्ति का सहायकारी हैं नित्य विहारी ही प्राणी का अवलम्बन है ॥१९॥

हताशया हतप्राणा निर्लज्जाः पुरुषाः पुनः ।

अन्यान्देवानुपासन्ते मायया मोहिता हरेः ॥ २० ॥

जिस प्राणी का अन्तःकरण मलीन है अलगायु है लज्जा से रहित हुये अर्थात् निर्लज्ज है" श्री भगवान को माया मोहित हुये और अन्य देवताओं को उपासना करते हैं और संसार से निवृत्ति की इच्छा वाले पुरुष तो केवल श्री सीताराम जी की उपासना करते हैं । यथा भागवते" :—

मुमुक्षुर्धोर रूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।

॥ नारायण कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥

निन्दा से रहित हुये संसार से निवृत्त होने की इच्छा वाले प्राणी सो भयङ्कर रूप भूतपति अर्थात् तमोगुण रजोगुण प्रधान देव व कर्म को त्याग कर श्री नारायण

वासुदेव शान्त कला की उपासना करते हैं, जिन उपासना के द्वारे पञ्च शरीर के अभाव होने पर साक्षात् निज स्वामी श्री रघुनन्दन जू को लाभ करके अबल हो जाते हैं ॥२०॥

॥ पूषन्ने यदि गोविन्दे पूषन्नाः सर्व देवता ।

अपूषन्ने यदि हरौ पूषन्नैश्च परैश्च किम् ॥ २१ ॥

मन आदि इन्द्रियों के चेतन शक्ति प्रदान द्वारा पाठन करने वाले श्री सीता राम जी के प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होते हैं यदि श्री रघुनन्दन जू न प्रसन्न हुये तो और देवता कितना हो प्रसन्न हुये तो क्या अर्थात् व्यर्थ है ॥२१॥

कर्मणा मनसा वाचा वासुदेवं यतेन्द्रियाः ।

भजन्ते सर्वलोकेशं ते मोक्षस्याधिकारिणः ॥ २२ ॥

इन्द्रियों को जीते हुये जो पुरुष कर्म काके मन करके वाणी करके सम्पूर्ण लोक के निवास भूत अथवा सम्पूर्ण लोक में निवास करने वाले की सेवा करते हैं तब पुरुष सब के स्वामी श्री सीताराम जी को पाने के अधिकारी होते हैं ॥२२॥

एतदेवं परं ज्ञानमेतदेवं परंतपः ।

एतदेव परो योगवेतदेव हि साधनम् ॥ २३ ॥

यही सब से उत्तम ज्ञान है और यही सब से उत्तम तप है और यही सबसे उत्तम योग है और यही सबसे उत्तम साधन है ॥२३॥

यस्यास्ति परमा भक्तिस्तस्यैव सफलं जनुः ।

तदा भवति योगोऽस्य श्रेष्ठं तत्प्रति साधनम् ॥ २४ ॥

जिस प्राणी को श्री सीताराम जी के विषे परम भक्ति होती है उसी पुरुष का जन्म सफल है क्योंकि भक्ति के होते ही उसके सम्पूर्ण योग्य हो जाता है और सब उसके प्रति साधन समाप्त हो जाता है ॥२४॥

इति ते कथितं देवि रहस्यं सुर दुर्लभम् ।

एतदेव परं तत्त्वं भुशुण्डिर्भगवानृषिः ॥ २५ ॥

शाण्डिल्याय तु कथितं सर्वपातक नाशनम् ॥

ॐ भक्ति वैराग्य विज्ञान सम दान दम नाम आधीन साधन अनेक । तेन तप्तं कृतं दत्तमेवालिप्तं तेन सर्वं कृतं कर्म जालं । येन श्री राम नामासृतं पानं कृतं मुनिसमनवयस्यलोचकालं ॥

श्री महादेव जी बोले—हे देवि यह रहस्य देवताओं को भी दुर्लभ हमने तुम से कहा और इस परम तत्व को भगवान् भृगुणिङ् ऋषि ने शाण्डिल्य जी से कहा और यह रहस्य सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाला है ॥२५॥

एतावदुक्त्वा वचनं परो देवो महेश्वरः ॥ २६ ॥

विरराम महातेजाः सच्चिदानन्द विग्रहः ।

य इदं शृणुयान्नित्यं भक्तेर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ २७ ॥

सर्व देवता से परे उत्कृष्ट श्री महादेव जी इस वाक्य को कह कर चुप हो गये वे कैसे महादेव जी हैं कि सच्चिदानन्द स्वरूप हैं और वह पुरुष उत्तम हैं जो इस भक्ति के माहात्म्य को नित्य प्रति श्रवण करता है ॥२६-२७॥

सभक्ति युक्तः सततं पुत्र पौत्रादि संयुतः ।

इति मुक्त्वा शुभान् भोगान् परलोके महीयते ॥ २८ ॥

वह पुरुष निरन्तर श्री सीताराम जी के भक्ति करके युक्त हुआ पुत्र पौत्रादि से युक्त होता है और इस लोक में सुन्दर दिव्य भोगों को भोग करके श्री सीताराम धाम अर्थात् साकेत में सत्कार को प्राप्त होता है ॥२८॥

इति श्री बृहद्राभायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये सीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्व प्रकाशिका भाषा टीका

नामैकादशोऽध्यायः ॥



द्वादशोऽध्यायः ।

अधिकवाच ।

ततो गिरिवरे रम्ये चित्रकूटे द्विजोत्तमम् ।

मन्दाकिनीं समासाद्य नदीं पाप प्रमोचनीम् ॥ १ ॥

श्री भृगुण्डि जू बोले—हे द्विजोत्तम तिस हेतु से पर्वतों में श्रेष्ठ जो सुन्दर रमणीक श्री चित्रकूट के विषे सम्पूर्ण पापों को छोड़ाने वाले मन्दाकिनी नाम की नदी को प्राप्त होकर ॥१॥

तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृ देवार्चनं ततः ।

प्रदक्षिणां गिरेः कृत्वा सर्वपातक नाशिनीम् ॥ २ ॥

उस मन्दाकिनी में स्नान करे तिस के अनन्तर देवता पितरों का सत्कार करे तब सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली श्री गिरिराज की प्रदक्षिणा करे ॥२॥

अश्वमेधफलं प्राप्य गतिं च परमां व्रजेत् ।

अमावास्यां पौर्णमास्यां सर्वे देवा महर्षयः ॥ ३ ॥

तिस करके वह प्राणी है सो अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होकर उत्तम गति को प्राप्त होता है अमावास्या पूर्णमासी को सम्पूर्ण देवता और महान् २ ऋषि हैं सो ॥३॥

तीर्थ वृन्दानि सर्वाणि स पर्वत वनानि च ।

स्नात्वा मन्दाकिनी तोये यात्रां कुर्वन्ति संघशः ॥ ४ ॥

और सम्पूर्ण तीर्थों के समूह और सम्पूर्ण पर्वत और वन यह सब श्री मन्दाकिनी जी के जल में स्नान करके समूह के समूह सब प्रदक्षिणा करते हैं ॥४॥

दर्शं यात्रां प्रकुर्वन्ति ये नरा भक्ति तत्पराः ।

सर्व तीर्थ फलं तेषां भवत्येव न संशयः ॥ ५ ॥

सेवा में तत्पर हुये जो प्राणी अमावास्या के दिन प्रदक्षिणा करते हैं उन प्राणियों को सम्पूर्ण तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है इस में सन्देह नहीं ॥५॥

ततोच्छे द्विजश्रेष्ठ पूर्वस्यां दिशि संस्थितम् ।

गिरिमङ्गलार्चनां सर्व पातक नाशनम् ॥ ६ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ तिस से पुनः सङ्कर्षण नाम का पर्वत सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाला पूर्व दिशा में स्थित है उस पर्वत को गमन करे ॥६॥

यत्र देवी महादेवः पार्वत्या सहितः प्रभुः ।

नित्यं सन्निहितो देवः सर्व पातक नाशनः ॥ ७ ॥

जिस श्री सङ्कर्षण पर्वत के विषे सम्पूर्ण देवों में प्रधान श्री महादेव पार्वती जी के सहित जो सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाले नित्य प्रति सन्निधि किये हुये हैं ॥७॥

कोटि तीर्थे नरः स्नात्वा गो सहस्र फलं लभेत् ।

पुरा यत्र द्विजश्रेष्ठ कोटि संख्या मुनीश्वराः ॥ ८ ॥

जिस को कोटि तीर्थ भी कहते हैं उस कोटि तीर्थ में प्राणी है सो स्नान करके सहस्र गो दान के फल को प्राप्त होता है । हे द्विजों में श्रेष्ठ ! प्रथम जिस कोटि तीर्थ में एक कोटि मुनीश्वर हैं सो ॥८॥

हर्षणमहता विष्टा देव दर्शनकांक्षया ।

अहम्पूर्वमहम्पूर्वं दृश्यामि राम लक्ष्मणम् ॥ ९ ॥

बड़े हर्ष करके युक्त परस्पर में स्पर्धा किये हुये देव दर्शन की आकांक्षा किये हुये हम प्रथम श्रीराम लक्ष्मण जी को देखेंगे और कोई कहते हैं नहीं २ हम प्रथम श्रीराम लक्ष्मण जी को देखेंगे ॥९॥

इति ते सुमहात्मानस्तपश्चर्यामकुर्वत ।

तेषां प्रसन्नो भगवान् ददौ दर्शनमुत्तमम् ॥ १० ॥

इस प्रकार से वह सब महात्मा तपश्चर्या करते भये तिस के पश्चात् भगवान् श्री रामचन्द्र जी उन महात्माओं को प्रसन्न हुये अपना दिव्य दर्शन तीनों स्वरूप युक्त को देते भये यथा—

दो०—राम वाम दिसि जानकी लपण दाहिनी ओर ।

ध्यान करहु कल्याण मय सुर तह तुलसी तोर ॥

चित्रकूट सष दिन बसत प्रभु सिय लपण समेत ।

॥ १ ॥ राम नाम जप जाप करि तुलसी अभिमत देत ॥

अहम्पूर्वमहम्पूर्वमस्मितास्ते मुनीश्वराः ।

तेषाम्परिश्रमं दृष्ट्वा भगवान् भक्त वत्सलः ॥ ११ ॥

हम प्रथम दर्शन करें हम प्रथम दर्शन करें ऐसा निश्चय किये हुये जो महर्षि हैं उन महर्षियों का परिश्रम देख करके भक्त वत्सल भगवान् श्रीराम जी ने ॥११॥

सृष्ट्वा तु कोटिरूपाणि मुनिनामग्रतः स्थितः ।

मया पूर्वतरं दृष्ट इति ते मेनिरे पृथक् ॥ १२ ॥

एक कोटि रूप को धारण किये हुये सब मुनियों के आगे स्थित होते भये इस प्रकार सब ऋषि परस्पर में पृथक् पृथक् मानते हुये कि सबसे प्रथम हम ही नै दर्शन श्री रघुनन्दन जू तथा श्री किशोरी जू तथा श्री लषण लाल जू का किया ॥ १२ ॥

तेषाम्प्रसन्नः श्रीरामो मुनीनामुग्रतेजसाम् ।

भक्त्या परमया तेषां वरं तेभ्यः प्रदत्तवान् ॥ १३ ॥

महा तेजस्वी ऋषियों की भक्ति करके श्रीसीताराम लक्ष्मणजू के सहित भक्ति प्रसन्न हुये उनको वरदान देते हुये ॥ १३ ॥

अद्य प्रभृति युष्माकं धर्मं बुद्धिर्भविष्यति ।

इति दत्त्वा वरं तेभ्यो ह्यन्तर्धानं गतो हरिः ॥ १४ ॥

आज से लेकर तुम्हारे सबकी धर्म में बुद्धि होगी इस प्रकार से वरदान देकर भक्तों के कलेश को हरण करने वाले श्रीभगवान् अन्तर्धान हो जाते भये ॥ १४ ॥

तत्र स्नात्वा द्विज श्रेष्ठ कोटि तीर्थं समाहितः ।

अश्वमेधमवाप्नोति कोटि तीर्थफलं तथा ॥ १५ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ उस कोटि तीर्थ में एकाग्र चित्त से स्नान करके प्राणी अश्व-मेध यह के फल को प्राप्त होता है तथा एक कोटि तीर्थ के स्नान के फल को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

अग्नि तीर्थं सोम तीर्थं सूर्य तीर्थं तथैव च ।

एवमादीनि तीर्थानि संस्थितानि मुनीश्वर ॥ १६ ॥

और भी वहाँ पर अग्नि तीर्थं सोम तीर्थं सूर्य तीर्थं हैं हे मुनीश्वर यह सब और भी बहुत तीर्थ वहाँ पर स्थित हैं ॥ १६ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं कोटि तीर्थावगर्भितम् ।

अतः शृणु द्विजः श्रेष्ठ ह्यंगनातीर्थमुत्तमम् ॥ १७ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ यह कोटि तीर्थ के अन्तर्गत जो तीर्थ है सो हमने तुम्हारे से कहा अब जो देवांगना नाम का उत्तम तीर्थ है सो तुम सुनो ॥ १७ ॥

तपस्तेषु पुरा तत्र मेनका नाम विश्रुता ।

ब्रह्मादेवो देवगणा वरं तस्यै तदा ददुः ॥ १८ ॥

प्रथम उस भूमि में अप्सराओं में उत्तम जो मेनका नाम की अप्सरा है उसने तप किया इसके अनन्तर देव शिरोमणि ब्रह्माजी ने और सब देव गण ने मिल कर उसको वरदान दिया ॥ १८ ॥

सरस्वती पुण्यतमा नदी त्रैलोक्य पावनी ।

समुद्भूता पुण्यतमा महा पातक नाशिनी ॥ १९ ॥

महा पातकों के नाश करने वाली तीनों लोक पवित्र करने वाली अत्यन्त पवित्रों में पवित्र सरस्वती नाम की नदी वहां पर उत्पन्न हुई ॥ १९ ॥

चैत्र शुक्ल त्रयोदश्यां यात्रा सांख्यतसरी स्मृता ।

अतः परं तीर्थवरं सिद्धाश्रममितीरितम् ॥ २० ॥

एक वर्ष में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को उसको यात्रा कही गई है इससे परे तीर्थों में श्रेष्ठ सिद्धाश्रम नाम का तीर्थ कहा गया है ॥ २० ॥

यत्र श्रीपार्वती नाथः सिद्धरूपो विराजते ।

मुनीश्वराणां सर्वेषां सिद्धिदाता महात्मनाम् ॥ २१ ॥

जिस सिद्धाश्रम में सम्पूर्ण महात्मा मुनि जनों को सिद्धि के देने वाले श्रीमहा-देवजी सिद्धरूप से विराजमान हैं ॥ २१ ॥

तस्यैव पूर्व दिग्भागे कोशमेक प्रमाणतः ।

मणि कर्णिक नामेदं पञ्चतीर्थाविगर्भितम् ॥ २२ ॥

उसी के पूर्व दिशा में एक कोस के दूर पर पञ्चतीर्थों करके युक्त एक मणि कर्णिका नाम का तीर्थ है ॥ २२ ॥

सूर्य तीर्थं वायु तीर्थं चन्द्र तीर्थाग्नितीर्थकम् ।

तीर्थं प्राचेतसं नाम कुण्डमध्ये प्रतिष्ठितम् ॥ २३ ॥

वहां पर सूर्य तीर्थ वायु तीर्थ चन्द्र तीर्थ अग्नि तीर्थ वरुण तीर्थ यह पांच तीर्थ कुण्ड के मध्य में प्रतिष्ठित हैं ॥ २३ ॥

तत्र स्नात्वा नरो धीमान् ब्रह्म लोके महीयते ।

तस्य पूर्व दिशा भागे तीर्थं ब्रह्म हृदं स्मृतम् ॥ २४ ॥

उस मणि कर्णिक तीर्थ में स्नान करने से बुद्धिमान प्राणी ब्रह्म लोक में पूजित होता है पुनः उस मणि कर्णिक तीर्थ के पूर्व दिशा में ब्रह्म सरोवर नाम का तीर्थ है ॥ २४ ॥

तत्र स्नात्वा नर श्रेष्ठः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

ऋषीणां यत्र सञ्चाणि समाप्तानि द्विजोत्तम ॥ २५ ॥

उस ब्रह्म सरोवर में स्नान करने से श्रेष्ठ प्राणी सम्पूर्ण कामना को प्राप्त होता है । हे द्विजोत्तम प्रथम उसी ब्रह्म सरोवर के विषे ऋषियों का यह समाप्त हुआ है ॥ २५ ॥

तस्य दक्षिण दिग्भागे तीर्थं सुग्रीव संज्ञकम् ।

तत्र स्नात्वा द्विजश्रेष्ठ स्वर्णं दानफलं लभेत् ॥ २६ ॥

उस ब्रह्म सरोवर के दक्षिण दिशा में सुग्रीव नाम का तीर्थ है हे द्विजों में श्रेष्ठ उस सुग्रीव तीर्थ में स्नान करने से प्राणी है सो सुवर्ण दान के फल को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

ततः परं तीर्थं वरं यमद्वारेति नामकम् ।

तस्य दर्शनमात्रेण यमलोकं न गच्छति ॥ २७ ॥

उससे परे तीर्थों में श्रेष्ठ यमद्वार नाम का तीर्थ है उस यमद्वारतीर्थ के दर्शन मात्र करने से प्राणी यम लोक को नहीं जाता है ॥ २७ ॥

तस्य चोत्तर दिग्भागे तीर्थं सङ्कर्षणं स्मृतम् ।

तस्मिन् तीर्थवरे विपुलज्जनीनन्दनः पूभुः ॥ २८ ॥

उस यम द्वार के उत्तर दिशा में सङ्कर्षण नाम का तीर्थ कहा है उस सङ्कर्षण तीर्थ के विषे ब्रह्माण्ड समर्थ ज्जनी नन्दन श्रीहनुमान् जी हैं सो ॥ २८ ॥

चित्रकूटस्थितं रामं जानकीलक्ष्मणान्वितम् ।

ब्रह्मरुद्रमहेन्द्रादिमुनि सिद्ध निसेवितम् ॥ २९ ॥

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं तस्मिन् तीर्थवरे स्थितः ।

श्री चित्रकूट में विराजमान ब्रह्मा और महादेव तथा इन्द्रादि देवता और मुनि गण तथा सिद्धगण यह सब जिसकी सेवा करते हैं श्रीकिसोरीजू तथा श्री लक्ष्मणलाल जू करके संयुक्त श्याम सुन्दर शरीर ऐसे श्री रामजी को ध्यान करते हुये तीर्थों में श्रेष्ठ जो संकर्षण तीर्थ है तिस के विषे विराजमान है ॥ २९ ॥

यत्र पाताल गङ्गा सा पावनी पाप कारिणाम् ॥ ३१ ॥

दक्षिणाङ्गे हनुमतः पपात भुवनेश्वरी ।

स्नात्वा पाताल गङ्गायां पूजयित्वा हरीश्वरम् ॥ ३१ ॥

पुनः जिस संकर्षण तीर्थ में पाप करने वाले प्राणियों के पवित्र करने वाली लोक के भानन्द देने वाली पाताल गंगा है सो श्री हनुमान् जी के दक्षिण भुजा भङ्ग पर गिरती हुई उस पाताल गंगा में स्नान करके श्री हनुमत लाल की पूजा करके ॥३१॥

दानं दत्त्वा द्विजातिभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

वैशाख शुक्ल पूर्णमास्यां यात्रा साम्बत्सरी स्मृता ॥ ३२ ॥

और ब्राह्मणों को दान देकर प्राणी है सम्पूर्ण पापों से छुट जाता है और एक वर्ष में वैशाख शुक्ल पूर्णमासी को वहाँ की यात्रा (सम्मेलन) कही गई है ॥३२॥

अन्यदा भीमवारेस्याद् यात्रा चेष्ट फलप्रदा ।

इतिते कचितं तात पूर्वस्यां दिशि यानि च ॥ ३३ ॥

अतः परं द्विजश्रेष्ठ रामतीर्थ वरं शृणु ।

सब महीनों में सम्पूर्ण मनोरथ रूप फल को देने वाली यात्रा मङ्गलवार को कही गई है । हे तात यह पूर्व दिशा के तीर्थों को हमने तुम्हारे से कहा है हे द्विजों में श्रेष्ठ इस से परे श्री सीताराम जी के श्रेष्ठ तीर्थों को सुनो ॥३३॥

इति श्री बृहद्भामायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

नामद्वादशोऽध्यायः ॥



त्रयोदशोऽध्यायः ।

परिपूर्वम् ।

ततः पारिप्लवं गच्छेत्तीर्थं त्रैलोक्यपूजितम् ।

अग्निष्टोम त्रिरात्रिभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १ ॥

श्री भृगुषिंह जी बोले उस संकल्पन तीर्थ से पारिप्लव (प्रमोदवन) नाम के तीर्थ को जाय यह तीर्थ तीनों लोक करके पूजित है उस तीर्थ में तीन रात्रि निवास करने से प्राणी अग्निष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ॥१॥

तस्य दक्षिण भागे च सोता कुण्ड विराजते ।

यत्र श्री रामचन्द्रोऽनौ सीतया सहितः सुधीः ॥ २ ॥

उस पारिप्लव (अर्थात् प्रमोदवन) तीर्थ के दक्षिण भाग में सोता कुण्ड नाम के तीर्थ अर्थात् श्री जानकी कुण्ड नाम से प्रसिद्ध विराजमान है जिस श्री जानकी कुण्ड में सम्पूर्ण जगत् के अपार भूत श्री सीताराम जू जानकी जी के सहित ॥२॥

विहारं कुरुते नित्यं कोटिकन्दपं कान्तिभृत् ।

तस्याङ्घ्रिरेणुर्यत्रैव पर्वतत्वमुपागमत् ॥ ३ ॥

कोटि कामदेव की शोभा को धारण किये हुये नित्य प्रति विहार करते हैं और वहां पर श्री सीताराम जू के चरण का रत्न है सो पापनश्य हो जाता भया ॥३॥ और था जानकी कुण्ड का प्रमाण भी वशिष्ठ सहिता में है जैसे कि :—

दक्षिणस्यां दिशि श्रीमान्कोमलाया गिरिर्महान् ।

भ्राजते चित्रकूटोऽनौ चिन्मयानन्द मूर्तिमान् ॥ ४ ॥

श्री अयोध्या जू के दक्षिण भाग में परम शोभायमान साक्षात् चेतनमय आनन्द की मूर्ति श्री चित्रकूट नाम का महान पर्वत विराजमान है ॥४॥

नाना रत्नमयैः शृङ्गैर्विचित्रैश्चित्रपादपैः ।

सुधा स्वादु फलै रम्यैः पुष्प भाराविलम्बिभिः ॥ ५ ॥

अनेक प्रकार के रत्नमय शिखरों करके युक्त और पुष्पों के भार के सहित विशेष लम्बायमान और सुधा के समान स्वादु घाटे फलों करके युक्त जो सुन्दर रमणीक नाना प्रकार के चित्र विचित्र वृक्ष तिन करके शोभायमान यह पर्वत है ॥५॥

लता जाल वितानैश्च गुञ्जद्भ्रमर सङ्कुलैः ।

मत्तकोकिल सद्गादैः कूजद्भिश्चित्रपक्षिभिः ॥ ६ ॥

नाना प्रकार की जो लताओं का समूह सोई मानो तम्बू के सदृश हो रहे और गुञ्जर शब्द करते हुये जो भ्रमर के समूहों करके और मतवाले कौकिलों के सुन्दर शब्दों करके और बोलते हुये नाना प्रकार के चित्र विविध पक्षियों करके शोभायमान वह पर्वत है ॥६॥

नृत्यन्मत्तमयूरैश्च निर्भरैः निर्मलाम्बुभिः ।

सीतायां सह रामस्य लीला रसविवर्धन ॥ ७ ॥

नृत्य करते हुये मतवाले मयूरों करके तथा निर्मल जल वाले झरनों करके शोभायमान तथा श्री किशोरी जू तथा सखियों के सहित श्री रघुनन्दन जी के लीला रूप रस की वृद्धि करने वाला वह पर्वत है ॥७॥

चिद्रूपाकाञ्चनी भूमिः सर्व रत्नैर्विचित्रिता ।

समन्तात्पर्वतेन्द्रस्य दिव्य कानन मण्डिता ॥ ८ ॥

उस श्री गिरिराज के चारों दिशा में नाना प्रकार के रत्नों करके रची हुई सुन्दर दिव्य बनों करके शोभायमान मानों साक्षात् चेतन मय सुवर्ण की भूमि है ॥८॥

यत्र मन्दाकिनीरम्या स्ववती श्रीमती नदी ।

मणि निर्मलतोया च वज्र वैडूर्य बालुका ॥ ९ ॥

जिस पर्वतराज के समीप में सुन्दर रमणीक मन्दाकिनी नाम की नदी बहती है इन्द्रनील मणि के सदृश निर्मल स्वच्छ जिन का जल है और वज्र और वैडूर्यमणि के सदृश जिनका रेत है ॥९॥

मन्दाकिनी जले पीतरक्त श्यामऽसिताः ।

हरिद्रारक्त कपिश धूम्रामास्तु शिलानव ॥ १० ॥

एताः पिबति यो नित्यं मासमेकं तु वारिणा ।

प्रवसा वा भवेत्सम्यक् सर्व सिद्धि युतो नरः ॥ ११ ॥

मन्दाकिनी के जल में पीत, रक्त, श्याम, नील, हरा, गुलाबी, चित्र और धूम्र ये नववर्ण की शिला होती है इन्हीं को लेकर जल के साथ अथवा दुग्ध के साथ १ मास पीये तो सर्व सिद्धि होती है । यह श्री जानकी कुण्ड के विधान जानना ॥१०-११॥

गुञ्जजन्मधुव्रतश्रेणी प्रफुल्ल कमलाकुला ।

चित्र पक्षिकुलाक्रान्ता मुखरीकृत दिक्कटा ॥ १२ ॥

पुनः वह नदी कैसी है कि शब्द करते हुये झमरों के शब्द के समूह के सहित फूले हुये कमलों करके व्याप्त है और नाना वर्ण के पक्षियों के समूह करके अधिष्ठित है और उन पक्षियों करके दोनों दिशा के जो किनारे हैं सो शब्दायमान हो रहे हैं ॥ १२ ॥

स्वर्ण स्फटिक माणिक्य मुक्तावद्ध तटद्वया ।

चित्र पुष्पलता पुञ्ज गुञ्जानि विविधानि च ॥ १३ ॥

पुनः वह नदी कैसी है कि सुवर्ण तथा स्फटिक और माणिक्य मुक्ता इत्यादि रत्नों करके बांधा है दोनों तट जिसका और नाना प्रकार के पुष्पों करके युक्त जो लता के समूह तिस के विषे बहुत से शब्द हो रहे हैं ॥ १३ ॥

सरसार्नि सहस्राणि तस्य तीरद्वयोरपि ।

सन्ति नित्य विहारार्थे जानकी रामचन्द्रयोः ॥ १४ ॥

श्रीसीताराम जी के नित्य विहार के वास्ते उस नदी के दोनों किनारे में रस व्यपदार्थ हजारों स्थित हैं ॥ १४ ॥ मुक्तावद्ध तटद्वया इत्यादि पदों से श्री जानकी कुण्ड सूचित होता है ।

सर्ता पुण्यवतां दृष्टमदृष्टं कृत पापिनाम् ।

धनुः शतं परिमितं चित्र राजि विराजितम् ॥ १५ ॥

श्री जानकी कुण्ड कैसी है पुण्य पुञ्ज जो प्राणी है उनही के दृष्टि में आती है पापियों के लिये अदृष्ट हो है सो धनुष अर्थात् ३५० साढ़े तीन सौ युग जिनकी मर्यादा है नाना चित्रों करके शोभित है श्रीयुगल विनोद कुञ्ज अर्थात् अह्लादिनी कुञ्ज तथा घाट से स्नान कुण्ड तक जिनको मर्यादा है जिसे इस समय गोघाट कहा है ॥ १५ ॥

स्फटिकाख्या शिला यत्र वर्तते लोक पावनी ।

तस्यांशिलार्या चरणं दक्षिणं विद्यते शुभम् ॥ १६ ॥

पुनः श्रीजानकी कुण्ड से दक्षिण दिशा में उस मन्दाकिनी नदी के किनारे में लोक को पवित्र करने वाली स्फटिक शिला वर्तमान है उस शिला के ऊपर श्रीसीतारामजी के सुन्दर दाहिना वामा चरण का चिन्ह वर्तमान है, जल के निकट

श्री रघुनन्दनजी के, जल मध्य में ओकिसोरीजी के चरण चिन्ह जानेंगे इस समय में चरण चिन्ह शिला ऊपर पधराय गये हैं ॥ १६ ॥

सीताकुण्डे नरः स्नात्वा चरणस्पृश्य भक्तितः ।

भक्तियोगमवाप्नोति महापातक नाशनम् ॥ १७ ॥

जो प्राणी श्रीजानकी कुण्ड में स्नान करके भक्ति पूर्वक चरण चिन्ह को पूजन करते हैं वह प्राणी महा पातक को नाश करने वाली भक्ति योग्य को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

तस्य दक्षिण दिग्देशे तीर्थं रामानुजं स्मृतम् ।

तत्र स्नात्वा नरो धीमान् रूपवानभिजायते ॥ १८ ॥

उस स्फटिक शिला के दक्षिण भाग में श्रीलक्ष्मण तीर्थ है जिन्हें गोघाट कहते हैं तिस लक्ष्मण तीर्थ में स्नान करने से बुद्धिमान प्राणी बहुत सुन्दर हो जाते हैं ॥ १८ ॥

तस्यैव निकटे विद्वन्नेक हंसेति विद्युतम् ।

हंस स्वरूपी भगवान् यत्र चाविर्भवत्पुरा ॥ १९ ॥

हे शाण्डिल्यजी उसी लक्ष्मण तीर्थ के समीप में एक हंस नाम का तीर्थ प्रसिद्ध है जिस हंस तीर्थ में प्रथम हंस स्वरूप भगवान् प्रगट हुये हैं जिन्हें मगरा कुंड कहते हैं ॥ १९ ॥

तदग्रे कृत शौचेति तीर्थम्पातक नाशनम् ।

तस्मिन् हंसेन देवेन दिव्यं स्नान कृतम्पुरा ॥ २० ॥

उसके आगे सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाला कृत शौच नाम का तीर्थ है तिस में हंस भगवान् ने परम दिव्य स्नान किये हैं वह तीर्थ इस समय स्फटिक शिला कर के प्रसिद्ध है ॥ २० ॥

ततो गच्छेत्तीर्थसेवी ह्यतितीर्थमनुत्तमम् ।

एकास्मिन् भोजिते विप्रे कोटयो भवन्ति भोजिताः ॥ २१ ॥

पुनः तीर्थों को सेवन करने वाला प्राणी कृत शौच तीर्थ से आगे चल कर सर्वोत्तम अत्रितीर्थ को जाय जो कि अतसूया नाम से प्रसिद्ध है जिस अत्रितीर्थ में एक ब्राह्मण को भोजन कराने से कोटि ब्राह्मण भोजन का पुण्य होता है ॥ २१ ॥

अतितीर्थे नर स्नात्वा दृष्ट्वा देवीं पति व्रताम् ।

सर्व पाप विशुद्धात्मा लभते वाञ्छितम्फलम् ॥ २२ ॥

अत्रितीर्थ में प्राणी स्नान करके और पतिव्रता अनसूया देवी का दर्शन करके सर्व पापों से विशुद्ध हो कर इच्छानुकूल फल को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

कार्तिके शुक्लपक्षस्य प्रारभ्य दशमी तिथिम् ।

पूर्णिमामवधिं कृत्वा यात्रा साम्यत्तरी स्मृता ॥ २३ ॥

कार्तिक शुक्ल पक्ष की दशमी से लेकर के पूर्णमासी तक उस अत्रितीर्थ की यात्रा कही गई है इस प्रकार से एक वर्ष में इस तीर्थ की यात्रा का विधान है ॥ २३ ॥

यत्र मन्दाकिनी गङ्गा समुद्भूता मुण्यदा ।

यत्रात्मभूर्हरिः शम्भुर्देव्याः पुत्रत्वमागता ॥ २४ ॥

जिस अत्रितीर्थ में सुन्दर पुण्य को देने वाली मन्दाकिनी नाम की गङ्गा उत्पन्न हुई है पुनः जिस अत्रितीर्थ में ब्रह्मा, विष्णु और शंकर जी यह तीनों देवता अनसूया देवी के पुत्र हुये हैं ॥ २४ ॥

तेषां सुचरितम्पुण्यम्पुरस्तात् कथितम्मया ।

यत्र मन्दाकिनी देवी वर्तते लोक पावनी ॥ २५ ॥

उन तीनों देवताओं के चरित्र हम प्रथम ही तुम से कह चुके हैं और उस आश्रम में जहां पर मन्दाकिनी गङ्गा लोक पवित्र करने वाली विराजमान हैं ॥ २५ ॥

स्थले तस्मिंश्चाञ्जनेयोविराजते महाबलः ।

स्नात्वा मन्दाकिनीतोये पूजयित्वाहरीश्वरम् ॥ २६ ॥

उसी स्थल में महा बलवान् श्री अञ्जनी नन्दन श्री हनुमत लाल जू विराजमान हैं जो प्राणी श्री मन्दाकिनी जल में स्नान करके श्री हनुमत लाल जू के पूजन करते हैं ॥ २६ ॥

श्रीदेवी ह्यनमूल्या मुनिना सहिता शुभा ।

नित्यं विराजते तत्र पुण्यैर्द्वार्षिभियुता ॥ २७ ॥

श्री अत्रि मुनि के सहित तथा देव ऋषि दत्तात्रेय दुर्वासा और सोम यह अपने तीनों पुत्र के सहित वह अनसूया देवी वहां पर नित्य प्रति विराजमान रहती हैं ॥ २७ ॥

कृत्वा तु नियमं तत्र देवीस्पूजयते तु यः ।

मनोवाञ्छा फलम्प्राप्य देवैश्च सह मोदते ॥ २८ ॥

मिथम करके प्रथम कहा गया श्री हनुमत लाल जू को पूजन करके श्री श्री मुनि के सहित और तीनों पुत्रों के सहित जो प्राणी अनसूया देवी को पूजन करता है वह प्राणी मनोरथ सिद्धि को प्राप्त होकर अन्त काल में देव लोक को प्राप्त होकर देवताओं के साथ आनन्द करते हैं ॥२८॥

तस्य दक्षिणदिग्देशे पापमोचनिकाशिला ।

तस्या दर्शनमात्रेण त्रिविधम्पापनाशनम् ॥ २९ ॥

उस अत्रि तीर्थ के दक्षिण दिशा में पाप मोचनी शिला है उसके दर्शन मात्र से शरीर बाणी, मन, करके किया हुआ यह तीनों प्रकार का पाप नाश हो जाता है ॥२९॥

तस्यास्तनिकटे तात दारिद्र्यमोचनी शिला ।

तस्य दर्शन मात्रेण दारिद्र्यं नश्यते ध्रुवम् ॥ ३० ॥

पुनः उस पाप मोचनी शिला के समीप में दरिद्र मोचनी शिला है। हे तात उस शिला के दर्शन मात्र से अवश्य दरिद्र नाश हो जाता है ॥३०॥

तस्यास्तु निकटे तात ऋण मोचनी संज्ञिका ।

तस्याः प्रदर्शनात्पुनः ऋणतूय विमोचनम् ॥ ३१ ॥

हे तात उस दरिद्र मोचनी शिला के समीप में ऋण मोचनी नाम की शिला है उस शिला के दर्शन करने से देव ऋण, पितृ ऋण, ऋषि ऋण यह तीनों प्रकार के ऋण से प्राणी छूट जाता है ॥३१॥

शिलानां त्रितयं तत् जलस्याभ्यन्तरे स्थितम् ।

ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठ फलकी वनमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

यह तीनों शिला वहां पर जल के मध्य में स्थित हैं हे द्विजों में श्रेष्ठ पुनः उन शिलाओं का दर्शन करके फलकी वन को गमन करे वह वन बहुत उत्तम है ॥३२॥

तत् देवाश्चमुनयस्तपः कुर्वन्ति नित्यशः ।

शाक मूल फलाहारं तत् कुर्वन्ति ये नराः ॥ ३३ ॥

उस फलकी वन में देवता और मुनि गण नित्य तप करते हैं वहां पर जाय करके जो प्राणी शाक अथवा कन्दमूल अथवा फल का आहार करते हैं ॥३३॥

तेषां दर्शन मात्रेण हयमेध फलं लभेत् ।

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम् ॥ ३४ ॥

वन महास्माओं के दर्शन मात्र करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।
हे द्विजो मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वा वैश्य अथवा शूद्र कोई भी होय ॥३४॥

दिश्येयानिम्प्रजन्ति दृष्ट्वावनमनुत्तमम् ।

कार्तिक्यां तु विशेषेण योऽभिगच्छति मानवः ॥ ३५ ॥

उस सर्वोत्तम वन के दर्शन करने से देव योनि को प्राप्त होते हैं विशेष करके
कार्तिक की पूर्णमासी को जो प्राणी जाता है ॥३५॥

प्राप्नोति ब्रह्मणोलोकं सर्व सिद्धि प्रदायकम् ।

जन्म प्रभृति यत्पापं स्त्रीणां पुंसां द्विजोत्तम ॥ ३६ ॥

यह प्राणी सर्व सिद्धि को देने वाला ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है । हे
द्विजोत्तम स्त्रियों अथवा पुरुषों का जो कुछ जन्म से ले करके पाप होता है ॥३६॥

फलकी दर्शनादेव तत्क्षणान्नश्यति ध्रुवम् ।

यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु मधुसूदनः ॥ ३७ ॥

यह सब पाप अवश्य फलकी वन के दर्शन करने से क्षणमात्र में नाश हो जाता
है जिस प्रकार से सम्पूर्ण देवताओं के प्रथम मधुसूदन नाम, वासुदेव भगवान्
अर्थात् श्री कृष्ण चन्द्र परे ब्रह्म हैं ॥३७॥

तथा सर्व वनानां तु फलकीरादिरुच्यते ।

श्रीरामस्य प्रसादेन तीर्थराजोऽभवत् पुरा ॥ ३८ ॥

उसी प्रकार से यह फलकी वन और सब वनों का आदि है वन श्री सीता-
राम जू की प्रसन्नता से प्रथम तीर्थों का राजा हुआ है ॥३८॥

अस्य योऽतु समागत्य दर्शनं कुरुते नरः ।

अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ ३९ ॥

जो कोई प्राणी यहां पर आय करके इस वन का दर्शन करते हैं वह प्राणी
अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होते हैं और स्वर्ग लोक को जाते हैं ॥३९॥

ततो वैतरणीं गच्छेन्नदीम्पाप प्रमोचनीम् ।

प्रभूतं तु कुलं पूत्वा सर्व पाप व्यपोहति ॥ ४० ॥

उस से पुनः सम्पूर्ण पापों को छोड़ाने वाली वैतरणी नाम की नदी को जाय
वहां पर स्नान करके अपने बहुत से कुलों को पवित्र करके सम्पूर्ण पापों को नाश
करता है ॥४०॥

गोमहस्य फलं लब्ध्वा पुनानि सकुलो नरः ।

अथभं तीर्थमावाद्य क्रोशमाना द्विजोत्तम ॥ ४१ ॥

वह प्राणी हजार गोदान के फल को प्राप्त होकर अपने कुल के सहित पवित्र होजाता है पुनः वहां अथभ तीर्थ एक कोश पर है उस अथभ तीर्थ को जाय ॥ ४१ ॥

वाज्रिमेधमवाप्नोति चिराज्युपोषितोनरः ।

ततो बदरिकातीर्थं तस्यैव च समीपतः ॥ ४२ ॥

हे द्विजोत्तम उस अथभतीर्थ के दर्शन से प्राणी अथभेध यज्ञ के फल को प्राप्त होते हैं, अथभ पर्वत के विषे श्री सम्प्रदाय उर्ध्व पुंड्र धारण के लिये तिलक होते हैं पीत, श्याम, श्वेत, ध्रुति, सम्मति, संहिता, श्री रामायण ग्रन्थ में प्रसिद्ध है ॥ ४२ ॥

तत्र स्नात्वा नरो धीमान् नित्यम्प्रयतमानसः ।

दीर्घायुत्वमवाप्नोति स्वर्गं लोकं च गच्छति ॥ ४३ ॥

बुद्धिमान् पुरुष एकाग्र चित्त हुआ उस बदरी तीर्थ में यदि नित्य प्रति स्नान करे तो आयु की वृद्धि हो जाय अन्त में स्वर्ग लोक प्राप्त हो जाय ॥ ४३ ॥

ततो दक्षिण दिग्भागे पुष्करणी विराजते ।

विप्रेन्द्र तस्यां स्नानेन सर्व पातक नाशनम् ॥ ४४ ॥

उससे पुनः दक्षिण दिशा में पुष्करणी तीर्थ विराजमान है हे विप्रेन्द्र उस पुष्करणी में स्नान करने से सम्पूर्ण पाप नाश हो जाता ॥ ४४ ॥

यत् क्रतुशतं कृत्वा देवराज विराजते ।

पापाद् वृत्रवधात्तत् निर्मुक्तो त्रिदशेश्वरः ॥ ४५ ॥

जिस पुष्करणी के विषे सौ यज्ञ करके देवराज इन्द्र देवता विशेष शोभा को प्राप्त हुये हैं और उसी भूमि पर वृत्रासुर के वध के पाप से इन्द्र देवता मुक्त हुये हैं ॥ ४५ ॥

ततो गच्छेच्च विप्रेन्द्र शरभङ्गाश्रमं शुभं ।

शरभङ्गो मुनिश्रेष्ठो वेदवेदाङ्ग पारगः ॥ ४६ ॥

हे विप्रेन्द्र यहां से शरभङ्ग के आश्रम को जाय वह आश्रम बहुत रमणीक है यहां शरभङ्ग ऋषि समप्रवेद और वेदाङ्ग पारंगत जाता है ॥ ४६ ॥

यज्ञं कृत्वा विधानेन पूजयित्वा रघूत्तमम् ।

देह त्यागं चकारासु तस्मिन् कुण्डे प्रयत्नतः ॥ ४७ ॥

वहाँ शरभङ्ग ऋषि ने विधि पूर्वक यज्ञ करके श्रीसीतारामजू का पूजन किया और उसी कुण्ड में बड़े यत्न से शरीर परित्याग किया ॥ ४७ ॥

तस्मात्कुण्डात्समुद्भूता नदी परम पावनी ।

तस्यां स्नात्वा द्विजश्रेष्ठगङ्गा स्नानफलं लभेत् ॥ ४८ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ उस कुण्ड से लोक को परम पवित्र करने वाली नदी उत्पन्न हुई है उस नदी में स्नान करने से प्राणी गङ्गा जी के स्नान के फल को प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

पितृ देवार्चनं कृत्वा गोमहस्र फलं लभेत् ।

तस्य पश्चिम दिग्भागे दंडकं तीर्थमुत्तमम् ॥ ४९ ॥

और वहाँ पर देवता और पितरों के पूजन करने से हजार गोदान का फल होता है उस शरभङ्गाश्रम के पश्चिम दिशा में परम उत्तम दण्डक तीर्थ है ॥ ४९ ॥

दंडकं तीर्थमासाद्य सर्व पापैः प्रमुच्यते ।

ततो गच्छे द्विजश्रेष्ठ सूर्य कुण्डं नरोत्तमः ॥ ५० ॥

वह तीर्थ यात्रा करने वाला प्राणियों में उत्तम प्राणी है सो दण्डक तीर्थ को प्राप्त होकर सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है पुनः दण्डक तीर्थ से सूर्य कुण्ड को जाय ॥ ५० ॥

सूर्य कुण्डे नरः स्नात्वा सूर्यलोकं गच्छति ।

तस्यैव निकटे विप्र कन्यातीर्थं विराजते ॥ ५१ ॥

जो प्राणी उस सूर्य कुण्ड में स्नान करता है वह सूर्य लोक को जाता है और उसी सूर्य कुण्ड के समीप में कन्यातीर्थ शोभायमान है ॥ ५१ ॥

कन्यकादर्शनं कृत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

तस्यैव निकटे विप्र तुङ्गारण्यं च पर्वतम् ॥ ५२ ॥

उस कन्या तीर्थ कन्या देवी का दर्शन करके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्धि को प्राणी प्राप्त होता है और हे विप्र उसी कन्या तीर्थ के समीप में तुङ्गारण्य नाम पर्वत है ॥ ५२ ॥

तस्मिन् गोदावरी पुण्या नदी पाप प्रमोचनी ।

गुप्ता गोदावरी नाम्ना ख्याता पुण्यं विवर्धिनी ॥ ५३ ॥

उस तुङ्गारण्य पर्वत के चिबे सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली गोदावरी नाम की नदी पुण्य वृद्धि करने वाली गुप्त गोदावरी नाम से प्रसिद्ध है ॥ ५३ ॥

स्थाने तस्मिन् महादेवो राजते ऋषि सेवितः ।

शीतोष्ण जलकुण्डं च पर्वताभ्यन्तरे स्थितम् ॥ ५४ ॥

और उसी स्थान में ऋषियों करके सेवित हुये श्रीमहादेव विराजमान है और उस पर्वत के भीतर में शीतल और उष्ण दो प्रकार का जल का कुण्ड स्थित है ॥ ५४ ॥

शिलैका चौर रूपा च ह्यन्तरिक्षे प्रवर्तते ।

गोदावर्या नरः स्नात्वा कृत्वा सन्ध्यां यथा विधि ॥ ५५ ॥

और वहां पर एक चौर रूप शिला आकाश में लटक रही है जो प्राणी गोदावरी में स्नान करके विधि पूर्वक सन्ध्या करता है ॥ ५५ ॥

महापुण्यमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।

पुण्यं सहस्रगुणकं सिंहं सूर्यं तथा गुरौ ॥ ५६ ॥

एतत्ते कथितम्पुण्यं तीर्थं मोहात्म्यमुत्तमम् ।

यस्व श्रवणं मातेन वाञ्छितम्फलमाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

यह प्राणी महापुण्य को प्राप्त होता है और अपने कुल का भी उद्धार करता है और जब सिंह राशि के सूर्य अथवा सिंहराशि के बृहस्पति होते हैं उस समय स्नान करने से सहस्र गुना पुण्य होता है ॥ ५६ ॥ हे तात यह उत्तम तीर्थ के माहात्म्य को हमने तुम्हारे से कहा जिसके श्रवण मात्र से प्राणी मनोरथ सिद्धि रूप फल को प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥

इति श्री बृहद्रामायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये सीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका नाम

त्रयोदशोऽध्यायः ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अद्विष्टवाच ।

तस्य दक्षिण दिग्भागो सामसूत्रेतिनामकम् ।

तीर्थं विराजते श्रीमान् सर्व पातक नाशनम् ॥ १ ॥

श्री भुशुण्डि जी बोले—उस तुङ्गारण्य पर्वत के दक्षिणा भाग में सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाला बहुत शोभायमान सामसूत्र नाम का तीर्थ विराजमान है ॥१॥

तत्र वेदान् प्रणष्टांश्च मुनेरङ्गिषः सुतः ।

स्थित्वा तत्र महर्षीणामुत्तरीये बृहस्पतिः ॥ २ ॥

उस सामसूत्र तीर्थ में अङ्गिरा मुनि के पुत्र बृहस्पति जी ने महर्षियों के उत्तर भाग में स्थित होकर भूले हुये वेदों को लाभ किया ॥२॥

ओंकारेण यथा पूर्वं सम्यगुच्चरितेन ह ।

येन यत्पूर्वमभ्यस्तं तस्य तत्समुपस्थितम् ॥ ३ ॥

ओंकार को अच्छी प्रकार से उच्चारण करके उस बृहस्पति जी ने जैसा प्रथम अभ्यास किया था वैसा ही उनको प्राप्त हो गया ॥३॥

देवः सूर्यगणाश्चैव वरुणोऽग्निः प्रजापतिः ।

हरिनारायणो देवो महादेवस्तथैव च ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर उस सामसूत्र तीर्थ में ऋषियों के सहित सम्पूर्ण देवता और वरुण अग्नि और प्रजापति विष्णु नारायण महादेव जी ॥ ४ ॥

पितामहश्च भगवान् देवैः सहमहाद्युतिः ।

ततः स चक्रे भगवानृषीणां विधिवत्तदा ॥ ५ ॥

सर्वेषां पुनराधानं विधिदृष्टेन कर्मणा ।

आज्यभागेन तत्रैव तर्पितास्ते यथा विधिः ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण देवगण के सहित परम तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा जी सम्पूर्ण ऋषि और देवताओं को शास्त्रोक्त कर्म से स्थापन किया और वहां पर यज्ञ करके यज्ञ का भाग देकर सब को तृप्त किया ॥५-६॥

तदरण्ये प्रविष्टस्य वेदारण्यं च पर्यतम् ।

पापं विनश्यति पुंसां स्त्रीणां चैव द्विजोत्तम ॥ ७ ॥

जो प्राणी उस वन में प्रवेश करता है और वेदारण्य पर्यंत उसी वन में है उस पर्यंत का जो दर्शन करता है । हे द्विजों में श्रेष्ठ चाहे स्त्री होय अथवा पुरुष हो उस का पाप शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥७॥

तत्र मासं वसेद्द्विमान् नियतो नियतासनः ।

ब्रह्मलोकं वसेद्द्विमान् पुनरावृत्तिं वर्जितम् ॥ ८ ॥

उस सामसूत्र तीर्थ में बुद्धिमान प्राणी एक मास पर्यन्त तत्पर होकर आसन बद्ध हुआ निवास करने से ब्रह्मलोक को प्राप्त होता और जब तक ब्रह्मलोक में रहता है तब तक उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती अर्थात् मृत्यु लोक में आना नहीं पड़ता ॥८॥

ततो रामहृदं गच्छेत् तीर्थं सेवी च मानवः ।

यत्र रामेण विप्रेन्द्र शरेण च जलाशयम् ॥ ९ ॥

उस सामसूत्र तीर्थ से तीर्थ सेवन करने वाला प्राणी श्रीराम सरोवर को जाय हे विप्रेन्द्र जहां पर महात्मा श्रीराम जी ने अपने बाण करके पृथिवी को उखाड़ कर अपने पराक्रम से सुन्दर जलाशय कर दिया है ॥९॥

सेत्रमुत्पाद्यवीर्येण कृतं तत्र महात्मना ।

स्नात्वा सरसि रामस्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १० ॥

राममभ्यर्च्य विधिवल्लभेद्बहु सुवर्णकम् ।

यत्र गंगा समुद्भूता रामगङ्गेति नामतः ॥ ११ ॥

एकाग्रचित्त से ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किये हुये श्रीराम सरोवर में स्नान करके श्री सीताराम जी को विधि पूर्वक पूजन करे तो बहुत द्रव्य को प्राप्त होय उसी राम सरोवर से श्री राम गङ्गा उत्पन्न हुई है ॥१०-११॥

तत्रैव ब्राह्मणश्रेष्ठ देवाग्रमनुत्तमम् ।

पर्यतं देवकं नाम दर्शनात्पातकापहम् ॥ १२ ॥

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ उसी जगह अति उत्तम देवताओं का आश्रम देवक नाम का पर्यंत है जिस के दर्शन से सर्व पाप नाश हो जाता है ॥१२॥

तत्रैव द्विजश्रेष्ठ यस्तु लोक इति श्रुतम् ।

तस्योपरि चरीचर्ति यानं शंकर नामकम् ॥१३॥

हे द्विजों मैं श्रेष्ठ उस देवक पर्वत के समीप ही मैं यस्तु लोक प्रसिद्ध है उसके समीप ही मैं शंकर विमान है ॥१३॥

पर्वतं शंकरं नाम दर्शनात्पातकापहम् ।

तस्मिन् पतनमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १४ ॥

उसको शंकर पर्वत भी कहते हैं उसके दर्शन मात्र से पाप का नाश हो जाता है वहाँ पर उस पर्वत से गिर कर शरीर छोड़ने से पुनर्जन्म नहीं होता ॥१४॥

मुक्तिस्तत्र च नामेदं सर्वपातकनाशनम् ।

श्रीपर्वतं समासाद्य विन्दते श्रियमुत्तमाम् ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाला इसका मुक्तिक्षेत्र नाम है इसके अनन्तर श्री पर्वत का दर्शन करे जिस से प्राणी उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥१५॥

कपिलं तीर्थमासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ।

तत्र स्नात्वा चरित्वा तु देवान् पितृगणांस्तथा ॥ १६ ॥

पुनः एकाग्रचित्त से ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किये हुये वहाँ से कपिल तीर्थ को प्राप्त होकर उस में स्नान करके देवता और पितरों को पूजन करने से ॥१६॥

कपिलां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः ।

ततः कालाञ्जरं गत्वा पर्वतं लोकविश्रुतम् ॥ १७ ॥

प्राणी है सो हजार गोदान के फल को प्राप्त होता है इसके अनन्तर लोक में प्रसिद्ध कालाञ्जर नाम के पर्वत को जाय करके ॥१७॥

आत्मानं साधयेद्दीरो गिरी कालाञ्जरे नरः ।

स्वर्गलोके महीयते नात्र कार्या विचारणा ॥ १८ ॥

वह धीर प्राणी अपने मन को साधन करे अर्थात् वशीभूत करे तो स्वर्ग लोक में पूजित होता है इसमें कुछ भी विचार के विषय नहीं अर्थात् यह बचन सत्य है ॥१८॥

कोटितीर्थमिन्द्रतीर्थं मृगतीर्थं तथैव च ।

तीर्थस्वगान्तकं नाम वृद्धतीर्थमतः परम् ॥ १९ ॥

और वहां पर कोटितीर्थ है तथा इन्द्रतीर्थ और मृगतीर्थ तथा स्वगान्तकतीर्थ
इससे परे वृद्धतीर्थ यह सब तीर्थ है ॥१९॥

सोचाद् कालिञ्जरादग्नी ग्रामोऽयं बनिहारिकः ।

तत्राकरो गैरिकस्य धातु मृत् दूषिताः शिला ॥ २० ॥

ताः निक्षप्य जलेष्वप्यक् क्वाथं संकुरुतां बुधः ।

क्वाथोऽयं सर्घरोगाणां नाशकस्त्वरितं भवेत् ॥ २१ ॥

कालिञ्जर क्षेत्र में से अग्नि कोण में बनिहारि ग्राम में गेरू की खदान है
जिसमें धातुओं मृत्तिका से दूषित छोटे २ कड़ुई हैं ॥२०॥ उनको पानी में डालकर
औटा कर पिये तो सर्व रोग की निवृत्ति होती है ॥२१॥

तत्र मन्दाकिनी गंगा पापिनाम्पाप नाशिनी ।

नीलकण्ठं शिवं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २२ ॥

वहां पर सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली मन्दाकिनी नाम की गङ्गा है
पुनः वहां पर नीलकण्ठ नाम के महादेव जी हैं उनके दर्शन से पुनः जन्म नहीं
होता ॥२२॥

यत्र श्री पार्वतीनाथः सकैलाशेन संशयः ।

तस्य पूर्वदिशा भागे गंगा नाम सरस्वती ॥ २३ ॥

वहां पर पार्वती जी के सहित श्री महादेव जी कैलासपर्वत के सहित विराज
मान हैं इसमें सन्देह नहीं उस स्थान के पूर्व दिशा में सरस्वती नाम की गङ्गा
है ॥२३॥

तस्यां स्नान प्रभावेण पुनर्जन्म न विद्यते ।

ततो गच्छेद्विजयेऽ कुण्डमाङ्गिरसं नरः ॥ २४ ॥

तिस्र सरस्वती गङ्गा में स्नान के प्रभाव से पुनः संसार में जन्म नहीं होता
पुनः उस सरस्वती गङ्गा से प्राणी है सो अंगिरा कुण्ड को जाय ॥२४॥

सूर्यकुण्डं रामतीर्थं तीर्थं ब्रह्महृदं तथा ॥

तस्मिन् कुण्डे प्रभवेत्तु सर्व पाप प्रणाशनम् ॥ २५ ॥

पुनः वहां पर सूर्यकुण्ड और श्रीरामतीर्थ पुनः ब्रह्मसरोवर तीर्थ यह सब और
भी है उस अङ्गिराकुण्ड में स्नान करने से सम्पूर्ण पाप नाश हो जाता है ॥२५॥

तच्च स्नात्वा नरो धीमान् विद्यामप्यनोत्तमाम् ।

ततो गच्छेत्तीर्थसेवी माण्डवस्याश्रमं शुभम् ॥२६॥

और उसमें स्नान करने से शुद्ध भक्तिकरण होने से बुद्धिमान् पुरुष अति उत्तम विद्या को प्राप्त होता है पुनः अङ्गिराकुण्ड में तीर्थ सेवन करनेवाला प्राणी है सो सुन्दर रमणीय माण्डव्य ऋषि के आश्रम को जाय जो कि मणका नाम से इस काल में प्रसिद्ध है ॥२६॥

पाप प्रमोचनं नाम तीर्थं परम पावनं ।

तस्य दक्षिण दिग्भागे शिव कुण्डमनुत्तमम् ॥ २७ ॥

वहाँ पर लोक को परम पवित्र करने वाला पाप प्रमोचन नाम का तीर्थ है उसके दक्षिण दिशा में अति उत्तम शिवकुण्ड है ॥२७॥

ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठोत्तरां दिशमुत्तमाम् ।

पञ्चवक्त्रं शिवं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २८ ॥

उस कुण्ड में स्नान करके हे द्विजों में श्रेष्ठ सुन्दर उत्तर दिशा को जाय वहाँ पर पञ्चमुखी महादेव के दर्शन करके पुनः जन्म को नहीं प्राप्त होता ॥२८॥

पर्वतं मण्डपं नाम माण्डवस्याश्रमं शुभम् ।

मण्डपादुत्तरं गत्वा दृष्ट्वा चण्डी महेश्वरौ ॥ २९ ॥

वहाँ जो माण्डव्य ऋषि का आश्रम है उस पर्वत का मण्डप ऐसा नाम है उस मण्डप पर्वत की उत्तर दिशा में जाय करके चण्डी देवी और महादेव जी का दर्शन करे ॥२९॥

स्नात्वा चण्डीहृदे विप्र सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

तदुत्तर दिशा भागे मणिकूटं च पर्वतम् ॥ ३० ॥

और वहाँ पर चण्डी सरोवर में स्नान करके सम्पूर्ण कामना को प्राप्त होता है पुनः उसके उत्तर दिशा में मणिकूट नाम का पर्वत है ॥३०॥

तस्मिन्पर्वत मध्ये तु सीता शय्या सुपुण्यदा ।

ततो गच्छेत् द्विजश्रेष्ठ भारतं कूपमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

उस पर्वत के मध्य में सुन्दर पुण्य को देने वाली श्री सीता शय्या विराजमान है उस शय्या का दर्शन करके हे द्विजों में श्रेष्ठ श्री भरत कूप को जाय ॥३१॥

समुद्रा यत्र चत्वारो निवसन्ति सगङ्गाकाः ।

कैकेयी नन्दनः श्रीमान् भरतो नाम विश्रुतः ॥ ३२ ॥

जिस भरत कूप में सम्पूर्ण गङ्गाओं के सहित चारों समुद्र निवास करते हैं
कैकेयी को आनन्द करने वाले श्री राम जी के छोटे भ्राता श्री भरतलाल जी जिनका
नाम प्रसिद्ध है ॥३२॥

राज्याभिषेक सामग्रीं गृहीत्वा तत्र सङ्गतः ।

वशिष्टेन समायुक्तो जनकेन समन्वितः ॥ ३३ ॥

श्री रघुनन्दन जी के वास्ते राज्याभिषेक की सामग्री लेकर के वहाँ पर प्राप्त
हुये श्री जनक जी के सहित श्री वशिष्ट जी के साथ ॥३३॥

कौशल्यादिस्वमातृभ्यः साकं रघुकुलोद्बहः ।

प्रार्थयामास तं राममभिषेकार्थमादृतः ॥ ३४ ॥

श्री रघुकुल के पालन करने वाले श्रीभरत जू अपनी माता श्री कौशल्या आदि
अर्थात् ७०० माताओं के सहित आदर पूर्वक राज्याभिषेक देने के वास्ते श्री रघुनन्दन
जू की प्रार्थना करते हुये ॥३४॥

यदा रामो न जग्राह वचनं तस्य प्रार्थितः ।

तदा गृहीत्वा सामग्रीः कूपे प्रक्षिप्तवान् प्रभुः ॥ ३५ ॥

अत्यन्त प्रार्थना करने पर भी श्री भरत लाल जू के वाक्य को श्री रघुनन्दन जू
ने नहीं अंगीकार किया तब परम समर्थ श्री भरत लाल जू ने वह सब सामग्री को
ले करके उस कूप में छोड़ दिया ॥३५॥

तदा प्रभृति विप्रेन्द्र कूपम्भरतनामकम् ।

द्रोणाचल गिरिस्तत्र वर्तते लोक सुन्दरः ॥ ३६ ॥

हे विप्रेन्द्र ! उस समय से श्री भरत कूप नाम से प्रसिद्ध है और वहाँ पर लोक
में सुन्दर द्रोणाचल नाम का पर्वत है ॥३६॥

सप्तमी रविवारेण यात्रा स्यात्पुण्यवर्द्धिनी ।

चित्रकूटाच्च नैरित्ये वेङ्कटो नाम पर्वतं ॥ ३७ ॥

रविवार करके युक्त यदि सप्तमी होय तो उस दिन पुण्य की वृद्धि करने
वाली इस तीर्थ की यात्रा होती है श्री चित्रकूट से नैरित्य कोण में वेङ्कट नाम का
पर्वत है ॥३७॥

तस्य दर्शनमात्रेण कोटिजन्माघनाशनम् ।

ततो गच्छेद्विजयेष्टशय्या रामस्य विश्रुताम् ॥ ३८ ॥

उस चिचूट पर्वत के दर्शन मात्र से कोटि जन्म का पातक नाश होता है हे द्विजों में श्रेष्ठ पुनः वहां से सब लोगों में परम प्रसिद्ध श्रीरामशय्या को जाय ॥३८॥

रामशय्यां नरो दृष्ट्वा रामलोकं च गच्छति ।

तस्याः पूर्वदिशा भागे विश्रुतः शार्ङ्गपर्वतः ॥ ३९ ॥

जो प्राणी श्रीरामशय्या का दर्शन करते हैं वह श्रीरामजी के लोक अर्थात् साकेत लोक को जाते हैं और उसके पूर्व दिशा में शार्ङ्ग नाम का पर्वत प्रसिद्ध है ॥३९॥

चित्रकूटात्पश्चिमस्यांदिशि पांचजनः स्मृतः ।

चित्रकूटादुत्तरस्यां वज्रपर्वत उत्तमः ॥ ४० ॥

श्री चित्रकूट से पश्चिम दिशा में पांच जन नाम का पर्वत है पुनः चित्रकूट के उत्तर दिशा में वज्र नाम का पर्वत है ॥४०॥

यत्र मन्दाकिनी गंगा पश्चिमाभिमुखीगता ।

ततो गच्छेद्द्विजयेष्टकुण्डं नाम प्रभाकरम् ॥ ४१ ॥

जहां पर श्री मन्दाकिनी गंगा पश्चिम मुख होकर गई है हे द्विजों में श्रेष्ठ उस वज्र पर्वत से सूर्य कुण्ड को जाय ॥४१॥

उत्तरं मानसं नाम तीर्थं ब्रह्मविनिर्मितम् ।

तीर्थानाम्प्रवरं तीर्थं दर्शनात्पातकापहम् ॥ ४२ ॥

पुनः वहां से प्रह्लाद करके रचना किया हुआ उत्तर मानस नाम का तीर्थ है वह तीर्थों में परम श्रेष्ठ तीर्थ है जिस के दर्शन करने से सम्पूर्ण पाप नाश हो जाते हैं ॥४२॥

चित्रकूटाच्च पूर्वस्यां द्वियोजनप्रमाणतः ।

ब्रह्माण्डभेदकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ४३ ॥

श्री चित्रकूट के पूर्व दिशा में दो योजन प्रमाण पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध ब्रह्माण्ड भेदक नाम का तीर्थ है ॥४३॥

यह गृध्र नाम का पर्वत है सर्व लोक में प्रसिद्ध है उस पर्वत पर जटायु नाम के गृध्रराज ने बहुत तप किया है ॥ ६ ॥

ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठ दिशं हैमवतीं शुभाम् ।

शतधारा समुद्भूता यत्र मन्दाकिनी नदी ॥ ७ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ वहां से पुनः सुन्दर उत्तर दिशा को गमन करे जहां पर मन्दाकिनी नदी सौ धारा हुई है ॥ ७ ॥

शतसंख्या मुनिगणा यत्र तप्तं महत्तपः ।

अमावस्याम्पूर्णिमायां च द्वादश्यां पक्षयोर्द्वयोः ॥ ८ ॥

एक सौ १०० मुनिगणों ने जहां पर बड़े उग्र तप किये हैं अमावस्या और पूर्णिमासी तथा दो पक्ष की द्वादशी को ॥ ८ ॥

अयने च व्यतीपाते स्नानं वैष्णव लोकदम् ।

ततो गच्छेत् द्विजश्रेष्ठ स्थानं त्रैलोक्य पूजितम् ॥ ९ ॥

और सूर्य के उत्तरायण अथवा दक्षिणायन होने के समय तथा व्यतीपात में यदि स्नान करे तो विष्णु लोक को प्राप्त होय पुनः हे द्विजों में श्रेष्ठ तीनों लोक में पूजित ऐसा स्थान तिस को गमन करे ॥ ९ ॥

स्थानं सुदर्शनं तस्य चक्रतीर्थेति नामकम् ।

ततो गच्छेत् तीर्थसेवी कुण्डं नाम सुभद्रकम् ॥ १० ॥

सुदर्शन नाम का स्थान है उसे चक्रतीर्थ भी कहते हैं पुनः तीर्थ सेवन करने वाला प्राणी वहां से सुभद्र कुंड को गमन करे ॥ १० ॥

गुरुवारे कृत स्नानं ददाति बहु पुण्यकम् ।

तद्दक्षिणे द्विज श्रेष्ठ सर्वतो भद्र संज्ञकम् ॥ ११ ॥

उस सुभद्र कुण्ड में गुरुवार के रोज स्नान करने से बहुत पुण्य होता है । हे द्विजों में श्रेष्ठ उसके दक्षिण दिशा में सर्वतोभद्र नाम का तीर्थ है ॥ ११ ॥

ऊर्ज कृष्ण नवम्यां तु यात्रा पाप प्रणाशिनी ।

तस्मात्कुण्डाच्च वायव्ये वर्तते तीर्थमुत्तमम् ॥ १२ ॥

कार्तिक कृष्ण पक्ष की नवमी को सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली यात्रा कही गई है उस सर्वतोभद्र तीर्थ के वायव्य कोण में सुन्दर उत्तम तीर्थ वर्तमान है ॥ १२ ॥

मणिभद्रमिति खयात्परमप्रत्यय कारकम् ।

महापद्म स्तथा पद्मः शंखी मकर कच्छपौ ॥ १३ ॥

जिनका मणिभद्र ऐसा नाम है वह तीर्थ प्राणी को अत्यन्त परिचय को देने वाले हैं और महापद्म तीर्थ, पद्म, शंख, मकर, कच्छप तीर्थ ॥ १३ ॥

मुकुन्द कुन्द नीलश्च सर्वश्चेति निधिर्नव ।

जल मध्ये प्रकर्तव्यं लक्ष्मी निधि प्रपूजनम् ॥ १४ ॥

मुकुन्द, कुन्द, नील, सर्व तथा नव निधि तीर्थ सब जल के मध्य में स्थित हैं और वहाँ पर लक्ष्मी निधि का पूजन करना चाहिये ॥ १४ ॥

माघे कृष्ण चतुर्दश्यां यात्रा साम्बत्सरी स्मृता ।

उत्तरे मणिभद्रस्य रम्यं द्विवज निसेवितम् ॥ १५ ॥

एक वर्ष में माघ मास में कृष्ण पक्ष चतुर्दशी को इस तीर्थ की यात्रा कही गई है मणिभद्र तीर्थ के उत्तर दिशा में बहुत रमणीक ब्राह्मणों करके सेवित ॥ १५ ॥

वशिष्टस्याश्रमं तात सर्वपापहरं सदा ।

वामदेवस्य तत्रैव स्थानं त्रैलोक्य पूजितम् ॥ १६ ॥

हे तात सम्पूर्ण पापों का हरण करने वाला श्री वशिष्ट जी का आश्रम है उन श्री वशिष्टजी के आश्रम के समीप ही में तीनों लोक करके पूजित श्रीवामदेव जी का आश्रम है ॥ १६ ॥

लोमसस्य तथा स्थानं गौतमस्य तथैव च ।

अन्ये मुनयस्तत्र पूजनीयास्तपोधनाः ॥ १७ ॥

पुनः उसी भूमि में लोमसजी का स्थान है तथा गौतम जी का स्थान है तपही है धन जिन के ऐसे बहुत से ऋषिगण वहाँ पर और भी रहते हैं इन सब को पूजन करना चाहिये ॥ १७ ॥

तस्मात्पूर्व दिशा भागे कुण्डं देव विनिर्मितम् ।

विख्यातं विघ्नराजस्य सर्व कामर्थ सिद्धिदम् ॥ १८ ॥

उस वशिष्ट कुण्ड के पूर्व दिशा में देवताओं करके रचना किया हुआ सम्पूर्ण कामना के अर्थ रूप सिद्धि को देने वाला परम प्रसिद्ध वहाँ पर श्रीगणेश कुण्ड है ॥ १८ ॥

आश्विने शुक्ल पूर्णायां तत्र स्नानं विधीयते ।

तस्य पूर्व दिशा भागे और्वस्याश्रम मुत्तमम् ॥ १८ ॥

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी को इसकी यात्रा का विधान है उस गणेश कुण्ड के पूर्व दिशा में परम उत्तम और्व ऋषि का आश्रम है ॥ १८ ॥

भाद्रे शुक्ल तृतीयायां यात्रा सम्बत्सरी भवेत् ।

तस्मादक्षिण दिग्भागे सुरभेः स्वानमुत्तमम् ॥ २० ॥

एक वर्ष में भाद्र मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को उस और्वाश्रम की यात्रा कही गई है उस और्वाश्रम के दक्षिण दिशा में परम उत्तम कामधेनु का स्थान है ॥ २० ॥

तस्य यात्रा प्रकर्तव्या रविवारे विशेषतः ।

तस्य दक्षिण दिग्भागे कामस्थानं च पावनम् ॥ २१ ॥

रविवार को विशेष करके उस कामधेनु स्थान की यात्रा करनी चाहिये उस कामधेनु स्थान के दक्षिण दिशा में परम पवित्र कामदेव का स्थान है ॥ २१ ॥

माघे विशद पंचम्यां यात्रा तत्र सुभद्रका ।

तस्मात्पश्चिम दिग्भागे मण्डलाख्या विराजते ॥ २२ ॥

उस कामदेव स्थान के विषे माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को माङ्गलीक यात्रा कही गई है उस कामाश्रम के पश्चिम दिशा में मण्डल नाम का आश्रम विराजमान है ॥ २२ ॥

चैत्रेशुक्लस्यषाष्टम्यां यात्रा साम्बत्सरी स्मृता ।

तस्य चोत्तर दिग्देशेशीतलायाश्रमं शुभम् ॥ २३ ॥

एक वर्ष में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के विषे उस मण्डलाश्रम की यात्रा कही गई है उसके उत्तर दिशा में सुन्दर शीतला देवी का आश्रम है ॥ २३ ॥

सर्वदा पूजनं तस्याः सोमवारे विशेषतः ।

तदुत्तरे च तत्रैव देवी गौरी विराजते ॥ २४ ॥

उसी शीतला देवी का सदा काल पूजन करना चाहिये और सोमवार को विशेष करके पूजन करना चाहिये और उसी भूमी में उसके उत्तर दिशा में गौरी देवी विराजमान हैं ॥ २४ ॥

यस्याः स्मरणं माघेण निगडादिभयं नहि ।

॥ यात्रा तस्याः प्रयत्नेन कर्तव्या प्रत्यहं जनैः ॥ २५ ॥

जिस गौरी देवी के स्मरण माघ से बेशी आदि के वन्धन का भय नहीं रहता प्राणी को बड़े यत्न से नित्यव्रति उसकी यात्रा करनी चाहिये ॥२५॥

मङ्गलोहि विशेषेण सर्व कामार्थ सिद्धिदा ।

॥ तदुत्तरे तथा विप्र योगिनी स्थानमुत्तमम् ॥ २६ ॥

और मङ्गल के दिन विशेष करके यात्रा करने से सम्पूर्ण कामना अर्थ रूपी सिद्धि को देने वाली है हे विप्र उस शीतला स्थान के उत्तर दिशा में परम उत्तम योगिनी का स्थान है ॥२६॥

चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां यात्रा तस्या विनिर्मिता ।

॥ तस्या पूर्व दिशा भागे वर्तते तीर्थ मुत्तमम् ॥ २७ ॥

उस योगिनी स्थान को यात्रा चतुर्दशी २ को निर्माण की गई है उस योगिनी स्थान के पूर्व दिशा में एक उत्तम तीर्थ वर्तमान है ॥२७॥

भार्गवेति च विख्यातं सर्व तीर्थोत्तमोत्तमम् ।

॥ भाद्रे कृष्ण चतुर्दश्यां यात्रा साम्बत्सरी स्मृता ॥ २८ ॥

वह परशुराम तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है सम्पूर्ण तीर्थों से उत्तमोत्तम है एक वर्ष में भादों मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को उसको यात्रा कही गई है ॥२८॥

तस्मान्नैऋत्यदिग्भागे दालभ्याश्रममुत्तमम् ।

॥ ईशान भागे तत्रैव स्थानं त्रैलोक्य पावनम् ॥ २९ ॥

उस परशुराम तीर्थ से नैऋत्य कोण में परम उत्तम दालभ्य आश्रम का स्थान है पुनः उस दालभ्याश्रम के ईशान कोण में तीनों लोक को पवित्र करने वाला ॥२९॥

सरस्वत्यामहा पुण्यं योग सिद्धि प्रदायकम् ।

॥ तस्माद् दक्षिणादिग्भागे सावित्री स्थानमुत्तमम् ॥ ३० ॥

महापवित्र योग सिद्धि को देने वाला सरस्वती का स्थान है उस सरस्वती स्थान के दक्षिण दिशा में सावित्री का स्थान है ॥३०॥

अष्टम्यामपि चाष्टम्यां यात्रा स्यात्प्रतिमासिकी ।

आश्विने शुक्ल पक्षस्य नवरात्रे विशेषतः ॥ ३१ ॥

सब मासों में अष्टमी २ के दिन यात्रा होती है और आश्विन मास के शुक्ल पक्ष के नव रात्र में विशेष करके यात्रा होती है ।

तत्समीपे संपूज्यौ सीतारामौ सलहमणौ ।

तथैव पार्वतीनाथं गणनाथं तथैव च ॥ ३२ ॥

उस सावित्री के समीप में श्री लण्ण लाल जू के सहित श्री सीताराम विराजमान हैं तिन श्री सीताराम जू को विधि पूर्वक पूजन करना चाहिये तथा श्री महादेव जू का और गणेश जू की पूजन करना चाहिये ॥३२॥

पूजयेत् भक्तितो नित्यं मनोवांछा फलं लभेत् ।

तस्योत्तर दिशा भागे सुतीक्ष्णस्याश्रमं शुभम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार से जो प्राणी भक्ति करके संयुक्त नित्य पूजन करता है वह प्राणी मनोरथ के सिद्धि को प्राप्त होता है पुनः उसके उत्तर दिशा में सुन्दर सुतीक्ष्ण जी का आश्रम है ॥३३॥

तस्यास्ति निकटे तातह्यगस्त्यस्याश्रमं शुभम् ।

इति ते कथितं तात तीर्थ माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

हे तात उस सुतीक्ष्णाश्रम के समीप में परम सुन्दर श्री अगस्त्य जी का आश्रम है हे तात इस प्रकार से तीर्थों का माहात्म्य हमने तुम्हारे से कहा ॥३४॥

योजनायामविस्तार मध्ये पर्वत गङ्गयोः ।

एतान्याश्रम मुख्यानि स्थितानि द्विजसत्तम ॥ ३५ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ श्री कामद गिरि और मन्दाकिनी गंगा का एक योजना का विस्तार जो मध्य भाग तिस में यह सब प्रधान आश्रम स्थित हैं ॥३५॥

मन्दाकिन्याः पश्चिमे च चित्रकूटाच्च पूर्वतः ।

वेद्या दक्षिणतश्चैव सीतारामस्यचोत्तरे ॥ ३६ ॥

श्री मन्दाकिनी गंगा के पश्चिम भाग में और श्री कामद गिरि के पूर्व भाग में और य वेदी से दक्षिण भाग में सीताराम जी से उत्तर भाग में ॥३६॥

साकेत नगरं नाम वनं मुनि गणाग्रयम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पाप नाशनम् ॥ ३७ ॥

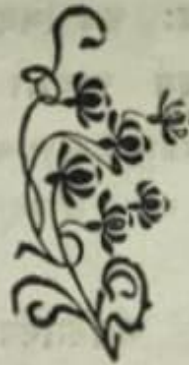
मुनिगण का आश्रय भूत साकेत नगर नाम का वन है इससे परे पापों को नाश करने वाले इन के माहात्म्य को हम कहेंगे ॥ ३७ ॥

इति बृहद्रामायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीश्रीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्व प्रकाशिका भाषा टीका

नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥



षष्ठदशोऽध्यायः ।

प्रदक्षिणाया माहात्म्यं शृणु पुण्यं महामते ।

साष्टाङ्गस्थापि माहात्म्यं कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ १ ॥

हे महामते पवित्र जो गिरिराज के प्रदक्षिणा का माहात्म्य तिस को सुनो और साष्टाङ्ग प्रदक्षिण के माहात्म्य को हम कहते हैं उस को भी सुनो ॥ १ ॥

कश्चिद्गन्धर्व पुत्रस्तु नाम्ना ह्यासीत्सुकण्ठकः ।

रूपेणाप्रतिमोलोके स्वरेण च महामते ॥ २ ॥

कोई गन्धर्व का पुत्र सुकण्ठ नाम रहा हे महामते उसके रूप और कंठ के स्वर के बराबर लोक में और भी कोई न रहा ॥ २ ॥

गाने वाद्ये च निपुणः सर्व विद्या विशारदः ।

यस्य गानं समाकार्य पार्वती वल्लभो विभुः ॥ ३ ॥

वह गन्धर्व पुत्र गाने और बजाने में बड़ा चतुर रहा और संपूर्ण विद्याओं का पंडित रहा किसी समय में परम समर्थ श्रीमहादेवजी ने उस गन्धर्व के गान को सुन करके ॥ ३ ॥

मुमोह परमानन्दे मग्नस्तस्य वरं ददौ ।

रूपेणाप्रतिमो लोके गाने वाद्ये च कोविदः ॥ ४ ॥

मोहित हो गये और परमानन्द में मग्न हो कर उसको वरदान दिया कि तुम सुन्दरता करके लोक में अतुल होवोगे और गाने बजाने में पंडित होवोगे ॥ ४ ॥

भविष्यति न संदेहो गंधर्वाणां शिरोमणिः ।

इति लब्ध्वा वरं रुद्राद्भूरियौवन गर्वितः ॥ ५ ॥

और गन्धर्वों में शिरोमणि होंगे इसमें संदेह नहीं इस प्रकार से श्रीमहादेवजी से वरदान को प्राप्त होकर महा युवा अवस्था करके गर्वित हो गया ॥ ५ ॥

चचाराप्रतिमो लोके गानं कृत्वा मनोरमम् ।

च्छीणामाश्रमान्मु ख्यान् मोहयन् गान कोविदः ॥ ६ ॥

लोकों में अतुल हुआ और गान विद्या का पण्डित हुआ सुन्दर मनोरञ्जन गान को करके प्रधान ऋषिओं के आश्रमों को मोहित करता हुआ चिबरने लगा ॥ ६ ॥

विंध्यपादे मुनीशस्तु ऋचीको नाम विभ्रतः ।

तताप स महत्तेजस्तपः परम दारुणम् ॥ ७ ॥

विन्ध्या पर्वत के विषे परम प्रसिद्ध महा तेजस्वी ऋचीक नाम के महर्षि हैं
सो महा घोर तप को तपते रहे ॥ ७ ॥

तस्याश्रम समीपे च गन्धर्वो गान कोविदः ।

स्ववीणां मूर्च्छयित्वा तु जगौ गानं मनोरमम् ॥ ८ ॥

उन ऋषि के आश्रम के समीप में वह गाने में चतुर जो गन्धर्व है अपने वीणा
को चढ़ा कर सुन्दर मनोरञ्जन गान को गाने लगा ॥ ८ ॥

तद्गान स्वरमाकर्ण्य ऋचीको द्विजसत्तमः ।

विसस्मार तपश्चर्यां काम वासव संगतः ॥ ९ ॥

द्विजों में श्रेष्ठ ऋचीक ऋषि उसके गान के स्वर को सुन करके कामदेव के
बशीभूत हुए तपश्चर्या को भूल गया ॥ ९ ॥

गत्वा गन्धर्वराजस्य समीपे द्विजसत्तमः ।

उवाच वचनं शान्तं सुकण्ठं प्रति वाडवः ॥ १० ॥

द्विजों में श्रेष्ठ वह ऋचीक ऋषि हैं सो उस गन्धर्वराज के समीप जाकर
बड़े शान्त वचन सुकण्ठ के प्रति बोले ॥ १० ॥

भो सुकण्ठ सुगीतज्ञ मद्वाक्यं शृणु सांप्रतम् ।

त्वदगीतेनैव मदनं वाधते मां तपस्विनं ॥ ११ ॥

हे सुकण्ठ तुम गान विद्या को अच्छी प्रकार से जानते हो इस समय तुम
हमारे वाक्य को सुनो हम तप करते हैं तुम्हारे गान से हम को कामदेव बाधा
करता है ॥ ११ ॥

त्वमेतस्थानकं त्यक्त्वा गच्छ स्थानान्तरं शुभम् ।

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं सुकण्ठो गान तत्परः ॥ १२ ॥

तुम इस स्थान को छोड़ कर और किसी सुन्दरस्थान को चले जावों गाने में
तत्पर हुआ वह सुकण्ठ नाम का गन्धर्व है सो इस प्रकार से मुनि के सुन्दर वाक्य
को श्रवण करके ॥ १२ ॥

उवाच वचनं गर्वात्तं मुनिं दीप्त तेजसम् ।

एतत्स्थानम्परित्यज्य गच्छ स्थानान्तरं द्विज ॥ १३ ॥

बड़े अहंकार संयुक्त वचन देदीप्यमान है तेज जिसका ऐसे ऋचीक ऋषि के प्रति बोला है ब्राह्मण तुम इस स्थान को छोड़ कर और स्थान में चले जाओ ॥ १३ ॥

एतत्साधारणं स्थानं यथा तव तथा मम ।

एतच्छ्रुत्वा मुनिर्वाक्यं गन्धर्वसूनोर्गर्वितम् ॥ १४ ॥

यह साधारण स्थान जैसे तुम्हारा तैसे हमारा है इस प्रकार से गन्धर्व पुत्र के अहंकार युक्त वाक्य को सुन करके वह ऋचीक ऋषि हैं सो ॥ १४ ॥

प्रत्युवाच महातेजा कोपसंरक्त लोचनः ।

राक्षसो भवदुर्बुद्धे ममाज्ञा विमुखो यतः ॥ १५ ॥

कोप करके रक्त वर्ण नेत्र हुये महातेजस्वी उस गन्धर्व के प्रति बोले है दुर्बुद्धि जो तू हमारी आज्ञा से विमुख है तो राक्षस हो जा ॥ १५ ॥

सर्व पाप समायुक्तो भवत्वं राक्षसाधमः ।

तथैव पितरो ये च नरकार्ति प्रपद्यताम् ॥ १६ ॥

सम्पूर्ण पापों से युक्त हुआ अधम राक्षस तू हो जा और जो तेरे पितर हैं वे नरक में दुःख को प्राप्त होवें ॥ १६ ॥

येषां कुले त्वमुत्पन्नः पाप रूपी कुलान्तकः ।

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गन्धर्वो द्विज सत्तमः ॥ १७ ॥

तू पाप रूप जिस के कुल में उत्पन्न हुआ उसके कुल को नाश करने वाला हुआ है द्विजों में श्रेष्ठ इस प्रकार मुनि के वाक्य को सुन करके वह जो गन्धर्व है ॥ १७ ॥

पपात चरणोपान्ते त्राहि त्राहीति सम्बदन् ।

तस्य तत्संकटं वीक्ष्य समुनिः करुणार्द्रधीः ॥ १८ ॥

रक्षा करो रक्षा करो ऐसा कहता हुआ उस मुनि के चरण के समीप में गिर पड़ा इस प्रकार का उसका संकट देख कर करुणा करके आर्द्र है हृदय जिन का ऐसे वह मुनि हैं सो ॥ १८ ॥

शापोद्धारं चकाराशु पंच वर्ष भविष्यति ।

भरद्वाजो महा तेजा मुनिर्मोक्षपरायणः ॥ १९ ॥

उसके शाप का उद्धार तत्काल ही करते भये जाये। पाँच वर्ष पर्यन्त हमारा शाप तुम को रहेगा परम तेजस्वी मोक्ष धर्म तत्पर ऐसे भरद्वाज ऋषि हैं ॥१६॥

तस्योपदेशाद्गन्धर्वं शापस्यान्तो भविष्यति ।

इत्युक्त्वा तं महातेजा मुनि शान्तिं जगाम ह ॥ २० ॥

हे गन्धर्वं उन ऋषि के उपदेश से तुम्हारे शाप का अन्त हो जायगा इस प्रकार कह कर परम तेजस्वी ऋचीक ऋषि हैं सो शान्ति को प्राप्त हो गये ॥२०॥

स राक्षसो द्विज श्रेष्ठ वभ्राम पृथिवी तले ।

सर्वान् जीवगणान् निभन् दृश्यन्नाश्रमान् शुभान् ॥२१॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ वह राक्षस सम्पूर्ण जीव गणों का नाश करता हुआ और सुन्दर ऋषियों के आश्रमों को दूषिता करता हुआ पृथ्वी तल पर घूमने लगा ॥२१॥

स्थितः प्रयागे भगवान् भरद्वाजः प्रसन्नधीः ।

तं ददर्श निशाचारी शापस्यान्तोऽभवत्तदा ॥ २२ ॥

वह प्रसन्न चित्त वाले भगवान् भरद्वाज जो श्रीप्रयागराज में स्थित रहे उन महर्षि भरद्वाजजी को उस निशाचर ने देखा उसी समय उसके शाप का अन्त समय आ गया ॥ २२ ॥

दर्शनान्मुनि मुख्यस्य दिव्यं ज्ञानमवाप ह ।

पपात चरणोपाति मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ २३ ॥

वह राक्षस मुनियों में प्रधान श्रीभरद्वाज जी के दर्शन से दिव्य ज्ञान को प्राप्त हो गया और महात्मा मुनि जो भरद्वाज जी तिनके चरण के समीप जा कर गिर पड़ा ॥ २३ ॥

सपृष्ठ स्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्रकः ।

उवाच राक्षस श्रेष्ठो वचनं विस्मयान्वितम् ॥ २४ ॥

वह भरद्वाज ऋषि ने पूछा हे रतू कीन है और यहाँ पर आने का तेरा क्या कारण है। यह सुन कर वह राक्षसों में श्रेष्ठ आश्चर्यमय वाक्य को बोलता भया ॥ २४ ॥

राक्षस उवाच ।

गन्धर्वोऽहं द्विजश्रेष्ठ नाम्ना चैव सुकंठकः ।

ऋचीकेनैव शप्तोऽस्मि शापोद्धारं कुरु प्रभो ॥ २५ ॥

यह राक्षस बोला—हे द्विजों में श्रेष्ठ मैं सुकण्ठ नाम का गन्धर्व हूँ प्रचीक
अपि मेरे को शाय दिया है जिस से मैं राक्षस हुआ हूँ हे प्रभो अब आप कृपा
करके मेरे को आप से उद्धार कीजिये ॥२५॥

मदीयः पूर्वजाः सर्वे नरके निवसन्ति च ।

श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकजो भरद्वाजो मुनीश्वरः ॥ २६ ॥

और मेरे पितर सब नरक में निवास कर रहे हैं तीनों लोक के वृत्तान्त जानने
वाले यह मुनीश्वर भरद्वाज जी ने ॥ २६ ॥

दध्यौ प्रसन्नकरणः कारणां ज्ञानवान्प्रभुः ।

उवाच वचनं तत्र मुनिर्गम्भीरया गिरां ॥ २७ ॥

प्रसन्न है अन्तःकरण जिनका ऐसे परम समर्थ वह मुनि भरद्वाज अपि उसके
कारण को चिन्तन करते हुए और गम्भीर स्वर से यह वाक्य बोलते भये ॥२७॥

चित्रकूटो गिरि श्रेष्ठः श्रीराम पदभूषितः ।

यत्रमन्दाकिनी गंगा वर्तते लोकपावनी ॥ २८ ॥

श्रीसोतारामजी के चरणों करके अंकित ऐसा गिरिराज श्री चित्रकूट है जहाँ
पर लोकों को पवित्र करने वाली मन्दाकिनी नाम गंगा वर्तमान है ॥ २८ ॥

स्नात्वा मन्दाकिनी तीये गिरेः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।

साष्टाङ्गं राक्षस श्रेष्ठ स्वां योनिम्प्रतिपत्स्यसे ॥ २९ ॥

श्रीमन्दाकिनी के जल में स्नान करके और गिरिराज को साष्टाङ्ग प्रदक्षिणा
करने से राक्षसों में श्रेष्ठ तू अपने योनि को प्राप्त हो जायगा ॥ २९ ॥

श्रुत्वा तस्य मुनेर्वाक्यं राक्षसो मुनि सत्तम ।

आजगाम शुभं क्षेतं चित्रकूटस्मणि प्रभम् ॥ ३० ॥

हे मुनियों में श्रेष्ठ उन भरद्वाज मुनि के वाक्य को सुनकर यह राक्षस मणि
के समान काम्ति है जिसकी ऐसे शुभ स्थान श्रीचित्रकूट को आवता भया ॥ ३० ॥

स्नात्वा मन्दाकिनी नीरे ह्याजगाम गिरेरधः ।

चकार दक्षिणावर्तं साष्टाङ्गं दिवजसत्तम ॥ ३१ ॥

श्री मन्दाकिनी जल में स्नान करके गिरिराज के नीचे आया और हे द्विजों में
श्रेष्ठ वह दक्षिण वर्त साष्टाङ्ग दण्डवत् करता हुआ ॥ ३१ ॥

साष्टाङ्गस्य प्रभावेण शापस्यान्तोऽभवत्तदा ।

दिव्यं विमानमाकृष्ट्य गान्धर्वं लोकमागतः ॥ ३२ ॥

उस समय में साष्टाङ्ग दण्डवत् के प्रभाव से उसके शाप का अन्त हो गया और दिव्य विमान पर चढ़ कर अपने गान्धर्व लोक को आवता भया ॥ ३२ ॥

तस्य ते पितरः सर्वे वैकुण्ठं हरिं वल्लभम् ।

जम्बुर्वच सुरेशानां विष्वक्सेनादयो द्विज ॥ ३३ ॥

पुनः हे द्विज उसके जो पितर हैं सो श्री विष्णु भगवान् अर्थात् नारायण को परम प्रिय जो वैकुण्ठ लोक तिस को जाते हुये जहाँ पर विष्वक्सेनादिक भगवान् के पार्षद रहते हैं ॥ ३३ ॥

भृशुण्डिरुवाच ।

इतीदं कथितं विप्र साष्टाङ्गस्यैव पावनं ।

माहात्म्यं सर्व पापघ्नं सर्व व्याधि विनाशनम् ॥ ३४ ॥

हे विप्र सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाला और व्याधिओं को नाश करने वाला यह साष्टाङ्ग प्रदक्षिणा के माहात्म्य को हमने तुम्हारे से कथन किया यह परम पवित्र माहात्म्य है ॥ ३४ ॥

ये कुर्वन्ति द्विज श्रेष्ठ साष्टाङ्गं श्रद्धयान्विताः ।

ते पुत्र पौत्र सम्पत्तिं धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ३५ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ जो प्राणी श्रद्धा करके संयुक्त साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं वे प्राणी धनधान्य के सहित ऐश्वर्यवान् हुये पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥

प्राप्नुवन्ति नरा लोके ह्यमुत्र च परां गतिम् ।

सर्वे विघ्नाः क्षयं यान्ति दुःख दारिद्र्यं सम्भवाः ॥ ३६ ॥

और परलोक में उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और दुःख दारिद्र्य रूप से उत्पन्न हुये सम्पूर्ण विघ्न हैं सो नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

येषां शरीरे तिष्ठन्ति रजांसि द्विजसत्तम ।

तावदब्दं सहस्राणि स्वर्गं लोके महीयते ॥ ३७ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ जिन प्राणी के शरीर में जितना प्रदक्षिणा कारज वर्तमान रहता है उतना ही हजार वर्ष वह प्राणी स्वर्ग लोक में निवास करते हैं ॥ ३७ ॥

श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठमिदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्युतम् ।

यज्ञवेद्यां दिवजश्रेष्ठ कुण्डान् वक्ष्यामि तान् शृणु ॥३८॥

यह श्री चित्रकूट तीर्थ श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है तीनों लोक में प्रसिद्ध यह वेदी में जो कुण्ड है तिनको हम कहते हैं तुम सुनो ॥ ३८ ॥

यत मष्टोत्तरं कुण्डं ब्रह्मणा कल्पितं पुरा ।

तेषां दर्शन मात्रेण सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥

श्री ब्रह्माजी ने प्रथम एक सौ आठ १०८ कुण्ड रचना किया है उनके दर्शन मात्र से प्राणी सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है ॥ ३९ ॥

आश्विने शुक्ल पक्षस्य प्रारभ्य दशमी तिथिम् ।

कार्तिकी पूर्णिमा यावत्तावदेव विचक्षणैः ॥ ४० ॥

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को आरम्भ करके और कार्तिक की पूर्णमा जब तक आवे तब तक चतुर प्राणियों को ॥४०॥

दातव्यं दीपदानं तु सर्व यात्रा फलप्रदम् ।

पुण्यः स्वर्गोपमस्तात चित्रकूटो गिरीश्वरः ॥ ४१ ॥

दीप दान देना चाहिये वह दीप दान सम्पूर्ण तीर्थ यात्रा के फल को देने वाला और है तात यह श्री चित्रकूट गिरिराज हैं सो बड़े पवित्र हैं और स्वर्ग के सदृश हैं ॥ ४१ ॥

चित्रकूटोपरि साक्षात् शिलापुरी नामपर्वतः ।

शिलासु तत्र बहुशः उपला लाघवस्तथा ॥ ४२ ॥

षडरीफल समास्तेतु तेषु धूसर मृत्तिका ।

तस्मादाय अयस्तत्र जले क्वाथं तेन पचेत् तथा ॥ ४३ ॥

क्वाथं पिबति यः सम्यक् नैरोग्यं लभते ध्रुवम् ।

श्रीचित्रकूट पर्वत के ऊपर शिलापुरी पर्वत है जिस में छोटे छोटे पत्थर भट्टबैरी के समान होते हैं और उसमें भरी मृत्तिका निकलती है उसके लोहे के साथ काथ पीने से सर्व रोग शान्त होता है ॥ ४२-४३ ॥

तस्य शृङ्गे मुनीनां तु ह्याग्रमान् शृणु पुण्यदान् ।

ईशान कोणे यच्छृङ्गेमणि रत्न समर्चितम् ॥ ४४ ॥

उन विरिराज के शृङ्ग के ऊपर में पुण्य को देने वाले जो मुनियों के आश्रम हैं तिन को सुनो मणि और नाना प्रकार के रखों करके सम्यक् प्रकार से अर्चित नाम पूजित हैं अर्थात् तन्मय जो ईशान कोण में शृङ्ग है ॥ ४४ ॥

वाल्मीकेराश्रमं विद्धि सर्व पातक नाशनम् ।

पूर्वस्थां दिशि यच्छृङ्गं नाना धातु विराजितम् ॥ ४५ ॥

उसको श्री वाल्मीकि का आश्रम जानो वह आश्रम सम्पूर्ण पापों को नाश करनेवाला है और अनेक प्रकार की धातुओं करके विशेष शोभायमान जो पूर्व दिशा के शृङ्ग है ॥ ४५ ॥

च्यवनस्याश्रमं विद्धि दर्शनात्पातकापहम् ।

तत्रारपेनैव सिद्ध्यन्ति पुरुषाः तपसा विभो ॥ ४६ ॥

उसको तुम दर्शन मात्र से पापों को हरण करने वाला श्रीच्यवन ऋषि का आश्रम जानों हे शाण्डिल्य तुम भी तो समर्थ हो देखो इस आश्रम के बिने थोड़े ही तप से प्राणी सिद्ध हो जाता है ॥ ४६ ॥

आग्नेय्यां दिशि विप्रेन्द्र गोमन्तं शिखरं विदुः ।

अगस्तेराश्रमं तत्र पावनं पुण्य वर्धनम् ॥ ४७ ॥

हे विप्रेन्द्र अग्नि कोण में गोमान नाम के शिखर को सब जानते हैं वहां पर पुण्य की वृद्धि करने वाला परम पवित्र अगस्त्य ऋषि का आश्रम है ॥ ४७ ॥

याम्यां दिशि द्विजश्रेष्ठ माणिक्यं शिखरं विदुः ।

गर्गाचार्यस्य संस्थानम्पुत्र पौत्रादि दायकम् ॥ ४८ ॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ दक्षिण दिशा में जो माणिक्य नाम का शिखर है सब जानते हैं वह पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति को देने वाला गर्गाचार्य का स्थान है ॥ ४८ ॥

नैर्ऋत्यां दिशि विप्रेन्द्र शृङ्गं सहाचलम्मतम् ।

सुराचार्यस्य संस्थानं विद्या बोध प्रदायकम् ॥ ४९ ॥

हे विप्रेन्द्र नैर्ऋत्य कोणमें सहाचल नाम का शिखर कहते हैं वहां पर ज्ञान के देनेवाला सुराचार्य ऋषि का स्थान है ॥ ४९ ॥

प्रीतर्क्षा दिशि विप्रेन्द्र शृङ्गं गोवर्धनम्मतम् ।

वशिष्टस्याश्रमं तत्र वर्तते लोक पावनम् ॥ ५० ॥

हे विप्रेन्द्र पश्चिम दिशा में गोबरधन नाम का शृङ्ग कहते हैं वहाँ पर लोक के पवित्र करने वाला श्रीवशिष्ठ जी का आश्रम वर्तमान है ॥ ५० ॥

वायव्यां दिशि विप्रेन्द्र विचित्रं शिखरं विदुः ।

भृगुर्मुनीन्द्रो भगवान् वर्तते तपसि स्थितः ॥ ५१ ॥

हे विप्रेन्द्र वायव्य कोण में विचित्र नाम का शिखर है सर्व प्राणी जानते हैं वहाँ पर मुनियों के ईश्वर तप में स्थित हुए भगवान् भृगु जी वर्तमान हैं ॥ ५१ ॥

उत्तरस्यां दिशि तथा सुवर्णं शिखरं स्मृतम् ।

पुलस्त्यस्याश्रमं तत्र धर्मं कामार्थं मोक्षदम् ॥ ५२ ॥

उत्तर दिशा में सुवर्ण शिखर कहा जाता है वहाँ पर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को देने वाला पुलस्त्य जी का आश्रम है ॥ ५२ ॥

गिरिराजस्य गङ्गाया मध्ये त्रैलोक्य पावनम् ।

न्यग्रोधकेति विख्यातं दर्शनात्पातकापहम् ॥ ५३ ॥

श्री विचित्रकूट गिरिराज और मन्दाकिनी गंगा के मध्य में न्यग्रोध तीर्थ नाम से प्रसिद्ध है दर्शन करने से संपूर्ण पापों को नाश करता है ॥ ५३ ॥

बालखिल्यैर्मुनिगणैर्यत्र तप्तम्महत्तपः ।

पयस्विनी च सावित्री गङ्गा मन्दाकिनी तथा ॥ ५४ ॥

बालखिल्य मुनि गणों ने जहाँ पर महान् तप किया है पयस्विनी और सावित्री तथा मन्दाकिनी ये जो गङ्गा हैं ॥ ५४ ॥

एतासां सङ्गमो यत्र प्रयागं राघवं विदुः ।

सनकाद्यैर्मुनिगणैर्यत्र तप्तम्महत्तपः ॥ ५५ ॥

इन सब नदियों के जहाँ पर संगम है उनको श्री राघव प्रयाग कहते हैं जहाँ पर सनकादिक ऋषियों ने महान् तप किया है ॥ ५५ ॥

यत्र सर्वा सरिच्छ्रेष्ठा जानकीशम्परात्परम् ।

स्वं स्वं तोयमुपादाय स्नापयन्ति रघूत्तमम् ॥ ५६ ॥

जहाँ पर संपूर्ण जितनी श्रेष्ठ नदियाँ हैं वे सब अपना २ जल ग्रहण करके परात्पर श्रीसीतारामजी को स्नान करावती हैं ॥ ५६ ॥

श्री भुशुण्डिरुवाच ।

एतत्ते कथितं विप्र माहात्म्यम्पापनाशनम् ।

अग्रे रामरहस्यं च गोपनीयं सदा बुधैः ॥ ५७ ॥

श्रीभुशुण्डिजी बोले हे विप्रेन्द्र संपूर्ण पापों को नाश करनेवाले इस श्रीचित्रकूट
माहात्म्य को हमने तुम्हारे से कहा अब आगे यहां से विज्ञानी पुरुषों करके अत्यन्त
छिपाने योग्य श्रीराम जो का रहस्य है ॥ ५७ ॥

न प्रकाश्यं न प्रकाश्यं न प्रकाश्यं कदाचन ।

प्रकाशिते सिद्धिं हानिः सर्वदा चैव गोपयेत् ॥ ५८ ॥

कदापि नहीं प्रकाश करना, नहीं प्रकाश करना, नहीं प्रकाश करना, प्रकाश
करने से सिद्धि की हानि होती है इससे सर्वदा छिपाना चाहिये ॥ ५८ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातस्माहात्म्यम्पापनाशनम् ।

यस्य श्रवणं मातृण ब्रह्महत्यादि पातकाः ॥ ५९ ॥

संपूर्ण पापों को नाश करनेवाले इस माहात्म्य को हमने तुम्हारे से कहा जिस
के श्रवण मात्र से ब्रह्म हत्यादि पातक जो हैं ॥ ५९ ॥

विनाशं यान्ति विप्रेन्द्र ह्यन्येषां चैव का कथा ।

एकाग्र मानसं कृत्वा यातूनां कुर्वन्ति ये नराः ॥ ६० ॥

विनाश को प्राप्त हो जाते हैं और पातकों को क्या कहना है एकाग्र मन से
जो प्राणी इस तीर्थ को यात्रा करते हैं ॥ ६० ॥

ते प्राप्नुवन्ति सततम्पुत्र पौत्रादि सम्पदाम् ।

शश्वद्विनाशमायान्ति गोवधाद्युपपातकाः ॥ ६१ ॥

वह प्राणी निरन्तर पुत्र पौत्रादि संपत्ति को प्राप्त होते हैं निरन्तर गो वधादि
उपपातक नाश हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

राम भक्तिं प्राप्नुवन्ति चित्तूकूटेति नामतः ।

कामदेति च नाम्ना चै सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥

जो प्राणी केवल चित्रकूट ऐसा नाम लेते हैं वे श्रीरामजी के भक्ति को प्राप्त
होते हैं कामदा नाथ ऐसे नाम से संपूर्ण कामना को प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥

माहात्म्यं मेतत्कवितंपुरातनम् ,

वाल्मीकिगीतं सुतधान्यवर्धनम् ।

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति ये नराः ,

ते राम भक्तिं सततं लभन्ते ॥ ६३ ॥

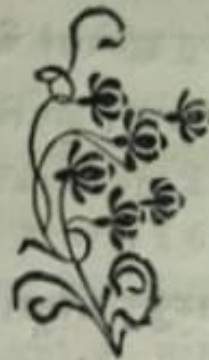
पुनः पुनः धन धान्य की वृद्धि करने वाला श्रीवाल्मीकि जी करके कथन किया हुआ प्राचीन इस माहात्म्य को जो प्राणी श्रवण करते हैं पुनः और श्रोताओं के समाज में गान करते हैं तथा अपने अथ शून्य देश में कीर्तन करते हैं वे प्राणी सदा ही श्रीराम जी के सेवा में प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥

इति बृहद्रामायणे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीश्रीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

नाम पष्ठदशोऽध्यायः । १६ ।



इति पूर्वार्द्धम् समाप्तम् ।

श्री ज्ञानकी नाथो विजयदेवराय ।

अथ उत्तरार्द्धम्

बृहद् चित्रकूट माहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः ।

दीर्घकालोपितस्तस्मिन्नगरी गिरिवर प्रिय ।

वैदेह्यः प्रिय मार्काक्षन्स्वं च चित्तं विलोभयन् ॥ १ ॥

गिरिवर श्री चित्रकूट के प्रियकारी श्रीरघुनन्दन जू बहुत समय तक उन पर्वत पर बसे रहे श्री जनक नन्दनी जू को प्रिय करने व अपने चित्त को लुभाने के लिये ॥१॥

अथ दाशरथिचित्रं चित्रकूटमदर्शयत् ।

भार्याममरसंकाशः शचीमिव पुरंदरः ॥ २ ॥

अति रूप कोट काम के छवि को दूर करने वाले श्री रघुनन्दन जू अपनी प्रिया श्री किशोरी जू को चित्र विचित्र चित्रकूट दिखाने लगे जैसे इन्द्र अपने इन्द्राणि को धन की शोभा दिखाते हैं ॥२॥

न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः ।

मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम् ॥ ३ ॥

श्री किशोरी से जू कहने लगे हे प्रिये इस रमणीय पर्वत को देखो राज त्याग करना बिना सुहृदों के यहां रहना हमको नहीं बाधता ॥३॥

पश्येममचलं भद्रे नाना दिवज गणायुतम् ।

शिखरैः खमिवोद् बद्धै र्धातुमद्भि र्विभूषितम् ॥ ४ ॥

हे भद्रे नाना पक्षी गण सेवित धातु सहित मानो आकाश को भेदन करते हैं ऐसे कंकूरों से शोभित यह पर्वत देखो ॥४॥

केचिद्रजतसंकाशाः केचित्सतज सन्निभाः ।

पीतमांजिष्ट वर्णाश्चकेचिन्मणि वर प्रभाः ॥ ५ ॥

इस पर्वत के कोई २ स्थान चांदी के समान चमक रहे हैं कोई खजिर के समान लाल हैं कोई २ पीला मेंजीठ के रंग के कोई २ इन्द्र नील मणि के रंग के हैं ॥४॥

पुष्पार्क केतकाभाश्च केचिज्ज्योती रसप्रभा ।

विराजन्तेऽचलेंद्रस्य देशाधातु विभूषिताः ॥ ६ ॥

कोई २ मदार के फूल के रंग हैं कोई २ केतकी के रंग के हैं कोई २ नक्षत्रों व पारा के रंग के हैं ये सब नाना प्रकार के धातुओं के कारण नाना प्रकार के रंग युक्त पर्वतराज श्री चित्रकूट के स्थान शोभित हैं ॥६॥

नाना मृगगणैर्दूर्ध्वोपि तरद्वृक्षगणैर्वृतः ।

अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहु पक्षि समाकुलः ॥ ७ ॥

नाना भांति के मृग गण व्याप्त बिता श्रद्धादि समूहों से यह पर्वत शोभित होता है पक्षी भी नाना प्रकार के इन पर हैं जितने जीव हैं अपनी दुष्टता को त्यागे हैं ॥ ७ ॥

आम्र जम्बसुनैर्लोध्रैः प्रियालीः पनसैर्धवैः ।

अंकीलैर्भव्यतिमिशैर्बिल्वतिन्दुकवेषुभिः ॥ ८ ॥

आम्र, जामुन, असना, लोध्र, चिरोजो, कटहर, अंकुहर, तिमिश, बेल, तेंदु, बांस ॥ ८ ॥

काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधुकैस्तिलकै रपि ।

बदर्यामलकैर्नीपैर्वैत्र धन्वनधीजकै ॥ ९ ॥

काश्मरी, नींबू, वरुण, महुआ, तिलक, वैतर, आमला, कदम्ब, बेत, बिजौरा, नींबू ॥ ९ ॥

पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः ।

एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः ॥ १० ॥

इत्यादि नाना प्रकार के फूले फले सुन्दर सघन छाया युक्त वृक्षों से शोभित यह पर्वत लक्ष्मी नाम शोभा को भी शोभित करता है ॥१०॥

शैल प्रस्थेपुरम्पेषु पश्येमान्काम हर्षणान् ।

किन्नरान्द्रुशोभद्रे रममाणान्मनस्विनः ॥ ११ ॥

हे भद्रे इसके रम्य कंगूरों व अपनी २ जोड़ियों के संग विहरते हुये मनस्वी किन्नरों को देखो कैसे चित्त को हर्षित कर रहे हैं ॥११॥

शाखावसक्तान्खङ्गाश्च प्रवराण्यं वराणि च ।

पश्य विद्याधरस्त्रीणां क्रीडोद्देशान्मनोरमान् ॥ १२ ॥

देखो वृक्षों की डाली व विद्याधरों की स्त्रियों के अङ्गुष्ठे २ वस्त्र व उनके खङ्ग धरे हैं और २ उनके क्रीड़ा करने के मनोहर स्थान बने हैं ॥१२॥

जल प्रपातैरुद्भेदैर्निष्पदैश्चक्वचित्क्वचित् ।

स्त्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्त्रवन्मदइव द्विपः ॥ १३ ॥

कहीं २ जल के धारा के स्थान व मार्ग बने हैं *कहीं २ भरना भर रहे हैं व जल टपक रहे हैं मानों मद चूता हुआ हाथी है ॥१३॥

गुहा समीरणो गंधान्नाना पुष्प भवान्वहून् ।

प्राण तर्पणमभ्येत्य न नरं न प्रहर्षयेत् ॥ १४ ॥

यहां की गुहा से निकला शीतल मन्द सुगन्ध पवन नाना प्रकार के पुष्पों का रस जो कि प्राणों को तृप्त करता है समीप आय किस प्राणी को हर्षाता नहीं ॥१४॥

यदीह शरदोनेका स्त्वया सार्धमनिन्दिते ।

लहमणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षयति ॥ १५ ॥

हे आनन्द के देनेवाली यदि यहां अनेक वर्षों तक तुम्हारे व लपण लाल के साथ बसेंगे तो हमको शोक न बाधेगा यहां श्री युगल सरकार के एकान्त विहार श्री लपण लाल को संग में न जानेंगे ॥१५॥

बहु पुष्प फले रम्ये नाना द्विजगणा युते ।

विचित्र शिखरे ह्यस्मिन् रतवानस्मि भामिनि ॥ १६ ॥

हे प्रिये इनको बहुत पुष्प फल लगे हुये रम्य नाना पक्षियों से सेवित विचित्र शिखर युक्त देख हमारी प्रीति यहां बसने की होती है ॥१६॥

अनेन वनवासेन मम प्राप्तं फल द्वयम् ।

पितुश्चानुश्रयताधर्मं भरतस्य प्रियं तथा ॥ १७ ॥

इस वनवास में मुझको दो फल लाभ हुये हैं एक तो धर्म में स्थित हो पिता ज से उद्धारण हुआ और भरत ज का प्रिय हुआ ॥१७॥

वैदेहि रमसे कञ्चिच्चित्रकूटे मया सह ।

पश्यन्ती विविधान्भावान्मनो वाक्काय संमतान् ॥ १८ ॥

हे श्री जनक दुलारी मन बचन कर्मों से विविध भाँति के भाव देखती हुई हमारे सङ्ग इस चित्रकूट में बिहरी, यहाँ का भाव आश्चर्य द्वारे जानोगी अत्यन्त गुप्त रहस्य है ॥१८॥

इदमेवाग्रतं प्राह राज्ञि राजर्षयः परे ।

वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपितामहाः ॥ १९ ॥

हे राज्ञि ! हमारे मनु प्रभृति राजर्षि गणों ने श्रेष्ठ के कल्याण के लिये प्रवृत्त नियम पूर्वक वनवास करने को अमृत कहा है ॥१९॥

शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशालाः शतशोऽभितः ।

बहुलाबहुलैर्वर्णैर्नील पीतसितारुणैः ॥ २० ॥

इस पर्वत की सैकड़ों चित्र विचित्र शिला चारों ओर से शोभित होती हैं नील, पीत, सित, अरुण, आदि बहुत रङ्गों की शिला हैं ॥२०॥

निशि भांत्यचलेद्रस्यहुताशन शिखा इव ।

ओषधयः स्वप्रभा लक्ष्म्या भ्राजमानाः सहस्रशः ॥ २१ ॥

रात्रि को इस पर्वत राज पर की सहस्रों औषधी अपनी प्रभा की लक्ष्मी से शोभित अग्नि शिखा के समान शोभित होती है ॥२१॥

केचित्क्षयनिभादेशाः केचिदुद्यान सन्निभाः ।

केचिद्देश शिला भाँति पर्वतस्यास्य भामिनि ॥ २२ ॥

हे प्रिये इस पर्वत में कोई २ स्थान तो गृहों के समान बने हैं कोई २ पुष्प-वाटिका के समान कोई २ एक ही चट्टान के हैं ॥२२॥

मिच्छेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः ।

चित्रकूटस्य कूटायं दृश्यते सर्वतः शुभः ॥ २३ ॥

यह श्री चित्रकूट ऐसे विदित होते हैं कि मानों पृथिवी को फोड़ कर निकल आये हैं ये जो सब पर्वत दिखाई देते हैं वे चित्रकूट ही के हैं ॥२३॥

कुट्टस्यगर पुन्नाग भूर्ज पत्रोत्तरच्छदान् ।

कामिनी विस्तराः पश्य कुशेश्य दलायुतान् ॥ २४ ॥

कमलव पुत्रजीवक व भूर्य पत्रादि वृक्षों केपत्तों तथा गुच्छाओं को देखो तो कामी लोग इनको विछवना बनाते हैं ॥२४॥

मृदिताश्चापविद्धाश्च दृश्यन्ते कमलस्रजः ।

कामिभिर्वनितेपश्य फलानि विविधानि च ॥ २५ ॥

हे वनिते कमलों के कुलों को माला देखती ही कामी जीवों ने इनको बिछाये २ मद्भिर्दत्त कर त्याग दिया है व फल भी नाना प्रकार के खाये कर २ सब गये सो त्यागे हैं सो पड़े हैं ॥ २५ ॥

वस्वीकसारां नलिनीमतीत्यैवोत्तरान्कुरुन् ।

पर्वतश्चित्रकूटोऽसौ बहुमूल फलोदकः ॥ २६ ॥

यह श्री चित्रकूट पर्वत कुबेरपुरी व इन्द्रपुरियों की व उत्तर कुरु देशों को अनादर करता यहां बहुत जल व पुष्प व फलों से संयुक्त है ॥ २६ ॥

इमंतुकालं वनितेविजहिवांस्त्वयाच सीतेमहलदमणेन ।

रतिंप्रपत्स्ये कुलधर्मवर्धिनीं सतां पथि स्वैर्नियमैः परैः स्थितः ॥ २७ ॥

हे वनिते हे प्रिये इस समय तुम्हारे व लपण लाल के साथ विहार करता हुआ अपने श्रेष्ठ नियमों से सन्मार्ग में स्थित कुल धर्म के बढ़ाने वाली रती को प्राप्त होऊंगा ॥ २७ ॥

इति श्री बृहद्रामायणे उत्तराद्धेश्री चित्रकूटमाहात्म्ये श्रीसीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



द्वितीयोऽध्यायः ।

अथशैलाद्वनिष्क्रम्य मैथलीं कोशलेश्वरः ।

अदर्शयच्छुभ्रजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् ॥ १ ॥

तत् पश्चात् पर्वत दिखाने से निवृत्त हो श्री कोशलेश्वर जू श्री जनक दुलारी जू को शुभ जल सहित व अति रमणीय मन्दाकिनी नदी अवलोकन कराने लगे ॥ १ ॥

अब्रवीच्च वरारोहां चंद्रचारु निभाननाम् ।

विदेहराजस्य सुतां रामोराजीवलोचनः ॥ २ ॥

राजीव लोचन श्री राजकुमार जू चारु चन्द्रमुखी श्रेष्ठ जंघा वाली श्री विदेह राजकन्या से बोले ॥ २ ॥

विचित्र पुलिनां रम्यां हंस सारस सेविताम् ।

कुसुमैरूप संपन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥ ३ ॥

हे प्रिये विचित्र पुलिना, अति रमणीय, हंस सारस सेवित पुष्पों से सम्पन्न मन्दाकिनी नदी को देखो ॥ ३ ॥

नानाविधैस्तीररुहै र्वृता पुष्प फल द्रुमैः ।

राजंतीं राजराजस्य नलिनीमिव सर्वतः ॥ ४ ॥

नाना प्रकार के पुष्प फल युक्त किनारे वाले वृक्षों से घेरी हुई चारों ओर से कुवेर के श्री के समान राजती है यह विहार शोभा श्रीजानकी कुण्ड की जानिये ॥४॥

मृग मूय निपीतानिकलुषाभांसि सांप्रतम् ।

तीर्थानि रमणीयानि रतिं संजनयन्ति मे ॥ ५ ॥

इस समय मृगों के भुण्डों के पोने से इनका जल मलीन हो गया है पर घाट इसके अति रमणीय हैं इस से हमारी प्रीति को उत्पन्न कराते हैं ॥ ५ ॥

जटाजिनधराः कालेवल्कलोत्तर वाससः ।

अथयस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये ॥ ६ ॥

हे प्रिये बड़े प्रातःकाल इस मन्दाकिनी नदीमें जाय मृग चर्म धारण किये वृक्षों के थलफल वस्त्र पहिने ऋषि सब स्नान करते हैं ॥ ६ ॥

आदित्यमुपतिष्ठते नियमादूर्ध्वबाहवः ।

एते परे विशालाक्षि मुनयः संश्रितव्रताः ॥ ७ ॥

हे विशाल लोचनी ! वे सब और ये महा तपस्वीगण शास्त्र के लिखे हुये नियमों के पालन करने के लिये ऊपर को बाहु उठाये सूर्योपस्थान करते हैं ॥ ७ ॥

मारुतोद्भूतशिखरैः प्रनृत इव पर्वतः ।

पादपैः पुष्प पत्राणि मृजद्भिरभितो नदीम् ॥ ८ ॥

पवन के लगने से कांपते हुये व पत्र पुष्प गिरते हुये वृक्षों से जो कि इस नदी के दोनों किनारे पर लगे हैं युक्त यह पर्वत मानों नाच करने का प्रारम्भ ही कर रहा है ॥ ८ ॥

क्वचिन्मणिनिकाशोदांक्वचित्पुलिनशालिनीम् ।

क्वचित्सिद्धजनाकीर्णा पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥ ९ ॥

इस मन्दाकिनी नदी को तो देखो कि कहीं तो मणियों के समान निर्मल जल बह रहा है कहीं सुन्दर किनारा आनन्द दे रहा है कहीं सिद्ध जन बैठे तपस्या कर रहे हैं ॥ ९ ॥

निर्द्भूतान्वायुना पश्य वित मन्येतवतान्पुष्प संचयान् ।

पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे ॥ १० ॥

हे कुशोदर ! देखो तो पवन के लगने से कांपते हुये वृक्षों से गिरे पुष्पों के समूह के समूह पड़े हैं व बहुत पुष्प इस नदी में बहे चले जाते हैं उन्हें भी देखो ॥ १० ॥

पश्यैतद्वल्गुवचसो रथांगाहयना द्विजजाः ।

अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः ॥ ११ ॥

हे कल्याणि ! अति प्रिय मधुर वाणी बोलने वाले चकई चकवा पक्षियों को देखो तो कैसी सुहावनी बोली बोलते हुये किनारे बैठे हैं ॥ ११ ॥

दर्शनं चित्रकूस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने ।

अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात् ॥ १२ ॥

हे सुन्दर शोभा के बढ़ाने वाली चित्रकूट पर्वत के दर्शन करने व मन्दाकिनी नदी देखने व तुम्हें अवलोकन से हम श्री अयोध्या के निवास से अधिक सुख मानते हैं यह सरकारी वाक्प के द्वारे श्री अवध से श्री चित्रकूट अधिक है ॥ १२ ॥

विभूत कल्मषैः सिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः ।

नित्यांविशोभितजलां विगाहस्व मया सह ॥ १३ ॥

तप, दम, शम, करने से पाप रहित सिद्धों के स्नानों से नित्य चलायमान जल युक्त मन्दाकिनी में हमारे साथ स्नान करो यहां गुप्त विहार है, सुन्दर काण्ड में श्रीकिशोरी जू ने धोमाकृति नन्दन जू को दर्शाया है यथा सु० का० सं० ३८ ।

तस्यो पवन खण्डेषु नाना पुष्प सुगन्धिवु । विहृत्य सलिलेक्ष्मिभ्राममांके समु-
पाविशः ॥ भावार्थः—तिस के नाना प्रकार पुष्पों से सुगन्धि उपवनों में विहार कर
व जल कीड़ा कर हेथीरघुवंश भुवण जू आप हमारे अंक में बैठ गये थे । इदं श्रेष्ठमभि-
ज्ञानं ब्रूयास्त्वंतु मम प्रियम् । शीलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरेपदे ॥ कि हमारी यही
सब से श्रेष्ठ निशानी है व पता आप बताना कि चित्रकूट पर्वत के ईशान कोण वाले
पाद पर कि उत्तरे पदे कहने से श्री जानकी कुण्ड की लीला सम्पूर्ण स्पष्ट जानेंगे
स्फटिक शिला श्री जानकी ही कुण्ड पर जानेंगे जो फटिक शिला इस समय प्रसिद्ध
है उसका कृतशोच तीर्थ नाम है जिन में हंस भगवान् ने स्नान किया है :—

सखीवच्चविगाहस्व सीते मन्दाकिनीं नदीम् ।

कमलान्यवमज्जंती पुष्कराणि च भामिनि ॥ १४ ॥

हे हृदय के शीतल करनेवाली हे भामिनी रक्त कमल तथा उज्ज्वल कमलों को
जल में डुबाती हुई सखी के समान इस मन्दाकिनी नदी में स्नान का यह गुण भाव
आचार्य के द्वारे जानना ॥१४॥

त्वंपौरजनवद्ब्यालानयोध्यामिव पर्वतम् ।

मन्यस्व वनिते नित्यं सरयूवदिमां नदीम् ॥ १५ ॥

हे वनिते तुम पुरवासियों के समान यहां के सर्वों को व अयोध्या के सदृश
श्री चित्रकूट पर्वत को व सरयू के तुल्य मन्दाकिनी नदी को नित्य मानों ॥ १५ ॥

लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः ।

त्वंचानुकूलो वैदेहि प्रीतिं जनयती मम ॥ १६ ॥

हे जनक दुलारी जू जैसे हमको प्रसन्न करती हुई तुम सदा हमारे अनुकूल
रहती हो वैसे ही धर्मात्मा लक्ष्मण लाल जू भी हमारी आज्ञा में निरन्तर स्थित रहते
हैं ॥ १६ ॥

उपस्पृशं स्त्रियवणं मधुसूत फलाशनः ।

नायोध्याय न राज्याय स्पृहये च त्वया सह ॥ १७ ॥

त्रिकाल स्नान मिष्ट मूल फल भोजन करते हुये तुम्हारे साथ मैं अयोध्या
और राज की इच्छा नहीं करता हूँ नित्य विहार सब का अभाव दर्शाया ॥ १७ ॥

भाव गुहा है

इमां हि रम्यां गजपुष्पलोडितां निपीततोयांगजसिंहवानरैः ।

सुपुष्पितां पुष्प फलैर लंकृतां न सोस्ति यः स्याद्भगतकृतः सुखी ॥ १८ ॥

हाथियों के झुण्ड से मथित व हाथी, सिंह, वानरों से पिया गया है जल
जिस का तथा सुपुष्पित व पुष्प, फल समूहों से अलंकृत इस रमणीय मन्दाकिनी
में स्नान करने से ऐसा कोई नहीं है जिस की धकावट दूर न हो और वह सुखी
नहीं हो वे अर्थात् जन्म मरण से नहीं छूट जाय ॥ १८ ॥

इत्येव रामो बहुसंगतंवचः प्रिया सहायः सरितं प्रति ब्रुवन् ।

चचार रम्यं नयनांजनं प्रभं स चित्रकूटं रघुवंश वर्धनः ॥ १९ ॥

इसी प्रकार बहुत से योग्य वचन मन्दाकिनी नदी के प्रति कहते हुये खी है
सहायक जिनके यह अत्यन्त गुहा वाक्य है ऐसे श्रीरघुवंश भूषण जू आंखों के अंजन
सदृश काली दीप्ति वाले रमणीय चित्रकूट में बिचरने लगे ॥ १९ ॥

इति श्रीवृहद्रामायणे उत्तराद्धर्षे श्री चित्रकूट माहात्म्ये सीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



तृतीयोऽध्यायः

तां तदा दर्शयित्वा तु मैथिली गिरिनिम्नगाम् ।

विषमाद गिरिप्रस्थे सीतां मासेन छन्दयन् ॥ १ ॥

श्री किशोरी जू को श्री चित्रकूट पर्वत व मन्दाकिनी नदी देखाय श्री रघुनन्दन जू पर्वत की एक चट्टान पे बैठ गये व तपस्वियों के भोजन के योग्य फल श्री प्रिया जू को देखाय देखाय के पूछने लगे ॥ १ ॥

इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्रमिदमग्निना ।

एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः ॥ २ ॥

कि हे प्रिये यह बड़ा पवित्र फल है व अग्नि में पका किया गया है इससे और भी स्वादिष्ट हो गया है यह परस्पर कहत सुनत धर्मात्मा श्री रघुनन्दन जू श्री किशोरी जू के साथ वहां बैठे ॥ २ ॥

प्रति याते तु भरते वसन् रामस्तदावने ।

लक्ष्यामासं सौद्वेगमथौत्सुक्यं तपस्विनाम् ॥ ३ ॥

जब श्री भरत लाल जू विदा हो श्री अयोध्या को समाज सहित चले गये तो उन वन में बसते श्री रघुनन्दन जू ने देखा कि तपस्वियों के कुछ चित्त खेदित से जान पड़ते हैं ॥ ३ ॥

ते तत्र चित्रकूटस्य पुरस्तात्तापसाश्रमे ।

राममाश्रित्य निरतास्तानलक्षयदुत्सुकान् ॥ ४ ॥

जितने उस चित्रकूट पर्वत के निकट तपस्वी थे रहते थे समूह श्री रामचन्द्र को देखकर कुछ कहने को मन करते थे ॥ ४ ॥

नयनैर्भृकुटीभिश्चरामं निर्दिश्य शंकिताः ।

अन्योन्यमुपजल्पन्तः शतैश्चक्रुर्मयः कथाः ॥ ५ ॥

शंकित होते थे कुछ कह नहीं सकते थे केवल परस्पर में नेत्र और भृकुटी के द्वारे धीरे २ बातलाते थे ॥ ५ ॥

तेषामौत्सुक्यमालक्ष्य रामस्त्वात्मनिशंकत ।

कृताञ्जलिरुवाचेदमृषिं कुलपतिं ततः ॥ ६ ॥

उन ऋषियों को श्री राजकुमार जू ने जाना कि हम से कुछ डरते हैं इस हेतु
कर जोड़कर उन ऋषियों के आचार्य श्री वाल्मीकि जू से बोले ॥ ६ ॥

नकच्चिद्भगवन्किञ्चिदपूर्वं वृत्तमिदं मयि ।

दृश्यते विकृतं येन विक्षिप्यते तपस्विनः ॥ ७ ॥

हे भगवन् हम से ऐसा मन्दा कर्म पूर्व काल का भी नहीं दृश्य पड़ता कि
जिस हेतु से ये महात्मा जन तपस्वी हम से भय पावते हैं ॥ ७ ॥

प्रमादाच्चरितं किञ्चित्कच्चिद्भावरजस्य मे ।

लहमणस्यर्षिभिर्दृष्टं नानुरूपं महात्मनः ॥ ८ ॥

फिर महात्मा हमारे छोटे भाई लपण लाल में भी कोई ऐसा दुराचार नहीं
कि जिसे देख ऋषि समूह भय पावते हैं ॥ ८ ॥

कच्चिच्छुश्रूषमाणायः शुश्रूषण परा मयि ।

परमदाभ्युचिता वृत्तिं शीता युक्तां न वर्तते ॥ ९ ॥

हमारी सेवा में परायण श्री किशोरी जू भी आप सबों की सदा सेवा ही
किया करती है व जो उत्तम स्त्रियों के स्वभाव होते हैं वही उन में है इस से वे भी
कुछ मुनिबों के अनुचित नहीं कह सकती फिर ये सब क्यों डरते हैं ॥ ९ ॥

अथर्षिर्जरया वृद्धस्तपसा च जरां गतः ।

वेपमान इवो वाचा रामं भूत दया परम् ॥ १० ॥

यह सुन बड़े वृद्ध व तपसे वृद्ध कम्पायमान होते हुये ऋषिराज श्रीवाल्मीकि
जू परम रूपालु श्री रघुनन्दन जू से बोले ॥ १० ॥

कुतः कल्याण सत्त्वायाः कल्याणाभिरतेः सदाः ।

चलनं तात वैदेह्यास्तपस्विषु विशेषतः ॥ ११ ॥

कि भला अति कल्याण रूप स्वभाव युक्त व कल्याण ही में प्रीति करने वाली
श्री जनक राजदुलारी जू कैसे तपस्वियों के सङ्ग कोई अपकार करेगी वे तो किसी के
सङ्ग भी अपकार नहीं करती ॥ ११ ॥

त्वन्निमित्तमिदं तावत्तापमान्प्रति वर्तते ।

शोभ्यस्तेन संविग्नाः कथयन्ति मिथः कथाः ॥ १२ ॥

और जो ऋषियों ने आप की ओर निहार २ परस्पर बातें की है उसमें यह
कारण है कि ये समूह राक्षसों के भय से अत्यन्त व्याकुल हैं इसी हेतु आप की ओर
देख बतलाने पर कुछ कह नहीं सकते ॥ १२ ॥

रावणावरजः कश्चित्खरो नामेह राक्षसः ।

उत्पात्य तापसान्सर्वान् जनस्थान निवासिनः ॥ १३ ॥

यहां रावण का छोटा भ्राता एक खर नाम राक्षस रहता है वह जनस्थान के निवासी सम्पूर्ण तपस्वियों को पीड़ा देता है ॥ १३ ॥

धृष्टजितकाशी च नृशंसः पुरुषादकः ।

अवलिप्तश्च पापश्च त्वा च तात न मृष्यते ॥ १४ ॥

वह दुष्ट बड़ा ही निर्दयी है काशीपुरी भी उसने जीतली है अर्थात् विश्वनाथ को वश कर लिया है बड़ा निर्लज्ज भी है पुरुषों को भी खा जाता है बड़ा अहंकारी है आप का यहां रहना भी नहीं सह सकता हम सब ऋषियों को भी आप के अनुयायी जान कष्ट देता है ॥ १४ ॥

त्वं यदा प्रभृतिह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे ।

तदा प्रभृति रक्षौमि विप्रकुर्वति तापसान् ॥ १५ ॥

हे तात जब से आप इस आश्रम में आये हो और भी राक्षस सब तपस्वियों को दुःख देते हैं ॥ १५ ॥

दर्शयन्ति हि वीभत्सैः क्रूरैर्भीषणकैरपि ।

नाना रूपैर्विरूपैश्च रूपैरमुखदर्शनैः ॥ १६ ॥

नाना प्रकार के भयानक क्रूर रूप देखाय २ मुनियों को भयभीत करते हैं जिससे वे सब बड़े २ कष्ट पाते हैं ॥ १६ ॥

अप्रशस्तैरशुचिभिः संप्रयुज्य च तापसान् ।

प्रतिघ्नन्त्यपराक्षिप्रमनार्याः पुरतः स्थितान् ॥ १७ ॥

तपस्वियों के आगे बड़े बड़े अनिष्ट व अपवित्र काम करके उनके मारते हैं बड़े अनारी हैं ॥ १७ ॥

तेषु तेष्व्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीय च ।

रमन्ते तापसांस्तत्र नाशयन्तेरूपचेतसः ॥ १८ ॥

तिन तिन आश्रमों पर आय आय छिप छिप कर दुष्ट राक्षस उन दीन अनारी ऋषियों के संग घूमते व उनको बध भी कर डालते हैं ॥ १८ ॥

अवलिपन्तिस्त्रभांडा नगनीन्संचन्ति वारिष्ठा ।

कलशांश्च प्रमर्दन्ति हवने समुपस्थिते ॥ १९ ॥

जब ऋषी गण होम करने लगते तो वे दुष्ट राक्षस खुवा यज्ञ के पात्रादि
अलग फेंक देते हैं व अग्नि में जल डाल देते कलश उठाये २ फोड़ डालते हैं ॥ १६ ॥

तैर्दुरात्मभिराविष्टानाश्रमान्प्रजिघांसवः ।

गमनायान्यदेशस्य चोदयन्त्यृषयोऽद्यमाम् ॥ २० ॥

तिन दुष्टात्मा राक्षसी से पीड़ित आश्रमों को छोड़ने को इच्छा से यहां से
दूसरे देश में गमन के लिये ऋषी गण हम से कहते हैं ॥ २० ॥

तत्पुरा राम शारीरीमुपहिंसा तपस्विषु ।

दर्शयन्ति हि दुष्टास्तेत्यक्षयामश्माश्रमम् ॥ २१ ॥

क्योंकि बहुत दिवसों से ये दुष्ट राक्षस ऋषियों को मारते पीड़ते चले आते
हैं इससे हे राजकुमार अब इस आश्रम को हम छोड़ देंगे ॥ २१ ॥

बहुमूल फलं चित्रमविष्टरादितो वनम् ।

अश्वस्याश्रममेवाहं श्रियिष्ये सगणः पुनः ॥ २२ ॥

व यहां से थोड़ी ही दूर पै अश्व नाम ऋषि का आश्रम है उसमें कन्दमूल
फलादि भी बहुत हैं व राक्षस भी मुनि के भय से वहां नहीं जाते वही परिवार
सहित चले जायेंगे ॥ २२ ॥

खरस्त्वय्यपिवायुक्तं पुरा राम प्रवर्तते ।

सहास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते ॥ २३ ॥

हे श्रीरघुनन्दन जू ये सब ऋषी गण तो जाते हैं जो विचार में आर्थ तो आप
भी गमन करो क्योंकि वह खर नाम राक्षस आप के साथ भी अयोग्य ही कर्म
करेगा ॥ २३ ॥

सकलत्रस्य सन्देहो नित्यं युक्तस्य राघवः ।

समर्थस्यापि सहितो वासो दुःख मिहाद्यते ॥ २४ ॥

पुनः आप केवल होते तो इतना सन्देह भी न था श्रीकिशोरी जू संग हैं यद्यपि
आप समर्थ व तेजस्वी और प्रतापी हैं तथापि यहां के निवास में सन्देह ही है ॥ २४ ॥

इत्युक्तवन्तं रामस्तं राजपुत्रस्तपस्विनम् ।

न शशाकोत्तरैर्वाक्यैरवबद्धं समुत्सुकम् ॥ २५ ॥

जब मुनिराज ने ऐसा कहा तो श्रीराजकुमार रघुनन्दन जू ऐसे बचन न
कह सके कि जिससे मुनियों का यहां से जाना न होता ॥ २५ ॥

अभिनन्द्य समापृच्छ्य समाधाय च राघम् ।

सजगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलैः कुलपतिः सहः ॥ २६ ॥

तब श्रीरघुनन्दन जू की प्रशंसा कर व पूछ और चित्त में उनकी मूर्ति स्थापित कर उस आश्रम को छोड़ अपने सहवासियों के संग ले मुनिराज चले गये ॥ २६ ॥

रामः संसाध्य क्षपिगण मनुगमनाद्देशात्स्मात्कुल पति मभिवाद्यक्षपिम् ।

सम्यक्प्रीतैस्तैरनुमत उपदिष्टार्चः पुण्यवासायस्वनिलय मुपसंपेदे ॥ २७ ॥

श्रीकौशल किशोर जू भी उन मुनियों के साथ न जाने के लिये आह्ला ले व श्रीवाल्मीकि जू को प्रणाम कर अपनी कुटी में चले गये ॥ २७ ॥

आश्रममृषि विरहितं प्रभुः क्षण मपि न जहौ सराघवः ।

राघवं हि सततमनु गतास्तापसाश्चार्यचरितेधृत गुणाः ॥ २८ ॥

जब से ऋषी गण उस आश्रम पर से चले गये तब से श्रीरघुनन्दन जू क्षण मात्र को भी वहाँ से बत में नहीं विचरते थे उस स्थान के निकट निवासी स्थानों के तपस्वी जन आया जाया करते थे ॥ २८ ॥

इति श्रीबृहद्रामायणे उत्तराद्धर्मे श्रीचित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ १८ ॥



चतुर्थोऽध्यायः ।

राघवस्त्वपयातेषु सर्वेष्वनु विचिंतयन् ।

नतत्रा रोचयद्वासं कारणैर्बहुभिस्तदा ॥ १ ॥

जब सब ऋषी गण उस स्थान से चले गये तो बहुत कारणों से श्रीराघव जू ने भी वहाँ का रहना न प्रसन्न किया ॥ १ ॥

तस्मादन्यत्र गच्छाम इति संचिंत्य राघवः ।

पिप्लवत्तु स वैदेह्या लक्ष्मणेन च संगतः ॥ २ ॥

तिससे अब यहाँ से भिन्न स्थान का चलना ठीक है यह विचार श्रीजनक-नन्दी जू तथा लपणलाल जू को संग ले वह अन्य को स्थान गमन किये ॥ २ ॥

सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशः ।

तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रतिपद्यते ॥ ३ ॥

जब जाय श्रीअत्रि जू के आश्रम पर पहुँचे उन मुनि को प्रणाम किया भगवान् अत्रि जू ने भी श्रीराघव जू को पुत्रही के समान माना मुनि वात्सल्य भाव में पूर्ण ये ३

स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुकृतम् ।

सौमित्रिं च महाभागं सीतां च समसांत्वयत् ॥ ४ ॥

जो कुल अर्घ्य पायाचमनीय उचित था सब श्रीरघुनन्दन जू को दिया तत्पश्चात् श्रीजनकनन्दी जू तथा श्रीलपणलाल जू के भी कुशल क्षेम पूछा उन को भी यथोचित अर्घ्यादि दिया ॥ ४ ॥

पत्नी च तमनुप्राप्तं वृद्धामामन्य सत्कृताम् ।

सांत्वयामास धर्मज्ञः सर्व भूतहिते रतः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् सब प्राणियों के हितकारी धर्मज्ञ अत्रि जू ने अपनी अति वृद्ध पत्नी अनसूया जू को बुलाया व बड़े सत्कार से बैठाया व समझाया ॥ ५ ॥

अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ।

प्रतिगृहीष्व वैदेहीमब्रवीद्वृषिसत्तमः ॥ ६ ॥

तथा ऋषियों में श्रेष्ठ भवि जू महानागा तपस्विनी धर्म चारिणी अनसूया से बोले कि भीजनकनन्दन जू का आगत स्वागत करो ॥ ६ ॥

रामाय चाचक्षेतां तापसीं धर्मचारिणीम् ।

दशवर्षाण्यनावृष्ट्या दग्धे लोके निरन्तरम् ॥ ७ ॥

श्रीरघुनन्दन जू से भवि जू बोले कि आप इन परम तपस्विनी धर्म चारिणी अनसूया जी को जानते हैं आगे एक समय दस वर्ष तक जल नहीं वर्षा था इससे पृथिवी जली जाती थी ॥ ७ ॥

यया मूल फले सृष्टे जाह्नवी च प्रवर्तिता ।

उग्रेण तपसा युक्ता नियमैश्चाप्यलंकृता ॥ ८ ॥

तब इन्होंने सब के ऊपर कृपा कर कन्द मूल फल उत्पन्न किये व अपनी उग्र तपस्या नियम संघर्षों से मुनियों के स्नान पान करने के लिये गंगा जी को अपने निकट प्रगट किया ॥ ८ ॥

दशवर्षसहस्राणि यया तप्तं महात्तपः ।

अनसूया व्रतैस्तात प्रत्यूहाश्चनिवर्हिता ॥ ९ ॥

तपस्या भी इन्होंने दस हजार वर्ष तक बड़ी उग्रता से की है व है तात इन अनसूया के व्रत नियमों से सम्पूर्ण विघ्न दूर हो गये ॥ ९ ॥

देवकार्यं निमित्तं च यया सत्वरमाणया ।

दशरात्रंकृता रात्रिः सेयं मातेव तेनधः ॥ १० ॥

व एक समय इनकी एक सखी को मांडव्य ऋषि ने शाप दिया कि दस रात्रियों के बीच में किसी न किसी प्रातः काल में तू विधवा हो जायगी तब अपनी सखी को विधवा न होने के लिये इन्होंने कहा जाव प्रातः काल ही अब न हो हमारी सखी काहे को विधवा होगी इस प्रकार दस दिवस पर्यन्त एक सा रात्रि ही बनी रही व्याकुल हो देवताओं ने इनकी बड़ी स्तुति की तो फिर दिन होने पाया सो इनकी सखी स्वनामनी बनी रही क्योंकि मुनि का शाप दस ही रात्रियों के मध्य के किसी प्रातःकाल में उसके पति के मृत्यु का था इससे हे श्रीरघुनन्दन जू यह आप की माता के समान है ॥ १० ॥

तामिमां सर्वं भूतानां नमस्कार्या तपस्विनीम् ।

अभिगच्छतु वैदेही वृद्धधामक्रोधनां सदा ॥ ११ ॥

तिन से सब प्राणियों के नमस्कार करने के योग्य परम तपस्विनी व बूढ़ी या सदा कोप रहित इनको श्रीकेशोरो जू भी प्रणाम करें ॥ ११ ॥

एवं ब्रुवाणमृषिं तथेत्युक्त्वा स राघवः ।

सीतामालोक्य धर्मज्ञामिदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

मुनिराज के ऐसे वचन श्रवण कर श्रीकौशल कुमार जू बहुत अच्छा कह व धर्माधर्मतत्व जानने वाली श्रीमिथलेश कुमारी जू से बोले ॥ १२ ॥

राजपुत्रि श्रुतं त्वेतन्मुनेरस्यसमीरितम् ।

श्रेयार्थमात्मनः शीघ्रमभिगच्छ तपस्विनीम् ॥ १३ ॥

हे राजकुमारी इन मुनि के वचन तो श्रवण किया अब अपने कल्याण के हेतु अति शीघ्र इन तपस्विनी अनसूया जू की सेवा करो ॥ १३ ॥

अनसूयेतियालोके कर्मभिः ख्यातिमागता ।

तां शीघ्रमभिगच्छ त्वमभिगम्यां तपस्विनीम् ॥ १४ ॥

जिन्होंने अपने तप रूपी उग्र कर्म से अनसूया यह नाम पाया है तिन इन तपस्विनी की अवश्य सेवा करो व धर्म कर्म की बातें भी प्रश्न करो ॥ १४ ॥

सीतात्वेतद्वचः श्रुत्वा राघवस्य यशस्विनी ।

तामित्रपत्नीं धर्मज्ञामभिचक्राम मैथिली ॥ १५ ॥

परम यशस्विनी श्रीजनक तनया जू ने श्री प्राण प्यारे कौशल कुमार जू के वचन श्रवण कर धर्म स्वरूपी अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूयाजी की प्रदक्षिणा की ॥ १५ ॥

शिथिलां वसितां वृद्धां जरा पांडुर सूर्धजाम् ।

सततं वेपमानाङ्गीं प्रवाते कदलीमिव ॥ १६ ॥

श्रीअनसूया जू अत्यन्त वृद्ध हो गई थीं सय अंगों की त्वचा सिकुड़ गई थी वृद्धा थीं [केले के पेड़] मारे वृद्धता के केश बनाय पीले से हो गये थे पवन चलने में कदली के समान कम्प रही थीं ॥ १६ ॥

तांतु सीतां महाभागामनसूयां पतिव्रताम् ।

अभ्यवादयद्व्यग्रा स्वंनाममुदाहरत् ॥ १७ ॥

ऐसी महा भाग्यवती व पतिव्रता अनसूया जू के निकट जाय अपना नाम कह सरल स्वभाव वाली श्रीकेशोरो जू ने प्रणाम किया ॥ १७ ॥

अभिवाद्या च वैदेही तापसीं तां दयान्विताम् ।

बृद्धाञ्जलिपुटाहृष्टा पर्यपृच्छदनामेयम् ॥ १८ ॥

व तिन अत्यन्त दयावती तपस्विनी से कर संपुट कर श्रीजनक तनया जू प्रसन्नता पूर्वक कुशल प्रश्न करने लगीं ॥ १८ ॥

ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्म चारिणीम् ।

सत्त्वयं ब्रवीद् बृद्धा दिष्ट्वा धर्ममवेक्षसे ॥ १९ ॥

तिन धर्म चारिणी महाभाग्यवती श्रीकिशोरी जू को देख बहुत बोध करती हुई महा वृद्धा अनसूया जी भी बोलीं कि हे मिथिलेशकिशोरी जू बड़े सौभाग्य को बात है कि आप पतिव्रत रूप धर्म करती हो ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा ज्ञाति जनं सीते मान वृद्धिं च मानिनि ।

अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्वा त्वमनुगच्छसि ॥ २० ॥

क्योंकि सब बान्धव वर्गों के अर्थात् माता पिता भाई बन्धु सास ससुर मान बड़ाई व ऋद्धि सिद्धियों को त्याग कर वनवास श्रीराजीव नयन कौशल किशोर जू के पीछे २ फिरती हो क्यों न फिरो ॥ २० ॥

नगरस्थो वनस्थो वाशुभो वा यदि वाशुभः ।

यासां स्त्रीणां प्रियोभर्ता तासां लोक महोदयाः ॥ २१ ॥

जिन स्त्रियों को अपना पति चाहे नगर में बसता हो चाहे वन में चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो उसका गुण दोष न विचार करे अधिक प्रिय होता है उनका महान् उदय है अर्थात् सम्पूर्ण सुख विद्यमान है ॥ २१ ॥

दुःशीलः काम वृत्तावा धनैर्वा परिवर्जितः ।

स्त्रीणामार्यस्वभवानां परमं दैवतंपतिः ॥ २२ ॥

श्रेष्ठ स्वभावली स्त्रियों को पति हो परम देवता है चाहे दुशील भी हो कामी भी हो दारिद्र्य भी हो ॥ २२ ॥

नतो विशिष्टं पश्यामि बांधवं विमृशत्यहम् ।

सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृत मिवाव्ययम् ॥ २३ ॥

हे राजदुलारी जू हम ने जो विचार किया तो पति से अधिक कोई भी प्रिय स्त्रियों को नहीं है क्योंकि भाई बन्धु सर्वत्र सुख नहीं दे सकते यह शक्ति पति ही को

है कि यहाँ वहाँ सब ही सुख दे जैसे कि तपस्या लोक परलोक सब कहीं सुख देती है ॥ २३ ॥

नत्वेवमनुगच्छन्ति गुण दोषमवच्छिद्यः ।

कामवक्तव्यं हृदया भर्तृनाथाश्च रन्ति याः ॥ २४ ॥

जो स्त्रियाँ केवल काम ही के बशीभूत हैं इससे पति की मालिक अपने ही को बनाया है उन दुष्ट स्त्रियों का गुण दोष नहीं जान पड़ते हैं कि हमारा क्या कर्तव्य है ॥ २४ ॥

प्राप्नुवन्त्य यशश्चैव धर्मं भ्रंशं च मैथिलि ।

अकार्यवशमापन्नाः स्त्रियोयाः खलु तद्विधाः ॥ २५ ॥

जो स्त्रियाँ केवल काम ही के बशीभूत हैं इससे पति को अपना ही दास जानती हैं अपने को पति के अधीन नहीं समझती उनका यहाँ तो अयश होता व धर्म तो जानो जाता ही रहता इसके कारण नरक को जातो हैं ॥ २५ ॥

त्वद्विधास्तु गुणैर्युक्तादृष्ट लोक परावराः ।

स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथा पुण्यकृतस्तथा ॥ २६ ॥

व जो तुम्हारे समान पतिव्रत गुणों से परिपूर्ण हैं लोक परलोक को गति जानने वाली हैं व स्वर्ग में जा बसती हैं जैसे पुण्यवान् प्राणी स्वर्ग में निवास करते हैं ॥ २६ ॥

तदेव मेतं त्वमनुव्रता सती प्रधाना समयानुवर्तिनी ।

भवस्व भर्तुः सह धर्मचारिणी यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि ॥ २७ ॥

और आप तो पति सेवा में परायण पति ही को प्रधान मानती हो समया-नुकूल चलती भी हो अब अपने स्वामी श्रीरघुनन्दन जू के साथ धर्माचरण करो जिससे यश व धर्म को प्राप्त होवो ॥ २७ ॥

इति श्रीमृहद्रामायणे उत्तरार्द्धे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य बुगलविनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्त्व प्रकाशिका भाषा टीका

नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ १८ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

सात्येवमुक्त्वा वैदेहीं त्वनसूयानसूयया ।

प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

जब असूया रहित श्रीजनक दुलारी जू से अनसूया जी ने ऐसा कही तो उनके वचन की बड़ाई कर श्रीजनक लाड़ली जू धीरे से बोलों ॥ १ ॥

नैतदाश्चर्यमार्याणां यन्मांस्त्वमनुभाषसे ।

विदितन्तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः ॥ २ ॥

कि जो विषय आप ने हम से कहा वह परम श्रेष्ठ तुम्हें कुछ आश्चर्य नहीं हम भी जानती हैं कि स्त्री का पति ही गुरु है ॥ २ ॥

यद्यप्येष भवेद्भर्ता अनार्यो वृत्ति वर्जितः ।

तद्वैधमत्र वर्तय्यं तथाप्येष मया भवेत् ॥ ३ ॥

इससे चाहे मूर्ख जीविका हीन भी पति हो पर स्त्री की उन्हीं को सेवा में दुविधा न माननी चाहिये क्योंकि स्त्रियों का परम धर्म यही है कि पति की सेवा करे ॥ ३ ॥

किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशी जितेन्द्रियः ।

स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः ॥ ४ ॥

किर तिम के पति उत्तम सर्वगुण संपन्न हैं सर्वांग सुन्दर कृपालु जितेन्द्र दृढा-
नुरागी धर्मात्मा माता पिता के समान लालन पोषन करने वाला हो तो उसे क्या कहना है उसे तो सेवा करना ही है ॥ ४ ॥

यां वृत्तिं वर्तते रामः कौसल्यायां महाबलः ।

तामेव नृपनारीणामन्यासमपि वर्तते ॥ ५ ॥

देखिये हमारे स्वामी श्रीकौशल किशोर जू को जो भाव अपनी माता श्रीकौशल्या जू में रखते वही भाव श्रीराज महाराज की और पत्नियों में भी रखते हैं ॥ ५ ॥

सकृदृष्ट्वास्वपिस्त्रीषु नृपेण नृपवत्सलः ।

मातृवद्वर्तते वीरो मानमुत्सृज्य धर्मवित् ॥ ६ ॥

जिन स्त्रियों को भोग करने के दृष्टि से श्रीमहाराज चक्रवर्ति जू ने एक बार भी देख लिया है तो मान को छोड़ परम धर्मज्ञ व राजा में अति स्नेह करने वाले हमारे स्वामी उन स्त्रियों में माता ही का सा वर्त्ताव वर्त्तते हैं ॥ ६ ॥

आगच्छन्तपाशव विजनं वनमेवं भयावहम् ।

सामाहितं हिमेश्वशत्रा हृदये यत्स्विरं मम ॥ ७ ॥

जब हम इस निज्जन भयावन वन को आने लगी थी तब हमारी सासु जू ने जो पति धर्म का हमको उपदेश दिया था वे समूह हृदय में स्थित हैं ॥ ७ ॥

पाणि प्रदान काले च यत्पुरा त्वग्नि सन्निधौ ।

अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥ ८ ॥

व व्याह के समय में अग्नि के समीप बैठा व श्रीमाता जू ने भी जो धर्म पतिव्रत अर्थात् पति सेवा के धर्म हमें सिखाये थे वे सब हमारे हृदय में टिके हैं ॥ ८ ॥

सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गं महीयते ।

तथा वृत्तिश्च याता त्वंपति सुश्रूषया दिवम् ॥ ९-१० ॥

क्योंकि देविये सत्यवान् की पत्नी सावित्री पति की सेवा कर स्वर्ग लोक में पूजी जाती है व सावित्री ही की तरह आप भी पति की सेवा कर सम्पूर्ण सिद्धियों का प्राप्त हुई हो ॥ ९-१० ॥

वरिष्ठा सर्व नारीणां मेषा च दिवि देवता ।

रोहिणी न विना चंद्र मुहूर्त्तमपि दृश्यते ॥ ११ ॥

व पति ही की सेवा करती हुई यह चन्द्रमा की स्त्री रोहिणी सब पतिव्रता स्त्रियों में श्रेष्ठ हो स्वर्ग में देवता रूप विराजमान है क्षण भर भी बिना अपने पति चन्द्रमा के आकाश में नहीं देख पड़ती ॥ ११ ॥

एवं विधाश्च प्रवरा स्त्रियो भर्तृ दृढ व्रता ।

देवलोके महीयन्ते पुरायेनस्वेन कर्मणा ॥ १२ ॥

इसी प्रकार की बहुत सी पतिव्रता स्त्रियां अपने अपने पतियों में दृढ़ भक्ति कर अपनी ही पुण्य व कर्म से देव लोक में पूजित होती हैं ॥ १२ ॥

ततोऽनसूया संदृष्ट्वा श्रुत्वोक्तं सीतया वचः ।

शिरस्याग्राय चोवाच मैथलीं हर्षयंत्युत ॥ १३ ॥

श्रीजनक दुलारी जू के ऐसे बचन सुन अति प्रसन्न हो अनसूया जू ने उनके सिर को सूँघ श्रीराम प्यारी जू को हर्षित कराती बोलीं ॥ १३ ॥

नियमैर्भिविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे ।

तत्संश्रित्यबलंसीते छन्दयेत्वां शुचि व्रते ॥ १४ ॥

हे श्रीराज कुमारी जू हमने बहुत प्रकार यम नियमादि कर तप पाया है यह सम्पूर्ण तपोबल हममें विद्यमान है उसी के बल से आप से कहती है कि जो चाहो वर माँगो ॥ १४ ॥

उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिली ।

प्रीता चास्म्युच्यतां सीते करवाणि प्रियं च किम् ॥ १५ ॥

हे श्रीमैथिली जू आप के बचन बहुत योग्य हैं हमने अच्छी प्रकार से श्रवण किया आप के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ कहो आप का कौन सा प्रिय कार्य करें ॥ १५ ॥

तस्यास्त दूचनं श्रुत्वा विस्मिता मंद विस्मया ।

कृतमित्य ब्रवीत्प्रीता तपोबल समन्विताम् ॥ १६ ॥

श्रीअनसूया जी के ऐसे बचन श्रवण कर तिन के ऐश्वर्य के विषय में विस्मय रहित हो किञ्चित् विहसि श्रीजनक दुलारी जू बोलीं कि आपकी कृपा ही से सब पदार्थ पूर्ण हैं किसी पदार्थ की इच्छा नहीं ॥ १६ ॥

सात्वेवमुक्त धर्मज्ञा तथा प्रीततराऽभवत् ।

सफलं च प्रहर्षते हंत सीते करोम्यहम् ॥ १७ ॥

जब इस प्रकार से श्रीजनक किशोरी जू ने कहा तो धर्म तत्व ज्ञाता अनसूया जी प्रसन्न हो बोलीं हैं हे श्रीराम प्रिया जू तुम्हारी इस अलोभता की हम प्रशंसा करती हैं ॥ १७ ॥

इदं दिव्य वरं माख्यं वस्त्रमाभरणानि च ।

अंगं रागं च वैदेही महार्हमनुलेपनम् ॥ १८ ॥

हे विदेह तनया जू यद्यपि आपको किसी पदार्थ की कांक्षा नहीं तथापि यह दिव्य च श्रेष्ठ माला वस्त्र भूषण केसर तथा कस्तूरी, गोरौवन, चन्दन कपूर द्रव्य मिश्रित चन्दन अर्थात् अङ्गराग ॥ १८ ॥

मया दत्तं मिदं सीतेतव गात्राणि शोभयेत् ।

॥ अनुरूपमसाङ्गिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥ १९ ॥

हमारा दिया हुआ सब आप ही के अङ्गों के योग्य है अर्थात् श्रीसम्प्रदाय के अनुकूल ही है इसमें कुछ सन्देह नहीं अर्थात् धर्म विधि युक्त है इससे नित्य आप ही के अङ्गों में लगा रहेगा, अर्थात् जो आपके भक्त होंगे सो पति श्वेत ऊर्ध्व सदा धारण करते रहेंगे ॥ १६ ॥

अंग रागेण दिव्येन लिप्तांगी जनकात्मजे ।

शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्री विष्णु मठ्यम् ॥ २० ॥

हे श्रीजनक कुमारी जू यह अङ्गराग है इस को जब अङ्गों में धारण करेगी तो पति को शोभित करेगी अर्थात् निज पति को जो सर्वाधिकारी जो भक्ति श्रीसंप्रदाय मुख्य धर्म ऊर्ध्व पुण्ड्र जो रायनादि राक्षसों से क्षीण होगया है सो प्रज्वलित करेगी किन्तु अपने निज पति को भी पूजित करेगी यथा महा शिव संहितायां । राजमार्गं मिमं विद्धि रामोक्तं जानकी कृतम् ॥ मध्ये चान्य मार्गोऽस्तु चौराणां विधिकः यथा । पुनः महा शंभु संहितायाम् ॥ श्रीजानकी सम्प्रदायां राम रासमनन्यताम् । श्रुते के पिन यास्यन्ति वाञ्छितं फल मेव च ॥ कृपा च साधनं सिद्धिर्भक्तिः श्रीमैथिलीपते । अन्यन्तु केवल श्रमं साधितं मत वादिभिः ॥ सीताराम सभारम्भां शुकाचार्यादि मध्यगाम् । अस्मदाचार्य पर्यन्तां वंदे गुरु परम्पराम् ॥ यह स्पष्ट है, पुनः पति को शोभा करने के भाव की यही अङ्गराग से पूजित होंगे । यथा अगस्त्य संहितोक्त श्रीरघुनन्दन पूजा विधिः ॥ कुंकुमागरु कस्तूरी कर्पूरीन्मिश्र चन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥ इति यह कुंकुम शब्द केसर वाचक है जिनको संदेह हो तो कोष देख लेवेंगे केसर का विशेषार्थ कुंकुम है एकादश नाम करके प्रसिद्ध है ऊर्ध्व पुण्ड्र मीमांसा में विस्तार से देख लेवेंगे । जैसे लक्ष्मी जू विष्णु को शोभित कराती है ॥ अथोत् जिस प्रकार गो लोक के विषय गोपियों करके प्रति दिन भगवान् के अङ्गों में अङ्गराग लगते हैं गोपियों करके अङ्ग प्रक्षालित जल के संग अङ्गराग चक्र-तीर्थ के विषय पीतवर्ण गोपो चन्दन नाम कर प्रसिद्ध भक्ति मुक्ति के देने वाले यथा वासुदेवी उपनिषद् । विष्णु चन्दनं ममाङ्गं प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनाद्गोपी चन्दनमाख्यातं मदङ्गं लेपनं पुण्यं चक्रतीर्थन्तिष्ठिं चक्र समायुक्त पीतवर्णं मुक्ति साधनं भवति ॥ इत्येतन्निश्चितं ज्ञानं मद्भक्त्या सिध्यति स्वयम् । नित्यं मेकाग्र भक्तिः । स्याद्गोपी चन्दनं धारणात् श्रीमन्नारायणे मय्यचञ्चला भक्तिश्च भवति ॥ इसी प्रकार श्रीचित्रकूट के विषय श्रीरामरज प्रसिद्ध होंगे ॥ यथा शिव संहितायाम् । श्रीचित्रकूट संजातं श्रीरामरज उत्तमम् ॥ पीतवर्णं सुर्णमं यैर्नर धार्यते सदा । तेनाश सुरुतात्मेन भवन्ति भगवान्प्रिया ॥ क्षणे क्षणेश्व मेधादि पुण्यं न दुर्लभं भवेत् ॥ यह स्पष्ट है कि श्रीसम्प्रदायानुयायी को लोग पीतधारण करें यह संप्रदाय धर्म व भक्ति लक्षण है ॥ २० ॥

सावस्त्र मंगरागं च भूषणानिस्त्रजस्तथा ।

मैथिली प्रति जग्राह प्रीति दानमनुत्तमम् ॥ २१ ॥

यह सुन प्रसन्नता से दी हुई वस्त्र भूषण माला अङ्गरागाद्यनुदेपन श्रीकिशोरी
जू ग्रहण किये ॥ २१ ॥

प्रतिगृह्य च तत्सीता प्रीति दानं यशस्विनी ।

शिलष्टांजलिपुटाधीरा समुपास्त तपोधनाम् ॥ २२ ॥

तिन प्रीति के सहित दी हुई सब पदार्थ ग्रहण कर परम यशस्विनी श्रीजनक
दुलारी जू हाथ जोड़ तपस्या ही को धन जान कर श्रीजनसूया जू की उपासना
करने लगी ॥ २२ ॥

तथा सीतामुपासीना मनसूया दृढ व्रता ।

वचनं प्रष्टुमारेभे कथां कांचिदनुप्रियाम् ॥ २३ ॥

जब श्रीजनक तनया जू अपूर्व रीति से सेवा करने लगी तो दृढव्रत धारण
करने वाली अनुसूया जी कुछ प्रिय कथा उन से पूछने लगीं ॥ २३ ॥

स्वयं वरे किल प्राप्ता त्वमनेन यशस्विना ।

राघवेणेति मे सीते कथा श्रुतिमुपागता ॥ २४ ॥

हे श्रीजनक जू हमने श्रवन किया है कि इन परम यशस्वी श्रीरघुनन्दन जू ने
आप को स्वयम्बर में पाया है ॥ २४ ॥

तां कथां श्रोतुं भिच्छामि विस्तरेण च मैथिलि ।

यथा भूतं च कात्स्नर्येन तन्मेत्थं चक्षुमर्हसि ॥ २५ ॥

हे श्रीमैथिली जू इस कथा को मेरे पति विस्तार सहित सुनना चाहते हैं
जिस प्रकार से स्वयम्बर हुआ हो सब आप अपने मुख से कहें ॥ २५ ॥

एवं मुक्ता तु सा सीता तापसी धर्म चारिणीम् ।

श्रूयतामिति चोत्क्रा वै कथयामास तां कथाम् ॥ २६ ॥

यह वचन श्रवन कर तिन तपस्विनी व धर्म चारिणी श्रीजनसूया जू से
श्रीजनक दुलारी जू यह कथा कहने लगी कि सुनो ॥ २६ ॥

मिथिलाधिपतिर्वीरो जनकी नाम धर्मवित् ।

क्षत्रकर्मण्यभिरतो न्यायतः शास्ति मेदिनीम् ॥ २७ ॥

श्रीजनक पुरी के एक बड़े धार्मिक व राजा श्रीजनक जू हैं जो कि क्षत्रियों के धर्ममें बड़े निपुण हैं न्याय शास्त्र के अनुसार ही पृथ्वी का पालन करते हैं ॥२७॥

तस्य लांगल हस्तस्य कृषतः क्षेत्र मण्डलम् ।

अहं किलोत्थिताभिर्वा जगतीं नृपते सुता ॥ २८ ॥

वे एक समय सुवर्ण के हल से यज्ञ हेतु पृथिवी जोतने लगे तो भूमि फोड़ कर उस लांगल के भागे से हम निकल आईं व राजा की कन्या हो गईं ॥ २८॥

स मां दृष्ट्वा नरपतिर्मुष्टि विक्षेप तत्परः ।

पांसुगुंठित सर्वाङ्गीं विस्मितो जनको भवत् ॥ २९ ॥

श्रीराजा जनक जू बीज बोते थे हम को धूली लगी देख बड़े विस्मित हुये ॥२९॥

अनपत्येन च स्नेहादङ्कमारोप्य च स्वयम् ।

समेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयिनिपातितः ॥ ३० ॥

श्रीमान् राजा के कन्या पुत्र कोई भी सन्तान न थी इस हेतु मारे स्नेह से हम को वे गोद में बैठाये बोले यह हमारी कन्या है इतना बचन कह हममें बड़ा ही स्नेह किया ॥ ३० ॥

अंतरिक्षे चवागुक्ता प्रतिमा मानुषी किल ।

एवमेतन्नरपते धर्मेण तनया तव ॥ ३१ ॥

उसी के बीच में आकाश वाणी हुई कि राजन् हां यह विषय ऐसा ही है धर्म से यह तुम्हारी ही कन्या है ॥ ३१ ॥

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा पिता मे मिथिलाधिपः ।

अपाप्नो विपुलामृद्धिं मामपाप्य नराधिपः ॥ ३२ ॥

यह श्रवण कर धर्मात्मा हमारे पिता श्रीजनकराज जू हम को पाय बड़ी अर्द्धि सिद्धि जान बड़े हर्षित हुये ॥ ३२ ॥

दत्ताचास्मीष्ट वद्वेयै ज्येष्ठायै पुण्यकर्मणे ।

तयासंभाविता चास्मिन्निग्धयोमातृ सौहृदात् ॥ ३३ ॥

वे हमको निज गृह को प्राप्ति कर पुण्य कर्म करने वाली रानियों में श्रेष्ठ जो हमारी माता उन्हें दिया उन्होंने माता ही के स्नेह से पालन पोषण करती आईं ॥ ३३ ॥

पति संयोग सुलभंवयो दृष्ट्वा तु मेपिता ।

चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादि बाधनः ॥ ३४ ॥

धीरे २ जब हमारी अवस्था व्याह के योग्य हुई तो पिता जू देव अत्यन्त चिन्ता को प्राप्त हुये जैसे द्रव्य नाश होने पर धनहीन प्राणी चिन्ता करता है ॥ ३४ ॥

सदृशाच्छाप कृष्टाच्च लोके कन्या पिता जनात् ।

प्रधर्षणमवाप्नोति शंक्रेणापि समो भुवि ॥ ३५ ॥

चिन्ता का हेतु यह है कि कन्या के पिता चाहे इन्द्र के भी तुल्य हो और अपने तुल्य ही कुलीन सर्व गुण सम्पन्न लड़के के साथ कन्या का विवाह करे तो भी घर के पिता व माता आदि की ओर से उनका अनादर ही होता है अर्थात् उन समों से लघु ही बनना पड़ता है ॥ ३५ ॥

तां धर्षणामदूरस्थां सदृश्यात्मनि पार्थिव ।

चिंतार्णव गतः पारं नासमादाप्लवोयथा ॥ ३६ ॥

श्रीमहाराज ने विचार किया कि अत्यन्त शीघ्र घर के पिता मामा आदिकों से निरादर हमें हुआ ही चाहता है इस हेतु चिन्तारूप समुद्र का निवारण नहीं कर सके जैसे कि बिना जहाज के प्राणी समुद्र पार नहीं जाता ॥ ३६ ॥

अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छन्संचिंतयन् ।

सदृशं चानुरूपं च महीपालः पतिर्मम ॥ ३७ ॥

इसी चिन्ता में दिन रात मग्न रहते थे कि हमें तो अयोनि से उत्पन्न व स्वरूप होती जानते थे पुनः अयोनि व जाति गुण रूपादि सम्पन्न हमारे तुल्य पति चिन्तन किया करते थे पर पिता जू के विचार में कोई तुल्य भाव निश्चय न मिले ॥ ३७ ॥

महायज्ञे तदा तस्य वरुणेन महात्मना ।

दत्तं धनुर्वरं प्रीत्या तूष्णीं चाक्षय्यसायकौ ॥ ३८ ॥

उस यज्ञ के हेतु यह निश्चय किया निमि श्रेष्ठ ज्येष्ठ पुत्र देवराज जू के महा यज्ञ में देवताओं के कहने से शिव जू ने प्रसन्न हो जो धनुष व दो अक्षय बाण भरे तर्कश दिये थे ॥ ३८ ॥

तस्य बुद्धि रियं जाता चिंतयानस्य संततम् ।

स्वयं वरं तनू जायाः करिष्यामीति धर्ममतः ॥ ३९ ॥

यही विचार विचार पिता जू के मन में यह निश्चय भई कि हम अपनी कन्या का धर्म से स्वयम्बर करेंगे उस स्वयम्बर में जो पुरुष इसके योग्य होंगे उसे देंगे ॥ ३९ ॥

असंचाल्यं मनुष्यैश्च यत्नेनापि च गौरवात् ।

तन्न शक्ता नमयितुं स्वाप्रेक्ष्यपि नराधिपाः ॥ ४० ॥

उन में जो धनुष था उसको मनुष्य देवता दैत्यादि किसी प्रकार से स्वप्न में भी नहीं चला सकते थे और न राजागण उसे नवाही सकते थे इस प्रकार का यह भारी था ॥ ४० ॥

तद्धनुः प्राप्य मे पित्रा ष्वाहतं सत्यवादिना ।

समवाये नरेद्राणां पूर्वसामंज्य पार्थिवान् ॥ ४१ ॥

उस धनुष को पाय सत्यवादी हमारे पिता जू ने सम्पूर्ण पृथिवी पतियों का निमन्त्रण कर बुलाय उनकी समाज में खड़े होकर बोले ॥ ४१ ॥

इदं च धनुरुद्यम्य सज्यं यः कुरुतेनरः ।

तस्य मे दुहितः भार्या भविष्यति न संशयः ॥ ४२ ॥

कि जो पुरुष इस धनुष को उठाय प्रत्यक्षा चढ़ा देगा हमारी कन्या उन्हीं की स्त्री होगी अर्थात् मैं उन्हीं से अपनी कन्या का विवाह करूँगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥

तच्च दृष्ट्वा धनुः श्रेष्ठं गौरवाद्भिगरि सन्निभम् ।

अभिवाद्य नृपा जग्मुरशक्तास्तस्यतोलने ॥ ४३ ॥

राजाओं ने पहाड़ के समान उस श्रेष्ठ धनुष को देख गरोई को उठाय ही न सके फिर चढ़ाय कैसे सकते इस हेतु उस धनुष को प्रणाम करके अपने अपने स्वदेश को चले गये ॥ ४३ ॥

सुदीर्घस्यतु कालस्य राघवायं महाद्युतिः ।

विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रष्टुं समागतः ॥ ४४ ॥

पुनः कुछ काल बीतते हुये महा तेजस्वी श्रीचक्रवर्ती कुमार जू यह देखने के लिये श्रीविश्वामित्र महा मुनि के संग वहाँ आये ॥ ४४ ॥

लक्ष्मणेन सहभ्रात्रा रामः सत्यपराक्रमः ।

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा मम पित्रा सुपूजितः ॥ ४५ ॥

इन सत्यपराक्रमी श्रीकौशल कुमार जू के साथ भ्राता श्रीलक्ष्मण लाल जू भी थे हमारे श्री पिता जू ने इन दोनों भ्राताओं को व धर्मात्मा श्रीमहामुनि विश्वामित्र जी की अत्यन्त उत्तम प्रकार से पूजा की ॥ ४५ ॥

प्रोवाच पितरं तत्र राघवौ राम लक्ष्मणौ ।

सुतौ दशरथस्येमौ धनुर्दर्शनकांक्षिणौ ॥ ४६ ॥

तब महामुनि विश्वामित्र जू हमारे पिता जू से बोले कि श्रीचक्रवर्ती महाराज दशरथ जू के पुत्र ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राता आपका धनुष देखाना चाहते हैं ॥ ४६ ॥

इत्युक्तस्तेन विप्रेण तद्धनुः समुपानयत् ।

तद्धनुर्दर्शयामास राजपुत्राय दैविकम् ॥ ४७ ॥

इस हेतु राजकुमार श्रीरघुनन्दन जू को धनुष दिखा देवे जब श्रीविश्वामित्र जी ने इस प्रकार से कहा तब श्रीपिता जू ने जाय महारामा जू को धनुष दिखा दिया ॥ ४७ ॥

निमेषांतरमात्रेण तदानय महाबलः ।

ज्यां समारोप्य भटिति पूरयामास वीर्यवान् ॥ ४८ ॥

इन महा पराक्रमी श्रीदशरथ राजकुमार जू ने देखते ही देखते एक निमेष मात्र ही में धनुष पे रोदा चढ़ाय उसे शीघ्र टङ्कोर दिया ॥ ४८ ॥

तेनापूरयता वेगान्मध्ये भग्नं द्विधा धनुः ।

तस्य शब्दो भवद्भीमः पतितस्याशनेर्यथा ॥ ४९ ॥

उनका ऐसा घोर शब्द हुआ कि पृथिवी आकाशादि सम्पूर्ण में छाय गया व उसी के साथ ही टूट कर उसके दो टुकड़े भी हो गये उसके भग्न होने का ऐसा शब्द हुआ जैसे बज्रपात पे होता है ॥ ४९ ॥

ततोहं तत्र रामाय पित्रा सत्याभिसंधिना ।

उद्यता दातुमुद्यम्य जलभाजनमुत्तमम् ॥ ५० ॥

तब सत्य प्रतिज्ञा हमारे श्रीपिता जू ने जल पात्र मँगाय संकल्प कर श्रीरघुनन्दन जू को हमें प्रदान किया ॥ ५० ॥

दीयमानान्तु तदा प्रति जग्राह राघवः ।

अविज्ञा यतितुच्छंद मयोध्याधिपतेः प्रभोः ॥ ५१ ॥

तब श्रीरघुवंश धर्य भूषण जू ने न पाणीग्रहण किया और कहा कि जब हमारे श्रीपिता अयोध्यापति श्रीचक्रवर्ती जू महाराज की आज्ञा होगी तब ही हम पाणी ग्रहण करेंगे ॥ ५१ ॥

ततः स्वशुरमामंत्र्य वृद्धं दशरथं नृपम् ।

मम पित्रा त्वहं दत्ता रामाय विदितात्मने ॥ ५२ ॥

तब हमारे पिता जू ने हमारे ससुर श्रीमान् श्रीचक्रवर्ती जू को निमन्त्रण कर
महात्मा श्रीकौशल्यानन्दन जू को हमें अर्पण किया ॥ ५२ ॥

ममचैवानुजा साध्वी उर्मिलाशुभदर्शना ।

भार्यार्थे लक्ष्मणस्यापि दत्ता पित्रा मम स्वयम् ॥ ५३ ॥

और हमारी एक लघुभगनी उर्मिला नाम है उसे श्रीलपणलाल जू को भार्या
बनाने के लिये हमारे श्रीपति जू ने दिया ॥ ५३ ॥

एवं दत्तास्मि रामाय तथा तस्मिन्स्वयंवरे ।

अनुरक्तास्मि धर्मेण पतिं वीर्यवतां वरम् ॥ ५४ ॥

इस प्रकार से स्वयम्बर में हमारे श्रीपिता जू ने हमें राजोवनयन भक्त वत्सल
श्रीभार्य्य नन्दन जू को अर्पण किया अब मैं अपने सम्पूर्ण गुण से श्रेष्ठ श्रीकौशल
किशोर जू तथा उनके भ्राता की सेवा में लगी हूँ ॥ ५४ ॥

इति श्रीबृहद्रामायणे उत्तराहर्धे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगलविनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्व प्रकाशिका भाषा टीका

नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ २० ॥



षष्ठमोऽध्यायः ।

अनसूयातु धर्मज्ञा श्रुत्वा तां महतीं कथाम् ।

पर्येष्वजत बाहुभ्यां शिरस्याग्रायामैषिलीम् ॥ १ ॥

धर्मात्मनी श्रीअनसूया जू ने यह अति उत्कृष्ट कथा श्रवन कर श्रोत्रनक
हुलारी जू को दोनों हाथों से पकड़ हृदय में लगा लिया व सिर सूँघ लिया ॥ १ ॥

व्यक्ताक्षर पदं चित्रं भाषितं मधुरं त्वया ।

यथा स्वयंवरं वृत्तं तत्सर्वं च श्रुतं मया ॥ २ ॥

और कहा कि जो हमने स्वयंवर का वृत्तान्त आप से पूँछा आपने अति मधुर
भाषी से यथार्थ २ रीति से कहा जिसे कि हमने अच्छी प्रकार से श्रवन किया ॥ २ ॥

रमयं कथयाते तु दृढं मधुर भाषिणि ।

रविरस्तं गतः श्रीमानुपोद्धारजनीं शुभाम् ॥ ३ ॥

हे मधुर भाषिणी आपकी इस कथा में हमारा चित्त अत्यन्त रमित होता है
परन्तु अब श्री सूर्य भगवान् अस्ताचल को गये अत्यन्त निशा हुआ चाहती है ॥ ३ ॥

दिवसं परिकीर्णानामाहारार्थं पतत्रिणाम् ।

संध्या काले निलोनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः ॥ ४ ॥

क्योंकि दिन होने पर जो पक्षीगण चरते चुगने के लिये यत्र तत्र गये थे वे
अब सन्ध्या काल में अपने २ घोसला में प्राप्त हुये उनका शब्द सुनाई देता है ॥ ४ ॥

एते चाप्यभिषेकाद्रीं मुनयः कलशोद्यताः ।

सहिता उपवर्तन्ते सलिलास्त्रुतवल्कलाः ॥ ५ ॥

ये मुनियों ने स्नान कर कलश लिये गोले चौर चल्कल धारण किये चले
जाते हैं ॥ ५ ॥

अग्नि होत्रे च ऋषिणाहुते च विधि पूर्वकम् ।

कपोतां गारुणो धूमे दृश्यते पनीद्धतः ॥ ६ ॥

व ऋषियों के विधि पूर्वक अग्नि होत्र करने से कबूतर के घ्रीचा के चारों के
तुल्य अरुण रङ्ग का धूम वायु से कम्पायमान निकल रहा है ॥ ६ ॥

अक्षपपर्णा हि तरवो घनी भूताः समं ततः ।

विप्रकृष्टेन्द्रिये देव्ये न प्रकाशंति वैदिशः ॥ ७ ॥

अब अत्यन्त अंधेरा होता चला जाता है क्योंकि जिन वृक्षों में थोड़े भी पल्लव हैं वे अंधियारे द्वारा घने जाल पड़ते हैं शुद्ध देव नहीं पड़ते दिशा नहीं प्रकाशित होती है ॥७॥

रजनीचर सत्त्वानि प्रचरन्ति समं ततः ।

तपोवन मृगा ह्येते वेदि तीर्थेषु शेरते ॥ ८ ॥

देखो अष्ट दिशों में निशाचर घूमते हैं ये तपोवन के मृग पवित्र वेदियों पर शयन करने लगे ॥८॥

संप्रवृत्ता निशा सीते नक्षत्र समलंकृता ।

ज्योत्स्ना प्रवारणश्चंद्रो दृश्यतेऽभ्युदितोम्बरे ॥ ९ ॥

हे श्री किशोरी जू अब नक्षत्रों से संयुक्त निशा अच्छी प्रकार हो आई आकाश में चन्द्रमा उदय है उज्ज्वल चांदनी दीप्त हो रही है ॥९॥

गम्यतामनुजानामि रामस्यानुचरोभव ।

कथयंत्याहि मधुरं त्वयाहमपि तोषिताः ॥ १० ॥

अति उत्तम अब जावो श्री रघुनन्दन जू की सेवा करो अपने मधुर वचनों से हमें आप ने अत्यन्त सन्तुष्ट किया है ॥१०॥

अलंकुरु च तावत्त्वं प्रत्यक्षं मम मैथिलि ।

प्रीतिं जनय मे वत्से दिव्यालंकारशोभिनी ॥ ११ ॥

हे श्री मैथिली हे वत्से जो वस्त्र भूषणादि हमने दिये हैं वे हमारे ही निकट धारण करो जिसमें हम भी देखें ॥११॥

सा तदा समलंकृत्य सीतासुर सुतोषमा ।

प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वभिमुखी ययौ ॥ १२ ॥

श्री जनकदुलारी जू ने यह सुन सम्पूर्ण वस्त्र भूषणादि पहिन ओढ़ देवरूपिणी हो श्री अनसूया जू को प्रणाम कर श्री कोशल कुमार जू के निकट आई ॥१२॥

तथा तु भूषितां सीतां ददर्श वदताविरः ।

राघवः प्रीति दानेन तपस्विन्याजहर्ष च ॥ १३ ॥

तिस प्रकार के भूषण वस्त्र धारण किये श्री प्राण पियारी जू को देख श्री तप-
स्विनी अर्थात् श्री अनसूया जू के प्रसाद से प्राप्त ज्ञान वाक्य विशारद श्री कौशल
कुमार जू अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥१३॥

न्यवेदयत्ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली ।

प्रीति दीनं तपस्विन्या वसना भरणस्त्राजाम् ॥ १४ ॥

श्री मिथिलेश किशोरी जू ने तपस्विनी श्री अनसूया जी ने प्रीति पूर्वक वस्त्र
भूषण व पुष्प मालादि दिये थे उन सम्पूर्ण कथा श्री कामद कुञ्ज विहारी जू से
कहे ॥१४॥

प्रहृष्टस्त्वभवद्रामो लहमणश्च महारथः ।

मैथिल्याः सत्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभाम् ॥ १५ ॥

मनुष्यों को दुर्लभ शक्तियां श्री किशोरी जू को देख श्री रघुवंशचर्य्य जू दोनों
भ्राता अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥१५॥

ततः सशर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम् ।

अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

व सम्पूर्ण तपस्वियों से पूजित श्रीरघुनन्दन दोनों भ्राता तथा श्रीजनककुमारी
जू के सहित पूर्ण चन्द्र सहित निशा में वहां शयन किये ॥१६॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्यहुताग्निकान् ।

आपृच्छेतां नर व्याघ्रौ तापसान्वनगोचरान् ॥ १७ ॥

जब निशा व्यतीत हो गई प्रातःकाल हुआ तो पुरुषों में सिंह दोनों भ्राता
अर्थात् श्री कौशल किशोर तथा लपण लाल जू स्नान व अग्नि होवादि कर वन
वासी तपस्वियों से दूसरे वन को गमन करने के लिये आवा मांगने लगे ॥१७॥

तावूचुस्ते वनचरा स्तापसा धर्मचारिणः ।

वनस्य तस्य संचारं राक्षसैः समभिप्लुतम् ॥ १८ ॥

तब वे सब धर्मचारी तपस्वी दोनों भ्राताओं से बोले कि इस वन में राक्षस
: तपस्वियों को अत्यन्त कष्ट देते हैं ॥१८॥

रक्षांसि पुरुषादानि नाना रूपाणि राघवः ।

वसंत्यस्मिन्महारथे व्यालाश्च रुधिराशनाः ॥ १९ ॥

हे रघुनन्दन जू नाना प्रकार के रूप धारण करने वाले तथा मनुष्यों को मेषण करने वाले राक्षस और रुधिर पान करने वाले सर्प इस महावन में बसते हैं ॥१६॥

उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम् ।

अदंत्यस्मिन्महारण्ये तान्निवारय राघव ॥ २० ॥

हे रघुनन्दन जू इस महावन में जो ब्रह्मचारी तपस्वी प्रमाद युक्त हो जाते हैं अर्थात् अहंब्रह्मास्मि धर्म युक्त हो जाते हैं अथवा भ्रष्ट रहते हैं उन सबको राक्षस खा जाते हैं इस हेतु तिन राक्षसों का आप नाश कीजिये ॥२०॥

एष पंचा महर्षीणां फलान्याहरतां वने ।

अनेन तु वनं दुर्गं गंतुं राघव ते क्षमम् ॥ २१ ॥

हे श्री रघुनन्दन जू यही मार्ग फल लाने वाले महर्षियों का है अर्थात् फलहरा वन है इसी मार्ग से घोर वन में जायें ॥२१॥

इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैकृतस्वस्त्ययनः परं तपः ।

वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः सलहमणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम् ॥२२॥

जब इस प्रकार दो हाथ सम्पुट किये तपस्वी व ब्राह्मणों द्वारा श्री कौशल किशोर जू का स्वस्त्ययन किया गया तब शत्रुओं के सन्ताप देने वाले श्री कौशल कुमार जू अपने भ्राता लघणलाल जू तथा श्रीजनक कुमारी जू के सहित जिस प्रकार सूर्य मेघ मण्डल में प्रवेश करे इसी प्रकार घोर वन में प्रवेश करते भये ॥२२॥

इति श्री बृहद्रामायणे उत्तरादूर्ध्वे श्री चित्रकूट माहात्म्ये श्रीसीतारामीय

परमहंस परिव्राजकाचार्य युगल विनोद विहारी शरण

कृत ब्रह्मतत्व प्रकाशिका भाषा टीका

नाम षष्ठमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

